साक्षी

अंक-21

साक्षी

अंक-21

भारतीय भाषाओं में रामकथा

(आरण्यक)

प्रधान सम्पादक

डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह

पूर्व प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सम्पादक

डॉ. अर्जुनदास केसरी

परिकल्पना

डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह

निदेशक, अयोध्या शोध संस्थान : तुलसी स्मारक भवन

अयोध्या, फैजाबाद (उ. प्र.)

अयोध्या शोध संस्थान

तुलसी स्मारक भवन, अयोध्या, फैजाबाद (उ. प्र.)

फ़ोन—फ़ैक्स : 05278-232982

साक्षी-21

भारतीय भाषाओं में रामकथा : आरण्यक

प्रधान सम्पादक

डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह

सम्पादक

डॉ. अर्जुनदास केसरी

परिकल्पना

डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह

ISSN : 2454-5465

इक्कीसवाँ अंक

© अयोध्या शोध संस्थान

प्रकाशक

वाणी प्रकाशन

21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
फ़ोन : 011-23273167, 23275710
फ़ैक्स : 011-23275710
ई-मेल : vaniprakashan@gmail.com
वेबसाइट : www.vaniprakashan.in

प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए वाणी प्रकाशन की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। विचारों से पूर्णतः सम्पादक और वाणी प्रकाशन का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

वाणी प्रकाशन का लोगो मक़बूल फ़िदा हुसेन की कूची से

अनुक्रम

सम्पादकीय : आरण्यक संस्कृति में रामकथा के प्रसंग 7

कै तो राखै राम ने कै राखै डाम 19
डॉ. महेन्द्र भानावत

आदिवासी लोक साहित्य में उपलब्ध रामकथा प्रसंगों में सीता कथा-प्रसंग 31
डॉ. पूरन सहगल

आदिवासी लोकगीतों में रामकथा 41
डॉ. लखनराम 'जंगली'

छत्तीसगढ़ी प्रहेलिकाओं और लोकोक्तियों में श्रीराम 51
डॉ. (श्रीमती) अनसूया अग्रवाल

उत्तराखण्ड के लोकजीवन में श्रीराम 55
डॉ. यशोधर मठपाल

कथा रामचन्द्र की : दृष्टि आदिवासियों की 61
डॉ. जय प्रकाश मिश्र

आदिवासी जीवन में रामकथा के प्रसंग 68
दीपक कुमार केसरवानी

कोलों की देवी शबरी के राम 88
डॉ. अर्जुनदास केसरी

जनजातीय लोकगीतों में राम 95
डॉ. ज्ञानेन्द्र प्रताप निराला

वनवासी जीवन में व्याप्त श्रीराम 98
शिवप्रसाद 'कमल'

वनवासी रामभक्ति के दो प्रेरक प्रसंग 102
शेख जैनुल आब्दीन

वनवासी और वनवासी राम 104
रामनाथ शिवेन्द्र

जनजातियों की लोक-कथाओं में रामकथा 110
ओमप्रकाश त्रिपाठी

पाण्डुलिपियों में बने रामकथा के प्रसंग चित्र 119
उदयशंकर दूबे

रामकथा की दो अप्रतिम काव्यकृतियाँ–पाण्डुलिपियाँ 130
डॉ. अर्जुनदास केसरी

अवधी संस्कार गीतों में रामकथा 143
डॉ. अनुज प्रताप सिंह

ब्रज–लोकवार्ता में श्रीराम कथा–प्रसंग 160
डॉ. मालती शर्मा

लोकगीतों में भूमिजा सीता 166
डॉ. आद्याप्रसाद द्विवेदी

रामलीला की प्राचीन परम्परा 172
डॉ. हरिप्रसाद दुबे

होली–गीतों में रामकथा 176
डॉ. भगवान सिंह 'भास्कर'

ब्रज की मौखिक परम्परा से प्राप्त लोक साहित्य में रामकथा के प्रसंग 183
डॉ. हरिसिंह पाल

लोकगीतों में रामकथा 190
उदयशंकर दूबे

मधुबनी शैली में रामकथा के चित्र 197
डॉ. नन्दिता शर्मा

समन्वय के प्रतीक राम 201
आर. डी. सोनकर

रामचरितमानस–राम का अर्थ और जनलोक 205
विद्यासागर डॉ. रमेश सोबती

लावनी में रामकथा के प्रसंग 209
डॉ. कवीन्द्र कुमार केसरी

रामायण में करुण रस का विवेचन 216
डॉ. अशोक कुमार

उत्तररामचरित में राम का लोकानुरंजन 221
सुषमा

रचनाकारों के पते ***225***

आरण्यक संस्कृति में रामकथा के प्रसंग

'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता' की घोषणा उस बात की ओर संकेत है कि ईश्वर अनादि, अनन्त, अखण्ड, अभेद है। राम, कृष्ण इसी अनन्त सत्ता के अवतार हैं। श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं तो श्रीकृष्ण लीला पुरुषोत्तम। तब भी, श्रीराम का चरित्र चौदह वर्ष के वनवास के कारण लोकानुरंजन का मूल स्रोत बन गया।

रामकथा की परम्परा कब से प्रारम्भ हुई, विद्वान् अब तक एकमत नहीं हुए हैं। संस्कृत के 'अनर्घराघवम्', 'प्रसन्न राघवम्' में रामकथा विस्तार से कही गयी है। वाल्मीकीय रामायण को कुछ विद्वान् रामकथा का पहला काव्य मानते हैं। तुलसी ने उसी को मुख्य आधार बनाकर नानापुराणनिगमागमसम्मत श्रीरामचरितमानस की रचना की, जो चार-पाँच शताब्दी बाद आज सबसे अधिक लोकप्रिय और जनमानस को आन्दोलित, अनुप्राणित करनेवाला महाकाव्य बन चुका है, किन्तु प्रागैतिहासिक कालीन गुहाचित्रों के अध्ययन के फलस्वरूप रामकथा के कुछ नये अनुद्घाटित स्रोतों का पता चलता है।

वर्तमान सोनभद्र (पूर्व मिर्जापुर) जनपद के अरण्यों से श्रीराम, लक्ष्मण और जानकी का बड़ा निकट का सम्बन्ध प्रतीत होता है। चित्रकूट, प्रयाग और काशी, इन तीन महातीर्थों की यात्रा भी भगवान् श्रीराम ने की थी। इसके प्रमाण में बताया जाता है कि विन्ध्याचल शिवपुर के समीप गंगाघाट पर श्रीराम ने अपने पिता दशरथ का तर्पण किया था और तब वे गया गये थे। गंगाघाट के इस तीर्थ का नाम 'रामगया' है, जहाँ आज भी पितृपक्ष में हजारों पितृभक्त तर्पण-क्रिया करने यहाँ आते हैं और यह मानकर चलते हैं कि यहाँ पिण्डदान किये बगैर गया में पिण्डदान का कोई फल नहीं होता।

विन्ध्याचल की त्रिकोण यात्रा के अन्तर्गत एक सुन्दर पहाड़ी पर 'सीताकुण्ड' नामक स्थान है, जहाँ राम, लक्ष्मण और जानकी की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं। यहाँ एक जलस्रोत है और वह कभी सूखता नहीं है।

प्रागैतिहासिक कालीन गुहाचित्रों में रामकथ : मिर्जापुर तथा सोनभद्र जनपद में पचास से अधिक प्रागैतिहासिक कालीन गुफाएँ प्राप्त हुई हैं जिनमें युद्ध, आखेट, गोचारण, पूजा-आराधना, पदयात्रा, नावयात्रा आदि के हजारों चित्र बने हुए हैं। इन चित्रों में रामकथा के कुछ चित्र भी मुझे प्राप्त हुए थे। पुरातत्ववेत्ताओं ने इन चित्रों का पुरातात्त्विक महत्त्व बताते हुए इनका समय पाँच हजार वर्ष पूर्व से बीस हजार वर्ष पूर्व तक सिद्ध किया है। उस समय तक छपाई माध्यम का विकास नहीं हो पाया था। पत्थर की चट्टानों पर चित्र गेरू अथवा रंग-बिरंगे पत्थरों को घिसकर, उसमें पेड़ों का दूध अथवा जानवरों की चर्बी आदि मिलाकर उसका लेप तैयार करके, बाँस की टहनी के ब्रश से सुन्दर चित्र बना दिया करते थे, जो आज भी पानी से साफ कर देने पर चटकार हो जाते हैं। इनमें बहुत से चित्र कथात्मक हैं और नि:सन्देह उनमें से कुछ रामकथा से भी सम्बन्धित हैं।

सीताकुण्ड : सबसे पहले मैं सीताकुण्ड के चित्रों का उल्लेख करना चाहता हूँ। यह स्थान सोनभद्र जनपद के मुख्यालय से लगभग चालीस कि.मी. पूरब चिचली-पनौरा से पाँच कि.मी.

दूर सोणनद के तट पर स्थित है। यह अत्यन्त दुर्गम है। सन् 1970 में जब इसकी पहली यात्रा इन पंक्तियों के लेखक ने टीम के साथ की थी तो यहाँ गुफा में बैठा शेर दिखलायी पड़ा था, जिसके कारण उस दिन की यात्रा स्थगित करनी पड़ी थी; किन्तु दूसरे दिन यहाँ पहुँचने पर जब इन दुर्लभ शैलचित्रों के प्रथम दर्शन हुए तो सारा श्रम सफल हो गया।

यहाँ कुल तीन गुफाएँ हैं जिनमें पशु-चारण, हाथी, घोड़ा, बैल, सूअर, सामर, योद्धा, पशु-मैथुन के चित्रों के अलावा एक जो सबसे दुर्लभ चित्र मिला वह है आखेट का। वहाँ एक जानवर हरिण को भगाता हुआ दिखाया गया है, उसके सामने एक योद्धा है। पीछे से लक्ष्मण को तीर चलाते हुए दिखाया गया है। राम बल्कलवेशधारी हैं और कमर पर हाथ रखे हुए पीछे खड़े हैं। यह दृश्यचित्र बहुत भावपूर्ण तथा रोमांचक है।

छातूग्राम : इसी जनपद में छातूग्राम नामक गुफा में भी तीर चलाते एक धनुर्धारी को दिखाया गया है। कोई योद्धा ढाल से अपनी रक्षा कर रहा है। यह राम-रावण युद्ध का दृश्य प्रतीत होता है। ढाल लेने वाला योद्धा भारी और बलिष्ठ है।

लिखनियाँ : अहरौरा से नौ कि.मी. दक्षिण लिखनियाँ नामक झरने से उत्तर एक गुफा में एक अन्य योद्धा का चित्र बना हुआ है। वह तीर कमान लेकर युद्ध कर रहा है। इसका मस्तक विशाल है। यह चित्र रावण का हो सकता है अथवा रावण-पक्ष के अन्य किसी योद्धा का।

पंचमुखी और चनाइनमान : सोनभद्र मुख्यालय से पाँच कि.मी. दक्षिण पंचमुखी और फिर उससे दो कि.मी. पश्चिम चनाइनमान में चार-पाँच गुफाएँ हैं, जिनमें शताधिक दुर्लभ चित्र बने हैं। पंचमुखी में जो योद्धाओं के अनेक चित्र बने हुए हैं, उनमें भी राम-रावण-युद्ध के चित्र प्रतीत होते हैं। यहीं एक चित्र योद्धा का है, जिसके हाथ में गदा जैसा आयुध है। वह हनुमान की अनुकृति प्रतीत होती है। चनाइनमान में एक पालवाली नाव का चित्र बना है, जिसको गौर से देखने से लगता है कि कुछ व्यक्ति यात्रा करते हुए आमोद-प्रमोद की मुद्रा में हैं। इनके कमर में तीर-कमान-तरकस बँधा है। इनमें स्त्री-पुरुष दोनों हैं। यह वनवास और ग्राम-वधुओं द्वारा जानकी के साथ वार्तालाप का दृश्य प्रतीत होता है।

केरवाघाट : केरवाघाट सोनभद्र मुख्यालय से पचीस कि.मी. दक्षिण चोपन से पूरब सर्वोच्च कैमूर शिखर पर स्थित है। यहाँ कई गुफाएँ हैं, जिनमें प्रायः सभी प्रकार के चित्र बने हुए हैं; किन्तु उनमें दो-तीन चित्र नाव-यात्रा के भी हैं। दो पुरुषों के बीच में एक स्त्री को दिखाया गया है। नाव नदी में चल रही है। नाव के एक सिरे पर नाविक प्रसन्न मुद्रा में नाव खे रहा है। क्या यह केवट-प्रसंग नहीं हो सकता? हो सकता है।

उसी तरह के और भी रामकथा से सम्बन्धित चित्र इन गुफाओं में बने हुए हैं जिनकी ओर शोधीत्सु विद्वानों का ध्यान अभी आकृष्ट नहीं हुआ है। यदि आकृष्ट हुआ और महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आये तो रामकथा के अबतक अनुद्घाटित आदिस्रोत का पता चल जायगा। इन गुफाओं में कुछ ऐसे स्थल भी हैं, जिनमें कथावाचक और कथा-श्रोताओं को आमने-सामने दिखाया गया है। ऐसे चित्र मुखादरी, केरवाघाट और पंचमुखी में देखे गये थे। अम्बिकापुर के रामगिरि पर्वत पर तो एक बड़ी पड़ी शिला भी मिली थी जिसे प्राचीन रंगमंच कहा जा सकता है, वनवास काल में भगवान राम-जानकी-लक्ष्मण संग यहाँ आये थे जिनके अन्य अनेक प्रमाण भी यहाँ उपलब्ध हैं।

पुरुषोत्तम भगवान राम का वनवासियों, गिरिवासियों के साथ निकट का सम्बन्ध था। उन्होंने शबरी के जूठे बेर खाये थे। कोल-किरातों को अपना प्रेम-भाजन बनाया था। कोल आज भी शबरी की पूजा करते हैं। उनके कोलदहकी नृत्य तथा कोलदादर गीतों में शबरी के साथ राम का कथा-प्रसंग जुड़ा रहता

है। इस अंचल में कोल, भील, खरवार आदि जनजातियों की अधिकता थी जो अब औद्योगिकीकरण के कारण निर्वासित-विस्थापित हो रहे हैं।

भगवान श्रीराम के यहाँ आने के अनेक प्रमाण मिलते हैं। प्रयाग से मिर्जापुर की दूरी मात्र एक सौ कि.मी. है। अपने अरण्यवास के समय वे विन्ध्याचल, मिर्जापुर, चुनार होते हुए काशी और फिर दुद्धी होते हुए बिहार तथा मध्य प्रदेश के वनों में निकल गये होंगे। विन्ध्याचल में श्री रामेश्वर (शिवपुर के समीप) की स्थापना भगवान श्रीराम ने की थी, ऐसा पुष्ट प्रमाण मिलता है। रामगया में तर्पण क्रिया की बात कही ही गयी है। मिर्जापुर नगर के तरकापुर मुहल्ले में गंगाजी के तटपर 108 शिवलिंगों की स्थापना पर उनके द्वारा की जाने की बात पौराणिक आधार पर खरी उतरती है। उन्होंने तरकासुर का वध भी यहीं किया था। चुनार में गंगा के तट पर शिवलिंगों की स्थापना की बात भी कही जाती है। वर्तमान भदोही जनपद में सीतामढ़ी चर्चित स्थान जो एक तीर्थ हो गया है। यहीं सीताजी धरती में समाहित हुई थीं।

जो भी हो यह निर्विवाद सत्य है कि भगवान राम, लक्ष्मण, जानकी का आगमन यहाँ हुआ था। यहाँ की प्रागैतिहासिक कालीन गुफाएँ और उनमें बने चित्र यहाँ की आदिम संस्कृति, कला और जीवन के चाक्षुष प्रमाण हैं। इन गुफाओं में रामकथा के बने चित्रों का होना तो न अप्रासंगिक है और न आश्चर्यजनक। अतः इनके विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता है। वैसे इस सन्दर्भ को अगरिया-कोरबा जनजातीय लोकवार्ता से जोड़कर देखा जा सकता है।

अगरिया-कोरवा जनजातीय संस्कृति में राम

गाढ़ा गेरुआ रंग का महावीरी झण्डा-तिकोन। उसमें लगी लम्बी सफेद रंग की लँगोटी। गृह-प्रवेश के अवसर पर भी पूजनोपरान्त इसे लम्बे बाँस में बाँधकर मकान की छत पर लगा दिया जाता है, ताकि इससे व्याधियाँ दूर रहें। इसी झण्डे को लेकर पुजारी पात्र खुले मंच पर प्रवेश करता है। वह लाल रंग के कपड़े की लुंगी, उसकी एक छोर पीछे खोंसकर जैसे ही बीच में खड़ा होता है, वैसे ही अन्य पात्र लगभग 10-12 की संख्या में उसे घेर लेते हैं। सभी के हाथ में या तो कोई वाद्य होता है या पूजा-पात्र या फिर कच्ची-पक्की मिट्टी की छोटी-छोटी अंगीठियों में प्रज्वलित अग्नि। आग साक्षी है और शक्ति का प्रतीक भी। वे शक्ति-आराधना के गीत भी गाते हैं। राम की शक्तिपूजा के तौर पर वे गीत गाते हुए एक ओर राम की आराधना करते हैं तो दूसरी ओर रावण को दुत्कारते भी हैं। कहते हैं–

"तुम रावण बड़े घमण्डी हो; रुको, दोनों तपसी (राम-लक्ष्मण) आ रहे हैं, तुम्हारे अग्निवाण और चक्रवाण उनके तेज के सामने नाकामयाब रहेंगे और उनके पास भी अग्निवाण हैं और चक्रवाण हैं, जिसके चलते तुम भस्म हो जाओगे, इसलिए गर्व छोड़कर उनकी शरण जाओ-वार्तालाप देखिए–

"तै रावण बड़े गारभी होऽऽऽ
आवत है दूनो तापसी"
"का करिहै आगिनबान
का करिहैं चक्रबान,"
"मरिहैं अगिनिबान
भूजिहैं अगिनिबान

जीउ लेलीहै उहै होऽऽऽ
तै रावण बड़े गारभी हो।।''

–करमा : केसरी, पृ. 109

गीत गाते हुए वे अर्द्धवृत्त और फिर पूर्णवृत्त बना लेते हैं। फिर थिरकना शुरू करते हैं। उनमें से दो–दो पात्र बाना से अपनी जीभ छेदते हैं। यह बाना एक प्रकार का त्रिशूल होता है, जो लम्बे सूजे की तरह तीखा होता है। उससे जीभ में छिद्र हो जाता है, किन्तु क्या मजाल कि रक्त की एक बूँद भी टपक जाय। इसे वे शक्ति की कृपा मानते हैं और मानते हैं–रामकृपा भी। पूछने पर ये बताते हैं कि–''माता सीता शक्ति स्वरूपा हैं। उनकी कृपा के चलते जीभ से खून का बूँद नहीं चूता।।''

अचरज तो यह है कि लगभग आधा घण्टा अँगीठी (जलती हुई) उनकी हथेली पर रहती है, तब भी हाथ नहीं जलता और न ही हथेली पर फफोले पड़ते हैं। पूरा दल गाता–बजाता, नाचता–थिरकता रहता है। बारी–बारी से पात्र बालि–सुग्रीव, हनुमान का अभिनय करते हैं। अभिनय ऐसा करते हैं कि जैसे हनुमान जी समुद्रोल्लंघन कर रहे हों। वह लंका पहुँचकर सीता का पता लगाते हैं। जीव–जन्तु, पशु–पक्षी, उद्भिज से सीतामाता का पता पूछते हैं। अपनी व्यथा–कथा उन्हें सुनाते हैं। तब वे उनके और सीता माता के प्रति भी दयालु–कारुणिक हृदय होते हैं। वे उन्हें सीता तक ले जाने में सहयोगी भूमिका निभाते हैं। तब हनुमान जी फलदार वृक्ष पर चढ़कर प्रसन्न मुद्रा में फल खाते हैं। कुछ फल गिराकर उनका अपनी ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं। उनके साथ संवाद करते हैं—कुछ मौन और कुछ मुखर। यह जान लेने के बाद कि जानकी यहीं हैं, वह मुद्रिका गिराते हैं। इस डाल से उस डाल पर, इस वृक्ष से उस वृक्ष पर उछलकूद करते हैं। माता सीता का आशीर्वाद प्राप्त कर वह रावण के दरबार पहुँचते हैं, रावण को समझाने का प्रयास करते हैं। न मानने पर लंका–दहन करते हैं और श्रीराम के पास लौट आते हैं। इतना ही नहीं, राम को हर स्थिति से अवगत कराते हैं। राम की सेना की अगुआयी कर सेतु बाँधकर लंका पहुँचते हैं। वहाँ राम–रावण युद्ध होता है। लक्ष्मण को शक्ति लगती है। हनुमान संजीवनी बूटी लाते हैं। उसे पीकर लक्ष्मण उठ बैठते हैं। बस यहाँ तक रामकथा का प्रसंग उनके उस अगरिया लोकनाट्य में मिलता है। इसके बाद शक्ति–पूजा पुनः की जाती है और यहीं रामकथा–केन्द्रित एकांकी लोकनाट्य समाप्त हो जाता है।

सीता–हरण–प्रसंग को अगरिया अपनी दृष्टि से देखते हैं। वे रावण को योगी का प्रतीक मानकर नाम लिए बगैर उसके कुकृत्य को नकारते और उसे धिक्कारते हैं। जोगी का रूप बनाकर सीता को ठगने की वे निन्दा करते हैं और अन्ततः उसे भाग्य का ही फेर मानते हैं। गीत की पंक्तियों पर ध्यान दीजिए–

''**करम भइल पातऽरीऽऽऽ....**
चलले जोगिया भीच्छा माँगेऽऽऽ
चलले लेउड़िया भीच्छा देवेऽऽऽ
करम भइले पातऽरीऽऽऽ
हाथ-हाथ तिल-चाडर
जोगी दिहले छितराय।
लेउड़िया के मारे घूसा चार।
करम भइले पातऽऽरीऽऽऽ''

–वही, पृ. 74

"तकदीर ही में आग लग गयी, क्या करें? किशोरी (सीता) उस योगी को तिल-चावल की भिक्षा देने लगीं कि वह जमीन पर गिर पड़ा जिसके कारण योगी (रावण) क्रुद्ध हो गया। तब वह लक्ष्मण-रेखा से बाहर निकलने के लिए विवश हो गयीं, बाहर निकलते उसने उनका हरण कर लिया। यह भाग्य का ही तो फेर है?"

अगरिया तीर-कमान बनाते हैं : पत्थर से लोहा निकाल कर उसे माथी पर चढ़ा कर पत्थर-कोयला जलाकर। कहा जाता है कि अगरियाओं ने ही सबसे पहले पत्थर कोयला (काला हीरा) के उस गुण को जाना था। जो भी, ये तीर बनाते बेचते हैं, तो अहेर (शिकार) की कला में भी दक्ष होंगे ही, यह समझ की बात है। वे गुलेल-गोटी से भी चिड़ियों का शिकार करते हैं। राम-लक्ष्मण जब वन जाते हैं तो वे उन्हें भी गोटी-गुलेला चलाना सिखाते हैं, अरे भाई, धनुहीं से सुगना का शिकार थोड़ी किया जायगा, जहाँ काम आवै सुई, कहा करै तलवार? प्रसंग से जुड़िए। गाँव-घर के सामने बाग है। रहता ही है, उसमें पेड़ पर बैठे तोता को भाभी गुलेला से मारना चाहती है, कि राम-लक्ष्मण ने सहायतार्थ धनुष-बाण चलाकर उसे मार गिराया तो वे दुःखी हो गये, क्यों? वह तो पाला हुआ तोता था, सीता-सहित किसी ने यह भी नहीं जाना। जब ज्ञात हुआ कि यह तो पाला हुआ था, तो उन्हें भी अपने किये पर पश्चात्ताप हुआ। तब क्या हो, जिसका तोता था, उसने दूसरा तोता पाल लिया। यह अजब तोता था भाई, कि भोर में ही उठकर 'सीताराम' बोलता था। गृहिणी अब प्रतिदिन भोर ही में उठ कर उसे पढ़ाती-'कहो परबत्ते! सीता राम।' पाठक जान लें कि तोता तब संदेशवाहक (पत्रकार) भी होता था।

रामकथा का यह प्रसंग कहीं आभिजात्य साहित्य में मिलेगा क्या? यही है तुलसी का 'क्वचिदन्यतोऽप'। नाना पुराण निगमागम् के साथ जो तुलसी ने लोक से लिया था, वह यही है। तो आइए सुनिए, पढ़िये, जानिए गीत का यह प्रसंग कितना अद्भुत है-

"भउजे बगिया में खेलेले गुलेल होऽऽऽ।
भउजे राम-लखन धनुष चढ़ावेंऽऽऽ
रामा पोसले सुगनवां मारि दिहलैंऽऽऽ
रामा रनियाँ का जिउवा उदास!
भउजी पोसले बा दूसर सुगनवांऽऽ
भिनुसर बोले-'सिताराम'
रामो बइठे भउजी सुगना पढ़ावेऽऽऽ
भउजे पोसले हिरन सुगनवां होऽऽऽ
भउजे बगियाऽऽऽ"

-वही, पृ. 70

राम योगी वेश में जब वन जाते हैं तो वनवासी उनका स्वागत करते हैं। चिलचिलाती दुपहरी में आये राम-लक्ष्मण जानकी को छाया में बिठाते हैं, कहते-"आ जोगी समतुल हो ले, आराम कर ले। आराम करके चिपरी गोइठा (उपली) ले जाकर भोजन भी बना ले।"

करुणा की यह अजस्र सहज धारा आज कहाँ बह रही है? काश! बहती होती। पंक्तियों पर ध्यान दें-

"पुरबे पछिमबां से आयल जोगिया (अयोध्या से)
बइठा जोगी हमरे ओसारी-
दुपहर गंवाइ लेऽऽऽ।"

× × ×

''हथवा में धइले जोगी चिपरी-गोइठवा,
आगी के बहना जोगी भागे, जीवा बाचे।''

–वही, पृ. 69

आग लेने के बहाने राम–लक्ष्मण–जानकी आगे बढ़ जाते हैं और वे ग्रामवासी आँख से ओझल होने तक टकटकी लगाये रहते हैं। यही है असली–

''दोनों ओर प्रेम पलता है....
शशि पतंग तो जलता ही है, दीपक भी जलता है।''

कोरबाओं के राम : अगरिया रामपक्षीय जनजाति है; किन्तु कुछ ऐसी जनजातियाँ भी हैं; जो राम–विरोधी और रावणपक्षीय हैं, जैसे एक जनजाति कोरबा है; जो बहुत पुरानी है और आज भी प्रायः नंगधड़ंग ही घने जंगलों में, नदी–पहाड़ों की कंदराओं में रहती है। इस जनजाति के लोग आज भी दिन में दिखलाई नहीं पड़ते। रात में, सन्नाटे में जब पशु–पक्षी भी सो रहे होते हैं तो ये शिकार के लिए निकलते हैं। घने वन में चले जाते हैं, जहाँ ऊँचे दरख्त होते हैं और जिनपर लंगूर चिपक कर सोये होते हैं। ये अपने परिवार के साथ निकलते हैं। उस दरख्त के नीचे बिना किसी सुनगुन (आवाज) के ये निशाना साध कर बैठ जाते हैं। पत्नी किसी लम्बे बाँस या काठ में सूखा घासपात बाँधकर उसमें आग लगाकर उसे धीरे–धीरे उस दरख्त के ऊपर ले जाती है, प्रकाश में बन्दर दिखलाई पड़ता है, जिसे नीचे बैठा या खड़ा उसका पति तीर–धनुष से मार गिराता है। बन्दर के नीचे गिरते उसके बच्चे झपट पड़ते हैं, उसे मार कर आग में भून कर खा जाते हैं। पहले तो वे उसे कच्चा ही खा जाते थे।

उनका मानना है कि हनुमान राम के परमभक्त थे। उनकी सहायता से राम ने रावण को मारा, अतः हम उनका कच्चा मांस खा जायेंगे। 'कच्चा मांस खा जाना' अत्यन्त क्रोध का प्रतीक कहावत है। अधिक क्रोधित होने पर आज भी लोग कहते हैं–''मार कर तुम्हारा कच्चा मांस खा जाऊँगा।''

कोरवा आज भी हनुमान को अपना शत्रु मान कर उनका प्रतीक बनाकर शिकार–क्रीड़ा की तरह अभिनय करते हैं और उस प्रतीक को जलाकर जश्न मनाते हैं। उस अवसर पर जो अभिनय करते हैं, वह देखने लायक होता है।

सीता-हरण : जनजातीय जीवन में राम इस तरह घुलमिल गये थे कि जैसे अभेद हो गया हो। वहाँ वनवासी राम–वनवासी ही रह जाते हैं। सीता–हरण प्रसंग, जो अगरिया या अन्य आदिवासी समाज में प्रचलित है, वह अन्य आभिजात्य–साहित्य–प्रसंगों से भिन्न, सहज और मौलिक है। रावण ब्राह्मण योगी का रूप धर कर आता है। सीता जी अकेले घूमती रहती हैं, (लक्ष्मण–रेखा के भीतर नहीं) योगी पाँवों में स्वर्ण–पादुका और मृगचर्म पहने हुए है। उसे देखते सीता जी खड़ी हो जाती हैं। योगी धर्मार्थ उनसे भिक्षा माँगता है। सेविका तिल–चावल लेकर उसे देने जाती है तो सीता जी उसे रोक लेती हैं और उसका झोंटा (जूड़ा) पकड़कर चार डण्डे मारती हैं। उसकी जगह वह स्वयं करुणार्द्र होकर उसे भिक्षा देने जाती हैं। करुणा, मर्यादा और ब्राह्मण–योगी के प्रति श्रद्धा के भाव यहाँ एक साथ दिखलाई पड़ते हैं। भिक्षा–पात्र में ऊपर तो दिखाने के लिए तिल–चावल है, पर उसके नीचे सोना रखा है, ताकि योगी संतुष्ट हो जाय। सामने कपड़े के चार टुकड़े बिछाये गये हैं जिनके भीतर से ही एक पाँव आगे बढ़ाकर ज्योंही जानकी भिक्षा देने के लिए आगे बढ़ती हैं और बदले में दूध–भात की कमी, बाल–बच्चों के लिए न पड़ने पाये का आशीर्वाद प्राप्त करना चाहती हैं, त्योंही अहेर के लिए गये राम–लक्ष्मण दोनों मृग को दौड़ाते हुए सामने आ जाते हैं। वे सीता को

देख भी नहीं पाते कि इसी बीच योगी भिक्षा लेने के साथ-साथ सीता को भी हर कर ले जाता है।

पाठक ध्यान दें, यहाँ स्वर्णमृग का वर्णन नहीं आया है और दिखाया गया है कि समीपस्थ राम-लक्ष्मण के रहते सीता-हरण हो जाता है। इसमें सहजता, सादगी और अकृत्रिमता दिखलाई पड़ती है। चार पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं-

''रानी सीता चललि परीक्षा देवेऽऽऽ
तीला-चाउर जोगी झोरि पोंछि लिहलाऽऽ
अइसे सीता करंथा (झोली) में छिपावइं
बराभन हरि लिहला होऽऽऽ''

-वहा, पृ. 27

लक्ष्मण-शक्ति : इसी तरह लक्ष्मण-शक्ति का भी अजीब प्रसंग आया है। लक्ष्मण को जब शक्तिबाण लगता है और वह मूर्च्छित हो गिरने लगते हैं तो हनुमान जी उन्हें भ्राता राम जानकर नहीं, मानव जानकर मानवता के नाते 'सधुवानी बूटी' (जीवन बूटी नहीं) पर्वत को ही उठाकर ले आते हैं, जिससे प्राणों की रक्षा हो जाती है। तब कितना खुश होते हैं राम-सीता-

''खूस भइनऽ रामचन्नर, खूस भइनी सीताऽऽ
लछिमन जी ऊठि बइठनऽ, जीवा बचि जात बा होऽऽऽ।''

कथा के इस लम्बे प्रसंग को 18 पंक्तियों में वनवासी गीत-गायक ने सब कुछ कह दिया है। करुणा उड़ेल दी है। राम-लक्ष्मण-सीता कैसे रहते थे वन में, बस इसी प्रसंग के साथ हम अपनी बात समाप्त करना चाहते हैं-

''हर्रा बहेड़ा तर पर गइले डेरा होऽऽऽ
कुसवा न काटि-काटि सथरी लगावे होऽऽऽ
सूते लगल राजा-रानी दूने रे बेकाती होऽऽऽ
चिंउटी के कटलक, दयिया कइले हंडहोर होऽऽऽ''

-वही, पृ. 30

उनका हर्रा-बहेड़ा के वृक्ष-तले डेरा पड़ा है। कुश की सथरी बिछी है। राम-जानकी दोनों उसी पर सो रहते हैं, वह भी विभोर होकर; जबकि नीचे चींटियाँ काट रही हैं। विषैले कीट-पतंग काट रहे हैं। हम अपने सुख से उस दु:खात्मक सुख की कल्पना करें। कौन कहता है-असली सुख राजमहल में होता है।

विशेष : अगरिया शिल्पी वर्ग की जनजाति है जो अन्य क्षेत्रों के अलावा विंध्याचल के कैमूर की पहाड़ियों में, वर्तमान सोनभद्र जनपद के शक्तिनगर के आसपास और शोणनद के तटवर्ती इलाकों में बहुत पहले से निवसित है। इस जाति के लोग लौहयुक्त पत्थर से पत्थर कोयला जलाकर माथी से पत्थर को पिघलाकर कच्चा लोहा तैयार करते हैं, फिर उससे विविध प्रकार के औजार-फावड़ा-कुदाल, बर्तन-तवा, कड़ाही, करछुल, संड़सी, चिमटा, घड़ा-गगरा आदि अस्त्र-शस्त्र, तीर, बन्दूक, चाकू-छुरी आदि बनाकर, उन्हें मेलों-ठेलों में बेचकर अपनी जीविका चलाते हैं।

यहाँ इन दो जनजातियों के बीच रची-बसी रामकथा का उल्लेख किया गया है, ऐसे ही अन्य अनेक जनजातियों के साहित्य-कला-संस्कृति में रामकथा के प्रसंग भरे पड़े हैं जिन्हें खोज निकालने की जरूरत है। इस तरह तमाम जनजातियों में प्रचलित स्फुट प्रसंगों वाली रामकथा के प्रसंगों को क्रमबद्ध कर दिया जाय तो मेरा विश्वास है कि रामकथा विषयक एक अनोखा प्रबन्धकाव्य बन जायगा। इसे आगे कोई रामकथा-प्रेमी मरजीवा कृतिकार कर सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

क्यों न श्रीराम की कथावार्ता, लोकवार्ता भगवान श्रीराम से ही शुरू की जाय! राम मर्यादा पुरुषोत्तम तो हैं ही, परन्तु उनका प्रजानुरंजन-लोकानुरंजन पक्ष उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का परिचायक है। भवभूति के राम कहते हैं-

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदिवा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुंचतो नास्ति मे व्यथा।।

अर्थात् प्रजा को प्रसन्न और सुखी रखने के लिए मुझे स्नेह, दया, सुख, यहाँ तक कि जानकी को भी छोड़ देने में कोई कष्ट नहीं होगा।

यहाँ पर लोक का व्यापक अर्थ समझने की जरूरत है। लोक से परे है क्या? लोक में तो वेद भी समाहित है जो आभिजात्य है। राम के वन-गमन का तात्पर्य लोक-विशेष, लोक-आरण्यक-पर्वतीय, जन बाहुल्य, अन्त्यज, आदिवासी लोक का मान बढ़ाना था, उनका सहज आतिथ्य स्वीकार कर उनका सर्वप्रकारेण, सर्वतोभावेन हित करना था, उन्हें अत्याचारियों, अन्यायियों, उत्पीड़कों से मुक्त करना था। रावण के वध के पीछे सीता की मुक्ति मात्र नहीं, अपितु नारी-उद्धार भी था। कोल-किरातों, वन्य जातियों के साथ भी तो यही होता रहा होगा। श्रीराम ने इस घटना से शोषितों, पीड़ितों, प्रताड़ितों में अन्याय-अत्याचार, अपमान को पी जाने के विरुद्ध प्रतिरोध-प्रतिकार करने की शक्ति प्रदान की है, उन्हें स्वाभिमान के साथ जीने की प्रेरणा दी है। यही कारण है कि रामलीला हर जगह प्रचलित हुई। उत्तर भारत की रामलीला के अलावा अन्यत्र भी रामचरित के पारम्परिक रंग-मंच के विविध रूपों को प्रस्तुत किया जाता है। यथा केरल का कुतियत्रम जो संस्कृत रंगमंच का एकमात्र जीवित रूप है, कथकली-जो केरल की शास्त्रीय नृत्य-नाटिका है, यक्षगान-जो मैसूर का अत्यन्त विकसित और शैलीबद्ध नृत्यगीत है; अकीय नट जो असम में वैष्णवी मठों में प्रदर्शित किया जाने वाला गीतात्मक नाटक है और पश्चिम बंगाल का 'छो' या 'छांऊ' नृत्य भी बहुत लोकप्रिय है। उड़ीसा का पश्चिम बंगाल में 'यात्रा' या 'जात्रा', आंध्रप्रदेश का विधीनारकम् और मध्य प्रदेश में 'माच' नामक लोकनाट्यों में भी रामचरित अथवा रामकथा का अभिनयात्मक रूप प्रस्तुत किया जाता है। उत्तर प्रदेश के आदिवासियों की 'कठपुतली' भी रामकथा से जुड़ी हुई है। इस तरह स्पष्ट है कि ईस्वी पूर्व अरण्यक संस्कृति में भी राम का चरित्र अनुकरणीय था। छायानाट्य और आदिवासियों के मूक प्रदर्शन को भी रामकथा से पृथक नहीं किया जा सकता, जैसा कि वर्तमान सोनभद्र जनपद में सीताकुण्ठ (शोण-तट) के पास प्रागैतिहासिक कालीन गुहाकला के चित्र प्राप्त हुए हैं। उनमें नौकायात्रा-श्रीराम-लक्ष्मण-जानकी को नदी-पार करने का चित्र अंकित है। (दे. रामार्णव तृतीय खण्ड का अंतिम पृष्ठ; बाबा झामदास कृत तथा अर्जुनदास केसरी द्वारा पुनर्लिखित प्रकाशित, कोलरुचि प्रकाशन, राबर्ट्सगंज, सोनभद्र; 23।2।6)

जाहिर है, श्रीराम का लोकानुरंजन रूप जब पर्वतीय, आरण्यक क्षेत्रों में जनमासन को अनुप्राणित किया होगा तो वह उस क्षेत्र-प्रान्त की भाषा-बोली में ही रहा होगा। पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में भक्ति-आन्दोलन का मुख्य केन्द्र वाराणसी था, उसी समय असमियाँ, उड़िया, अवधी, मैथिली, बंगला, ब्रजभाषा, पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी भाषाओं-बोलियों के साथ-साथ वनवासियों, आदिवासियों की बोलियों, यहाँ तक कि भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी, बिहारी भाषा-बोलियाँ अपना विस्तार कर रही थीं। अतः रामकथा के अनेक प्रसंग इन भाषाओं-बोलियों में भी अभिनीत हुए अथवा लोकगीत, लोकनाट्य, लोकगाथा, यहाँ तक कि लोककथा के विषय बने। इतना ही नहीं, रामभक्ति और क्षेत्रीय भाषाओं की

विकासोन्मुखता ने भी 'रामचरितमानस' की रचना की प्रेरणा दी होगी। पूर्वोक्त 'रामार्णव' भी उसी क्षेत्र की अनुपम राम-कथा-कृति है, जिसका समय पौने तीन सौ वर्ष पूर्व सिद्ध है।

तुलसी जनकवि थे। वनवासीजन उनके केन्द्र में थे। उन्होंने उनसे बहुत कुछ ग्रहण किया है। नाना-पुराण निगमागम् सम्मतम के साथ उन्होंने 'क्वचिद्न्यतोऽपि' की जो बात की है वह अरण्यक लोक ही तो है और है क्या? विद्वानों को इस पर मंथन करने की जरूरत है। इसी से जुड़ा प्रसंग नर-सेवा है, जिसे आज मानव-सेवा कहा जाता है। तुलसी ने रामकथा लिखकर सार्थक नर-सेवा की है और आगे के लिए उसका पथ-प्रशस्त किया है।

शबरी का प्रसंग क्या है? डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र ने लिखा है-'वह शबरी जिसे ठेठ जनता की प्रतिमूर्ति कह सकते हैं, जन-प्रतिनिधि को भगवान का तत्वज्ञान कह सकते हैं। जन-प्रतिनिधि को भगवान का तत्वज्ञान एक शिष्ट व्यक्ति के समान हो जाना बड़ा कठिन है। उसे यदि नारायण-सेवा के भाव देने हैं तो नर-सेवा के मार्ग से ही आगे बढ़ाना कल्याण-प्रद होगा। इसीलिए शबरी के उस भक्ति-प्रकरण में गोस्वामी जी ने नरसेवा और नारायण-सेवा को समान दर्जा दे दिया है। मिश्रजी ने दो पंक्तियाँ उद्धृत की हैं-

''नव यह एकहु निके होई। नारि-पुरुष सचराचर कोई।
सो अतिशय प्रिय भामिनि मोरे। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।।''

भावार्थ यह कि अगर कोई ईश्वर का उपासक नहीं है तो भी यदि वह मनुष्य समाज अथवा उसके किसी अंश विशेष का कल्याण चाहने वाला या उसके प्रति सेवाभावी है तो वह भी ऊँची-से-ऊँची भक्ति का पात्र माना जा सकता है। इस तरह तुलसी के राम में एक अपूर्व मानव की कल्पना तथा परिपूर्ण मानवता का आरोप किया गया है, जिसे हरिजन-प्रेमी महात्मा गाँधी ने भी माना और अति पिछड़ों, अन्त्यजों को अपनाने के लिए उन्हें 'हरिजन' शब्द से सम्बोधित किया और उनकी सेवा को नारायण-सेवा बताया।

'मानस' में निषादराज और शबरी की उपकथाओं द्वारा यह प्रतिपादित किया गया है कि भगवान का भक्त चाहे जिस जाति का हो, अभिनन्दनीय है और उसके साथ खान-पान पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। शबरी और निषादराज के कथा-प्रसंग तो मात्र उदाहरण हैं, ऐसे न जाने कितने प्रसंग श्रीराम और वनवासियों और आदिवासियों से जुड़े होंगे या हैं जिनको वनवासी जातियों के बीच जाकर खोज निकालने की आवश्यकता है। 'साक्षी' के इस अंक में हमने उनके साहित्य का उल्लेख करते हुए शोधीत्सुओं के लिए मात्र मार्ग-प्रशस्त करने का संकेतमात्र किया है।

राम-साहित्य धार्मिक साहित्य के साथ-साथ नृतत्वशास्त्र भी है। मैटर के अनुसार ''आदिकालीन मानव की दार्शनिक कल्पनाओं का परिणाम धर्म है।'' उसकी इस दार्शनिक सोच का सूर्य प्रतीत होता है। आदिवासियों, विशेष रूप से मुण्डा-खरिया लोग सूर्य को परमेश्वर (High God) का प्रतिरूप मानते हैं, क्योंकि वह प्रकाश-ऊर्जा प्रदान करता है। मुण्डा, हो, बिरहोर सूर्य को सिंगबोंगा (Singbonga) अर्थात् सूर्यदेवता (Sun God) कहते हैं। राम सूर्यवंशी थे। क्या पता इसी कारण राम की उपासना अन्य जातियों में अधिक लोकप्रिय हुई हो और राम ने भी अपने जीवन का मूल्यवान समय उन्हीं के बीच उनको अपनी भक्ति प्रदान करने के लिए गुजारा हो। यदि ऐसा है तो वनवासियों को श्रीराम का आदिउपासक अथवा भक्त कहा जा सकता है। तभी तो अरण्य साहित्य राम अथवा राम के प्रतीक से भरा पड़ा है जिसका यथास्थान-यथाप्रसंग उल्लेख इस अंक में किया गया है। आदिवासी समाज के आदि उपासक राम ही थे, जिन्हें कालान्तर में उपेक्षाओं के फलस्वरूप बुरे दिनों के चपेट में आ जाने के

कारण अन्य धर्मावलम्बियों ने प्रलोभन देकर छीन लिया। तथापि राम उनके अंग-आलेखनों, वाद्ययंत्रों, आभूषणों, कठपुतलियों, वृक्ष-पाषाण प्रतीकों, लोकगीतों, लोककथाओं, लोकगाथाओं, लोकनाट्यों, लोक-सुभाषितों, सुख-दुःख की अनुभूतियों, लोक-विश्वासों में सर्वत्र व्याप्त हैं। कुछ भी अच्छा होता है तो उसे वे राम की कृपा मानते हैं। कुछ बुरा हो जाता है तो उसे भी 'राम की लिखनी' मानकर दुःखमुक्त हो जाते हैं।

आदिवासी जीवन तथा संस्कृति में राम सर्वत्र रमते हैं। सीधी जनपद में बैढ़न तहसील से लगभग 30 कि.मी. दूर दक्षिण की ओर कैमूर की पहाड़ियों में पहाड़ खोदकर कक्ष बनाये गये हैं जो मन्दिरनुमा हैं और उनमें एक से एक कलात्मक सुन्दर मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। उनमें एक रावण-माड़ा है। कहते हैं इसमें रावण रहता था। इस गुफा के द्वार पर गणेश की मूर्ति है और शिव-ताण्डव का दृश्य उत्कीर्ण है। इसी प्रकार चितरंगी तहसील में तराई नामक गाँव में हनुमान जी की एक पुरानी मूर्ति स्थापित है।

सरगुजा जनपद में भी इसी तरह की गुफाएँ मिलती हैं। रामा नदी के तट पर स्थित सीतामढ़ी गुफा में अनेक आकार प्रकार की राम-कथा विषयक मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं, जिनमें शिव-चरित्र दर्शाया गया है। (दे. विन्ध्यक्षेत्र का सांस्कृतिक वैभव -अर्जुनदास केसरी, पृ. 227।)

सरगुजा जनपद में सीता बोंगिरा विश्व की प्राचीनतम नाट्यशाला है, जिसके बारे में कहा जाता है कि राम-वनवास के समय भगवान श्रीराम यहाँ सीता-लक्ष्मण के साथ आये थे। उनके आवास गुफाओं के रूप में वर्णमान हैं। यह स्थान रामगिरि पर्वत पर स्थित है। रामगढ़ में धनुर्धर, हनुमान, शिवलिंग, विष्णु, जानकी की प्रतिमाएँ, उत्कीर्ण हैं। (वही, पृ. 222-227) यहाँ लक्ष्मणगढ़, रामानुजगंज नामक स्थान है। तात्पर्य यह कि इन दुरूह इलाकों में भी रामकथा के अवशेष बहुशः प्राप्त हैं जो इस बात के प्रमाण हैं कि वनवासियों, आदिवासियों में राम के प्रति अटूट भक्ति एवं श्रद्धा का भाव विद्यमान था जिसका स्पष्ट प्रभाव उनके साहित्य और कला पर पड़ा है।

भारत के अनेक जनजातीय क्षेत्रों में पर्वों-त्यौहारों, व्याह के अवसरों पर घरों के प्रवेश-द्वार के दोनों ओर चित्रांकन की परम्परा रही है। ये चित्र गोबर, माटी, आटा-चावल पीसे लेपन से अथवा चूना रंग से महिलाओं द्वारा बनाये जाते हैं। इनमें रामकथा की प्रमुखता होती है। ये चित्र प्रागैतिहासिक काल में भी गुहा की दीवारों पर बनाये जाते थे, 'जिसे कोहबर के चित्र या लेखनियाँ, आँख की पुतलियाँ' के नाम से जाना जाता था। यह परम्परा आज भी विशेष रूप से जनजातीय क्षेत्रों में देखी जाती है। इन चित्रों में राम-लक्ष्मण, जानकी, हनुमान, शिव-पार्वती के चित्र अधिक होते हैं। भाद्रपद शुक्ल दशमी के अवसर पर दशावतार के चित्र, विवाह के अवसर पर घड़े के ऊपर रामभक्त हनुमान के चित्र, सीता-स्वयंवर के दृश्य-चित्र, भैयादूज के अवसर पर रामनामी चित्र, मुखद्वार पर सीताराम नामांकन, राम के मुखौटे, अगहन मास के शुक्लपक्ष में श्रीराम-सीता विवाह के दृश्यचित्र, सीता-चौकी, सीताराम-रसोइया, रामझूला गोदना, रामलीला के अवसर पर राम-दरबार के चित्र बहुतायत से पाये जाते हैं, जिन्हें इस विशेष अंक में सम्मिलित किया गया है।

जनजातीय साहित्य जनजातियों का पुराणेतिहास, वेद-शास्त्र, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र और आचरणशास्त्र भी है। आचरण का मतलब यह है कि वे तदनुसार जीवन जीने का प्रयास करते हैं। इनकी भी लोकगाथाएँ हैं, लोकनाट्य हैं, लोककथाएँ, लोकसुभाषित, लोकगीत और लोकरूढ़ियाँ, लोक-विश्वास और लौकिक परिसंवाद और रूढ़ियाँ भी हैं। जनजातियों में आल्हा, लोरिकी, विजयमल की तरह लम्बी लोकगाथाएँ बहुत कम मिलती हैं। बूढ़ी दादियों के कण्ठ में जो थीं, वे अब लुप्तप्राय हैं, सम्भव है, तराई की जनजातियों में कुछ बची-खुची हों, यदि ऐसा है तो उनका संग्रह कर लेने की

आवश्यकता है। इनकी लोककथाओं में यत्र-तत्र-सर्वत्र राम रमे हैं, जिसका उल्लेख प्रसंगतः इस अंक में किया गया है। हाँ, लोकगीतों में राम का बहुशः उल्लेख हुआ है। प्रायः हर जनजाति के लोकगीतों में राम, रामायण के पात्र रचे-बसे हैं। यह बात और है कि उनके बीच राम या रामकथा के पात्र जब होते हैं तो वे आभिजात्य रामायणों के पात्रों से भिन्न होते हैं। वे वहाँ उन्हीं की जाति, वर्ग, समाज के अगुआ, उनके परिवार के सदस्य बनकर उनमें घुल-मिल जाते हैं। उनका ईश्वरत्व, अलौकिक रूप बदल कर तदनुरूप हो जाता है। यही तो है राम का रमत्व। उसी प्रकार आदिवासी भी उन्हें महामानव, अति-मानव, अलौकिक पुरुष, दिव्य-पात्र न मानकर उन्हें अपने बीच का सुहृद मानते हैं। शबरी का ही प्रसंग ले लें। वह जिस प्रकार अपने परिवार के सदस्यों को जूठे बेर खिलाती थी, वैसे ही राम को भी उसने खिला दिया। कितनी सहजता है-इस आचरण-व्यवहार में। हाँ, आदिवासी-समाज अतिथि को देवता जरूर मानता है और उनका बिना किसी बनावटी भाव के, जो भी उनके पास रहता है, जूठन-काठन, बासी-तिवासी खिला-पिला देता है। उनको खिलाने के बाद कुछ बचा तो उसे खा लेता है, अन्यथा भूखे पेट लुढ़क कर सो जाता है। आदिवासी ही है, जिसे कल की चिन्ता नहीं होती, वह वर्तमान जीता है। वह अगले दिन के लिए अपने पुरुषार्थ का भरोसा रखता है। न गगरी में दाना होगा न उसकी उसे चिन्ता रहेगी। ये सारे प्रसंग उनके साहित्य में मिलते हैं जिनका यथावसर उल्लेख इस अंक के लेखकों ने अपनी रचनाओं में किया है।

आदिवासियों-वनवासियों के राम वाल्मीकि, तुलसी तथा अन्य सभी रामकथाकारों से भिन्न हैं। इस अंक के ''अगरिया-कोरवा जनजातियों के राम' शीर्षक लेख में इसकी स्पष्ट झलक मिलती है। जानकी जी जहाँ रहती हैं, वहाँ वनवासी भी रहते हैं। उन्हें अकेले यात्रा करने नहीं देते और न राम-लक्ष्मण के अहेर खेलने चले जाने पर सीता को अकेले छोड़ते हैं। यही कारण है कि रावण जब योगीरूप धारण कर उनके समीप जाता है तो वे उसे धिक्कारते हैं।

राम-लक्ष्मण जब वन जाते हैं तो तीर-धनुही चलाने में दक्ष नहीं होते। वनवासी उन्हें तीर-धनुही चलाना सिखाते हैं तब वे दक्षता प्राप्त करते हैं।

ज्ञातव्य है कि अगरिया तीर-धनुष बनानेवाली जनजाति है और वह तीर-कमान चलाना सिखाती भी है।

इसी तरह एक और प्रसंग आया है जो आभिजात्य रामकथाओं से भिन्न है। राम-लक्ष्मण जब लंका में युद्ध के लिए जाते हैं तो रावण गर्व करता है और जब राम-लक्ष्मण, हनुमान को ललकारता और कटुवचन बोलता है तो आदिवासी वहाँ पहले स्वयं उसे आगाह करते हैं और कहते हैं कि घमण्डी रावण चुप हो जा, गर्व न कर, तुम्हारा गर्व ये योगी चूर-चूर कर देंगे। तुम्हारा अग्निवाण कुछ काम न आयेगा, चक्र भी व्यर्थ हो जायगा। उन्हें वे भून देंगे और तुम्हें मार-गिरा कर तुम्हारा प्राण ले लेंगे।

कोरबा रावण-पक्ष की राम-विरोधी जनजाति है जो बन्दरों का शिकार कर कच्चा मांस खा जाती थी। उसका मानना है कि हनुमान ने रावण-वध में सहयोग किया था, अतः हनुमान के प्रतीक बन्दरों को हम छोड़ेंगे नहीं। इस प्रसंग से समझने की आवश्यकता है कि वनवासी कभी भी आक्रामकता पसन्द नहीं करता, अपितु अपनी शक्ति भर उसका प्रतिरोध कर सकता है। राम ने वनवासियों को आचरण की सभ्यता का पाठ अपने आचरण द्वारा पढ़ाया तो है, उससे बढ़कर उनसे बहुत कुछ सीखा भी है। अतः हम कह सकते हैं कि आरण्यक जीवन और साहित्य-संस्कृति राम को एक नये नजरिए से समझा और समझाया भी गया है, जो सार्वभौमिक-सार्वकालिक है। ऐसा नहीं होता तो शबरी, जो आदिवासियों की देवी स्वरूपा प्रतिनिधि भी है, श्रीराम का आतिथ्य बेर से न करती बल्कि मांसाहार और मद्य से ही

करती; लेकिन नहीं उसने बेर खिलाकर, फलाहार–शाकाहार कराया। ऐसा करके उसने सब क्षत्रियों को शाकाहारी होने की सीख दे दी।

खानपान से आचरण बनता–बिगड़ता है। उसने यहाँ हम सबको आचरण की पवित्रता की भी सीख दी है जो सर्वतोभावेन अनुकरणीय है।

साक्षी के इस अंक में राम–कथा से सम्बन्धित अधिकृत विद्वानों के महत्त्वपूर्ण लेख संकलित हैं, जिनमें से अधिकतर आदिवासी जीवन, साहित्य, कला, संस्कृति से जुड़े हुए हैं। कुछ लेख ऐसे भी हैं जो पाण्डुलिपियों में वर्णित राम–कथा प्रसंग से जुड़े हैं। कुछ ऐसे भी लेख हैं जो आरण्यक जीवन से पृथक होकर भी अवधी, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी, बैसवारी अथवा अन्य स्थानीय भाषाओं और बोलियों में हैं। सब मिलाकर यह अंक जनजातीय जीवन से जुड़ गया है।

जनजातियों के साहित्य में राम–कथा के प्रसंग अनेकशः वर्णित हैं जिन सबके पृथक अध्ययन की आवश्यकता है। वास्तव में आदिवासियों के समग्र साहित्य को, जो रामकथा से सम्बन्धित हैं–लोकगाथा, लोककथा, लोकनाट्य, लोक–सुभाषित अथवा अन्य के संग्रह एवं सम्पादन की आवश्यकता है। अयोध्या शोध संस्थान द्वारा किया गया यह कार्य अत्यन्त सराहनीय है जिससे रामकथा के व्यापकत्व का परिचय मिलता है। एतदर्थ संस्थान धन्यवाद का पात्र है। यह अंक शोधकर्ताओं के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण हो गया है।

डॉ.अर्जुनदास केसरी

कै तो राखै राम ने कै राखै डाम

डॉ. महेन्द्र भानावत

आदिवासी चाहे कहीं के हों, उनकी आदिम कला-संस्कृति, जीवन-परिवेश, संस्कारजनित सरोकार, प्रथा-परम्परा, प्रकृतिजन्य मान्यताएँ, सृष्टि विषयक मिथक, अच्छी-बुरी आत्माओं से जुड़ी कथाएँ, मांदगी से मुक्ति के उपाय, आराधना-उपासना के सन्दर्भ उनके आदिमपन की अनमोल विरासत के वे दस्तावेज हैं जो सांसारिक रचनावली के विराट् स्वरूप को दिग्दर्शित करते हैं। उनके उद्‌भव और आख्यान से लेकर विकास के वर्चस्व के पड़ाव को संकेतित करते हुए कई प्रतीकों तथा मिथकों का संबल बनते हैं। धरती और आकाश के भराव तथा शून्यजनित रहस्य वैभव के वर्चस्व को स्थापित कर किसी शक्ति सम्पन्न सत्ता के हाथों की डोर में बँधे होने का अटूट विश्वास बुनते हैं।

सर्वत्र राम

जनजातियों में राम सर्वत्र हैं। प्राणी के हर घट तथा जीवन के हर पट में राम का अस्तित्व है। राह चलते किसी पथिक को उसका नाम पूछने पर वह यही कहेगा-'नाम तो श्रीराम का' और उसके बाद अपना निजी नाम बतायेगा। होमा, मंगला, बुधा, बसता, हकरा, धावरा, दीता ये सब नाम दिनों के हैं, सप्ताह के सातों दिनों के। इनमें से जिस दिन वह जन्मा है, वही दिन उसके नामकरण की साख लिए है। कोई गाँव ऐसा नहीं मिलेगा, जहाँ राम-नाम का प्राणी न हो। मैंने ऐसे व्यक्ति देखे हैं जो अपने जीवनकाल में अपनी उम्र के अनुसार राम के नाम की पहचान लिए हैं। नाम की यह स्वीकृति-सहमति लोकसम्मत होती है। बचपन में जब उसकी उम्र बालपन लिए होती है तब वह नाना रामा के नाम से जाना जाता है। नाना से तात्पर्य छोटा यानी नन्ही उम्र से है। बाल वय से है। बालक राम से है जैसे बालपने में विवाह करने वाला बालक बनड़ा कहलाता है वैसे ही बालपने का लड़का बाला राम के रूप में याद किया जाता है। यही बाला वाल्हा यानी प्रिय, लाड़ला, प्यारा रूप में सबकी आँखों का तारा बना रहता है।

जवानी में यही नाना रामा, रामलाल बन जाता है। अति प्रियजनों में रामलाल, रामा भाई तथा रामूड़ा के रूप में पुकारा जाता है। आधुनिकता की हवा पाकर रामलाल, रामचन्द्र होते भी देखे गये हैं। बुढ़ापा आ जाने पर बचपन का नाना रामा और जवानी का रामलाल रामा बा के रूप में आदरणीय बन जाता है। ये सम्बोधन व्यक्तिवाची, परिवारवाची तो बनते हैं, समूहवाची भी हो जाते हैं। एक घर का नाना रामा, रामलाल और रामा बा हर घर का, घर-घर का, पूरे गाँव का तथा चौखले का उसी नाम रूप में सम्बोधित होने लगता है। यही लोकजीवन की, लोकशक्ति की, समूह की और जन-जन की सार्थकता भी है।

सच तो यह है कि राम-नाम ही जीने का सबसे बड़ा संबल है। उठते-बैठते, खाते-पीते,

चलते-सोते हर घड़ी राम की ही श्वास-धारा में जीवन की नाड़ी चलायमान रहती है। राम जीवन का रमण है, चलन है। विराम नहीं है। दु:ख में सुख में राम की ही कृपादृष्टि है। सुख है तो राम है और दु:ख है तो भी राम है। वही दातार है। श्वास को जोड़ने वाला उसका हर तार ही जीवन का सार और सत्व है।

कै तो राखै राम

ऐसे राम की शरण में जाकर आदिवासी जगत अपने जीवन को निश्चिन्त बनाये रखता है और कभी रोगग्रस्त भी हो जाता है तो उसी के नाम का इलाज चलता है। यह इलाज अधिकांशत: दग्धचिह्न के रूप में होता है। बड़ी से बड़ी बीमारी का इलाज हो या तो राम का नाम या उसके नाम का डाम, यानी दग्धचिह्न है। गाँवों में ऐसे समझे-बुझे होते हैं जो राम के नाम की तांती, डोरा या धागा बाँधते हैं या फिर जिस स्थान पर कोई बीमारी उठ आती है, उस स्थान को दागते हैं। यह दागने की क्रिया ही डाम कहलाती है। इसीलिए कहावत भी चल पड़ी-"कै तो राखे राम ने कै राखै डाम।" अर्थात् या तो राम ही जीवित रख सकता है या फिर डाम।

मैंने ऐसे कई समझे-बुझे व्यक्ति देखें हैं जिन्होंने हर बीमारी के इलाज के लिए डाम को माध्यम बनाया है। उदयपुर के पास के बड़ी गाँव में एक व्यक्ति ने अपने जीवनकाल में एक लाख डाम देकर लोगों को ठीक किया। पहले हर बीमारी का इलाज डाम था।

कै राखै डाम

तब आज की तरह नाना प्रकार की बीमारियाँ भी नहीं होती थीं। मैंने तो कहानी के माध्यम से बीमारी का शमन होते भी देखा। मेरे अपने ही गाँव में एकांतरे यानी एक दिन छोड़ एक दिन अर्थात् एक दिन के अन्तराल से आनेवाले बुखार का इलाज एक उत्तमा बाते, जो कहानी के माध्यम से एकांतरा पीड़ित व्यक्ति का इलाज करते थे।

डाम का इलाज करने वाले अधिकांशत: नस के ज्ञाता होते हैं। नस के अनुसार बीमारी को पकड़ते। कई बार नस से परे भी बीमारी होती। मुझे स्वयं को बचपन में पेट पर, नाभि और फेफड़ों के बीच पुरानी मिट्टी की मटकी के टुकड़े, जिसे ठीकरी कहते हैं, उसे गर्म कर दागा जाता था, मैं तब भी ठीक नहीं हुआ तो उसी के पास एक छोटा डाम और दिया गया जिसकी निशानी आज भी बनी हुई है। यह बीमारी फीयेकालजे की थी।

बीमारी और उससे जुड़े स्थान के अनुसार डाम अत्यन्त पतले लोहे के तार, बड़े मोटे तार, कंकड़, ठीकरी आदि को अच्छी तरह गर्म कर चिपका दिया जाता है। मेरे अग्रज डॉ. नरेन्द्र भानावत को भी इसी प्रकार पीठ पर दाग कर ठीक किया गया था। मनुष्यों में ही नहीं, जानवरों में भी डाम देने की प्रथा रही है। यह प्रथा तो गाँवों में अब भी कहीं-कहीं देखने को मिल जाती है।

राम के साथ सीता का नाम नहीं आया तो राम भी अधूरे हैं और सीता तो राम के बिना हो ही नहीं सकतीं। इसीलिए यहाँ कई लोग अपना नाम सीताराम लिए हैं। दोनों हैं तो जीवन की सफलता है। राजस्थान का दक्षिणी भाग उदयपुर संभाग मेवाड़ कहलाता है। इधर सीता का नाम और उसके नाम से दो बड़े मेले जनजातियों के लिए वरदान बने हुए हैं। इनमें से एक हाड़ौती क्षेत्र का सीताबाड़ी मेला तथा दूसरा मेवाड़ क्षेत्र का सीतामाता मेला प्रसिद्ध है।

सीताबाड़ी मेला

हाड़ौती क्षेत्र का सीताबाड़ी नामक अत्यन्त प्राचीन धार्मिक स्थल राम-सीता की स्मृति का जीवंत गाथारूप बना हुआ है। यहाँ के भग्नावशेष देख लगता है कि वह काल 12वीं-13वीं शताब्दी का रहा होगा जब वहाँ राम, लक्ष्मण, सीता के नाम से बने कुंड कई तरह के मिथक लिए लोकजीवन के श्रद्धापात्र बने हुए हैं। कोटा से लगभग 92 किलोमीटर की दूरी लिए उत्तर-पूर्व में स्थित सीताबाड़ी धर्मस्थल आदिवासी सहरियों के लिए सर्वाधिक श्रद्धामय है।

कार्तिक पूर्णिमा पर खासतौर से यहाँ विशाल मेला लगता है। चन्द्रग्रहण सूर्यग्रहण जैसे अवसरों पर भी विशाल जनसमुदाय के लोग यहाँ एकत्र हो स्नान आदि का पवित्र पुण्य कमाते हैं। प्रसिद्धि है कि यह स्थल वाल्मीकि आश्रम के रूप में आबाद रहा। अग्नि-परीक्षा के उपरांत भी सीता का परित्याग किया और यहाँ उसे कष्ट सहने के लिए आना पड़ा। यहीं लक्ष्मण वाल्मीकि तथा अन्य अरण्यवासियों ने सीता के निवास की व्यवस्था जुटाई। लव-कुश का जन्म भी यहीं हुआ और यहाँ वे शास्त्रविद्या तथा शस्त्रज्ञान में शिक्षित हुए। मुख्य रूप से सहरिया आदिवासियों ने यहाँ रहकर हर तरह का सहयोग किया और आश्रम में अपनी सेवाएँ देकर सीतामाता की सर्वप्रकारेण सुख-सुविधा का उपक्रम किया। आज भी सहरिया लोग इस भूमि को उसी श्रद्धा-समर्पण की भावना से पवित्र और पूजनीय समझ नमन करते हैं।

यह सारा स्थान चमत्कारिक तथा श्रद्धापूर्ण रहस्यों से अटा हुआ है। कुंड में नहाने से कोढ़ तथा कई प्रकार के चर्मरोग दूर हो जाते हैं। सीता कुटी तब कैसे बनी होगी, इसकी झाँकी वर्तमान में भी बहुत कुछ संकेत देती लगती है। वृक्षों की सूखी टहनियों और पत्तों से निर्मित यह कुटिया अपनी निर्मिति में इस प्रकार गठन-गुंथन लिए है कि न तो हवा के झोंके से ही यह हिल पाती है और न आँधी-अंधड़ का ही प्रभाव उसे पराजित कर पाया। कुटिया के अन्त:कक्ष में सीता के पदचिह्न हैं जिन्हें सीतामाता के पगल्ये के रूप में पूजा जाता है।

इस क्षेत्र की सीमा मध्यप्रदेश को स्पर्श करती है। पगडंडी मार्ग से मात्र बारह किलोमीटर दूर गुना पहुँचा जा सकता है। यहीं से चलकर दंडकारण्य वन में प्रवेश पाया, जाकर बहुत सारे वे स्थल दृश्यगत होते हैं जिनका वर्णन तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में किया है।

सीताबाड़ी परिक्षेत्र आम्र वृक्षों का सघन वनांचल है। पदे-पदे आम्र वृक्ष अपनी छायादार सघन छवि के लिए सबको मोहित किए रहते हैं। ग्रीष्मकाल में हर वृक्ष आम फल से लटालूट रहता है। जो भी आता है, भरपेट आम का मधुर फल सेवन करता है। इसकी खासियत यही है कि कोई इसे इस क्षेत्र से बाहर नहीं ले जा सकता। सीमा बाहर जाने पर वह फल किसी काम का नहीं रहता। या तो सूख जाता है या सड़-गल जाता है।

लव-कुश झूलना

चित्तौड़ जिले के बाड़ीसादड़ी से कुछ किलोमीटर की दूरी पर मऊँजवा पंचायत का सीतामाता स्थल भी पूरा का पूरा सघन वन से आच्छादित है। इधर भी वाल्मीकी का आश्रम है और सीता रही थीं। मंजूवा पंचायत के छोटे-छोटे सोलह खेड़े हैं जिसमें आदिवासी भील-मीणा की बस्ती है। यह मेला भी आदिवासी मेले के रूप में अधिक जाना जाता है। अधिकांश वृक्ष आम और चारोली के हैं। इधर जो तलैया है, किसी वक्त उसमें पत्थर की शिला तैरती थी। वैसाखी पूर्णिमा के मेले में सन् 1953 में मैंने इस पूरे मेले का भ्रमण किया था और वह शिला भी तैरती हुई देखी थी। यह कई दृष्टियों से चमत्कारिक

मानी जाती थी। एक नदी ऐसी भी है जिसे बार-बार पार करनी पड़ती है, शिलास्थल तक पहुँचने के लिए। यहीं पास में बड़ वृक्ष की जड़ेलियों का बना प्राकृतिक ऐसा झूला है जहाँ कहते हैं, लव-कुश झूला करते थे।

हाड़ौती क्षेत्र का सीताबाड़ी स्थल और यह स्थल, जंगल-जंगल की राह से सटे हुए ही थे। ऐसा अनुमान है कि दोनों स्थल एक ही थे और वाल्मीकि का आश्रम बड़ा फैलाव लिए घने जंगल से आच्छादित था। यों आज भी उदयपुर संभाग में सर्वाधिक आदिवासी भीलों की बस्ती है। ऐसी घनी बस्ती पूरे राजस्थान में अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलेगी।

जोगियों के संघ में रावण

जनजातियों में कई प्रकार के हरजस, भजन और भारत प्रचलित हैं। विशिष्ट अवसरों पर जहाँ उनका समाज जुड़ता है तब समूह रूप में मिलकर गीत-गावणी चलती रहती है। इसमें विविध देवी-देवताओं, भक्तों तथा महापुरुषों से सम्बान्धित कई गीत भजन टप्पों में रामजीवन से सम्बान्धित विविध घटना-प्रसंगों वाले कथन, कथानक बड़े रोचक मिलते हैं। वे कथानक आमजन में प्रचलित हैं, उनसे मिथक बड़े रोचक और नयी जानकारी प्रस्तुत करते हैं।

सति सीता जति हनुमान

लक्ष्मण के शक्तिबाण लग जाता है। राम बड़े दु:खी व्यथित और कायल हैं। वे कहते हैं कि कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाये जो मेरे भाई के प्राण लौटा दे तो उसे अयोध्या का आधा राज और उससे सवाई धरती दे दऊँ; लेकिन कोई ऐसा समर्थ सामर्थ्यवाला नहीं मिल रहा है। लोगों का विश्वास है कि ऐसी शक्ति या तो सति सीता में है या फिर जति हनुमान में। सीता के पास उसका सत, शीलव्रत और हनुमान के पास ऐसी जड़ीबूटी है जिससे लक्ष्मण पुनर्जीवित हो सकते हैं। कहा है—

''सत सऊँ जीवाड़े माता सीता सतवंती
बऊँटी सऊँ जीवाड़े हनुमान जती।''

रावण और सीता की आपसी वार्ता का एक हरजस है जिसमें रावण सीता से भिक्षा माँगता कह रहा है कि जोगियों का संघ आया है जो केदारनाथ जा रहा है। हे सतवंती नार! तुम्हारी फेरी (बस्ती) में भिक्षा माँगने आया हूँ। सीता कहती हैं—राम-लक्ष्मण दोनों भाई जंगल में हैं। मेरे चारों ओर कार लगी हुई है, अत: मैं तुम्हें भीख देने में असमर्थ हूँ।

रावण हल बताता है, उस कार के ऊपर सिंहासन, बाजोट धरो और उस पर पाँव रख मुझे भिक्षा दे दो। मैं अपनी भुजा पसार भीख ले लऊँगा। सीता इस पर मोतियों से भरा थाल लाती हैं। जोगी भेष रावण बड़ी चतुराई से सीता को उठा लेता है। कहता है—राम-लक्ष्मण को भूल जाओ। वे अभी लौटने वाले नहीं हैं। मैं तुम्हारे लिए रत्नजड़ित अँगूठी जड़ा दऊँगा। गले के लिए नवसर हार ला दऊँगा। हाथों में पहनने के लिए सोने का चूड़ा तैयार करवा दऊँगा। इस पर सीता को क्रोध आ जाता है। उसकी शान्त और सौम्य मुद्रा भयानक रूप धारण कर लेती है। गुस्से में वह कह उठती हैं—तेरी रत्नमऊँदड़ी को आग लगा दऊँ। नवसर हार को तार-तार कर दऊँ और स्वर्ण चूड़ले पर शिला पटक नष्ट कर दऊँ। मेरे राम सरीखे भरतार से तुम्हारा पाला नहीं पड़ा है। तुम सेंतमेत में ही अपना राज गाँवा दोगे और असाध्य दु:खों से धर लिए जाओगे—

"बाळू रे जाळऊँ थासे रतन मूदड़ो
तट के तोड़ूं नवसर हार जी ओ
सिलाड्याँ थारो सोवन चूड़लो
म्हारे राम सरीसो भरतार जी ओ
रावण थारो राज गंमासी
घणो होसी दुखदाई ओ।"

जनजातियों में राम-सीता के विविध प्रसंगों के साथ मुझे दशरथ के उद्भव का जो मिथ-प्रसंग सुनने को मिला उसने सर्वाधिक अचरज में डाल दिया। यह प्रसंग पहले न कभी कहीं पढ़ा और न सुनने में आया। लोकजीवन की सुबिद्धि और सुदृष्टि का ही यह कमाल कहा जायेगा कि उनकी प्रज्ञा-मति हजारों शास्त्रों से भी अधिक ज्ञानवान और सैकड़ों शस्त्रों से भी अधिक चलायमान सुफलदायिनी होती है।

पौधे से दशरथ मिलना

इसे जनजातीय जीवन चक्रावली की ही खूबी कहा जाय कि वहाँ भी दशरथ की उत्पत्ति की एक मजेदार घटना मिली। उसके अनुसार अयोध्या में एक नामी सेठ था। उसके एक पंडित नौकर था जिसे वह सेठ प्रतिदिन सोने की मुहर देता था। पंडित उस मुहर को अपने घर के परिंडे में वहाँ जहाँ पानी गिरता, रख देता। धीरे-धीरे वहाँ एक पौधा उग आया। यह खबर रघु के पास पहुँची। वे भी नौकरी पर निकले। उन्होंने भी पंडित के जैसा ही किया। रघु ने एक दिन परिंडे के जल टपकने के स्थान को खोद दिया जिससे वहाँ एक-एक कर नौ रथ निकले और अन्त में एक ऐसा रथ निकला जिसमें एक बालक बैठा हुआ अपने पाँव का अँगूठा चूस रहा था। रघु ने उसका नाम दशरथ रख दिया।

कहते हैं वही दशरथ आगे जाकर अयोध्या का राजा बना। राम उसी के राजकुमार थे। दशरथ ही नहीं, जनजातियों में तो सीता के लिए भी कहा जाता है कि वह खेत से निकली। जब एक किसान खेत जोत रहा था तब हल चलाते सीता प्रकट हुई। यों सीता को भूमिजा और भूमि के साथ हल और हल से जुड़ी जमीन से हल की नोक से बनी रेखा भी कहा जाता है। यह भी कहा जाता है कि जनकराज को खेती के लिए हल प्राप्त हुआ। उस हल से जोती गयी जमीन की रेखा में सीता की प्राप्ति हुई।

दशरथ की इस घटना से मुझे श्रवण की याद आ गयी जो मामा दशरथ से ही चोट खाकर मृत्युगामी बना। इस पर श्रवण के माता-पिता ने दशरथ को भी नहीं बख्शा। सच ही है जब घोर विपत्ति का पहाड़ आ गिरता है और सदमा इस कदर हृदयाघात कर देता है कि घनिष्ठ से घनिष्ठ रिश्ते भी वैरी बन जाते हैं और श्राप-ताप की ऐसी हाय लगती है कि उसकी लौ से बचना ही नामुमकिन हो जाता है। दशरथ के साथ भी उसकी बहिन और जामाता ने ऐसी बिताई कि अन्त तक वे उससे मुक्त नहीं हो पाए और अपनी करनी पर जो उन्हें श्राप झेलना पड़ा, वही उनके लिए अन्ततोगत्वा मारक सिद्ध हुआ।

श्रवण परिवार

लोकजीवन में श्रवण (सरवण) विषयक कई कथा कहानी, गीत और आख्यान सुनने को मिलते हैं। एक दिन एक काँवड़िया भाट ने अपनी काँवड़ बाँचते हुए उसमें चित्रित सरवण को बाँचा तो मैं श्रवण के सम्बन्ध में कई सारे प्रश्न कर बैठा। उसने बताया कि काँवड़ में तो श्रवण को केवल स्मरण मात्र कर

लिया जाता है, पर एक पूरी कहानी भी उसे याद है। यह कहानी अब तक की सुनी कहानियों से थोड़ी भिन्न और नवीन जानकारियों से युक्त थी जो इस प्रकार थी–

'श्रवण' सन्तन ऋषि का लड़का था। ज्ञानवंती उसकी माँ थी। दोनों जन्मान्ध थे और श्रवण को बड़ा प्यार करते ते। श्रवण भी परमेश्वर की तरह उनकी सेवा करता था। श्रवण की औरत विद्यावती थी। वह बड़ी चालाक, स्वार्थी तथा सास-श्वसुर की कोई सेवा नहीं करती थी। इनके पास दो पैंदे वाली एक हँड़िया थी। एक पैंदे में वह खीर आदि मिष्ठान बनाती; जबकि दूसरे में रूखे-सूखे बासी रोटी के कवे बनाती जो अपने सास-श्वसुर को राब-छाछ के साथ खाने को देती। श्रवण को इसकी कोई जानकारी नहीं थी।

एक दिन श्रवण अपने माता-पिता के पास बैठकर भोजन कर रहा था, तभी बाहर से बुलावा आने पर वह थाली माता-पिता के सामने रख चला गया। माता-पिता को जब थाली मिली तो उसमें रखा भोजन उन्होंने चख लिया। ऐसा स्वादिष्ट भोजन पाकर उन्होंने श्रवण से पूछा कि आज कोई त्योहार तो नहीं है? श्रवण ने ना कहा तब माता-पिता ने बताया कि आज उन्हें इतना अच्छा स्वादिष्ट भोजन मिला है, जबकि प्रतिदिन ही रुखा-सूखा खाने को दिया जाता है। श्रवण को यह सुन बड़ा दु:ख हुआ कि उसकी पत्नी तो तरह-तरह का भोजन बनाती है और उसके अन्धे माँ-बाप के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार करती है।

पत्नी की ऐसी हरकत से श्रवण ने अपने माता-पिता को तीर्थयात्रा कराने की सोची। वह एक काँवड़ लाया और उसके दोनों पलड़ों में उन्हें बिठाकर अयोध्या के निकट पहुँचा। एक दिन जब माता-पिता को प्यास लगी तो श्रवण नदी के किनारे पहुँचा और पानी भरने को झुका ही था कि उधर से शिकार पर आ रहे राजा दशरथ ने जानवर समझ बाण चलाया जो श्रवण को जा लगा। बाण लगते ही श्रवण के मुँह से निकला–**हतो राम / हतनोपुर ग्राम / सरवण म्हारो नाम।**

दशरथ यह सुन दौड़े-भागे वहाँ आये। जब देखा कि उन्होंने अपने ही भानजे पर तीर चला दिया तो वे श्रवण के माँ-बाप यानी अपने बहिन-बहनोई के पास गये और क्षमा माँगी। अन्धे दम्पति पुत्र-वियोग में फूट-फूट कर रोने लगे। उनके मुँह से निकला–**फिट रे दशरथ पाप कियो/फाणजो मार कांई जस लियो?** उन्होंने श्राप दिया कि जिस अग्निबाण से तुमने हमारे लाड़ले श्रवण के प्राण लिए उसी तरह तुम भी पुत्र-वियोग में प्राण त्यागोगे।

यह सुन दशरथ ने बाण को घिसना प्रारंभ किया; ताकि उसकी जलन का श्रवण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सके। घिसते-घिसते बाण की एक फाँस पानी में जा गिरी जिसे एक मच्छी (मछली) ने निगल लिया। वही मच्छी आगे जाकर राजा दशरण का भोजन बनी तब उसकी फाँस राजा दशरथ के पेट में चली गई। इससे उन्हें असह्य पीड़ा होने लगी।

कई समझे-बुझे वैद्य हकीम आये पर इलाज नहीं हुआ। तब एक ने यह भेद दिया कि रानी कैकेयी के मुँह में अमी है। यदि राजा दशरथ का अँगूठा वह अपने मुँह में रखे तो जलन मिट सकती है। दशरथ ने यह बात कैकेयी से कही। इस पर कैकेयी ने दो वचन माँगे और राजा की पीड़ा दूर हुई। कुछ समय बाद जब राम को राजतिलक देने की बात आयी तो मौका देख रानी कैकेयी ने राम को वनवास और भरत को राज देने के दोनों वचन माँग लिए। ये ही श्राप राजा दशरथ के काल बने।

मेवाड़ में श्रवण

यही श्रवण तीर्थयात्रा कराते समय मेवाड़ क्षेत्र की ओर आया। इधर के तीर्थस्थानों के दर्शन कराते जब वह सलूम्बर तहसील के उथरदा गाँव के पास आया तब अचानक उसके मस्तिष्क में माता-पिता के प्रति कुत्सित विचार पैदा हुए। उसने मन में सोचा कि तीर्थयात्रा कराते-कराते यहाँ तक आया हूँ; लेकिन बदले में मैंने क्या पाया? कितना समय व्यर्थ में गँवा दिया? यदि यही समय कुछ काम में व्यतीत करता तो कुछ तो कमाता। कमाई के नाम पर इनसे तो मुझे एक धेला तक नहीं मिला। सारी मेहनत ही निष्फल हुई और भाड़ा (पारिश्रमिक) भी कुछ प्राप्त नहीं किया। यह सोच उसने अपनी काँवड़ वहीं रख दी और माता-पिता से अपने परिश्रम का भाड़ा माँग लिया।

श्रवण की बात से उसके माता-पिता को जो वेदना हुई, उसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। हालाँकि दोनों अन्तर्ज्ञानी और श्रवण की हर हरकत से भली प्रकार परिचित थे; किन्तु वे लाचार थे सो कर भी क्या सकते थे। उन्होंने इसका अर्थ उस धरा की अमांगलिकता से लिया। वे जानते थे कि सब धरती एक जैसी नहीं होती। धरती-धरती का फर्क होता है। कोई धरती समृद्धि देती है। सुमंगल देती है। सुहावनी लगती है तो कोई अपशकुनी, अमंगली तथा कष्टदायिनी होती है; अतः उन्होंने श्रवण को बुरा बताने की बजाय यही कहा कि यहाँ से शीघ्र आगे की ओर चल दे और किसी अच्छी जगह अगला पड़ाव डाले।

सरवण भाड़ो गाँव

श्रवण ने यही किया और आगे चल दिया। पास ही एक ऐसा स्थान आया जहाँ श्रवण को ठहर जाने को कहा। वहाँ जाते ही श्रवण को सद्बुद्धि आयी और मन ही मन अपने द्वारा कहे गये कथन पर पश्चात्तप करने लगा। उसने अपनी गलती महसूस करते हुए कह—मुझे क्षमा कर दीजिए। मेरे मन में कुबुद्धि घर कर दी थी सो मैंने आपसे भाड़ा माँग लिया था। कहते हैं, श्रवण की आत्मशुद्धि के कारण बाद में वहाँ जो गाँव बसा, उसका नाम ही सरवण भाड़ो पड़ गया। यह गाँव आज भी इसी नाम से जाना जाता है।

धर्म बहिन राखी बना

यह दिन पूर्णिमा का था। जब लोगों को इस घटना का पता चला तो सब दौड़े-दौड़े वहाँ आये और उत्साह एवं उल्लासपूर्वक उन तीर्थयात्रियों का मंगल कलशों से स्वागत किया। सामूहिक उजेणी की। इस समूहभोज को रामरसोई नाम दिया गया। वहाँ एकत्र सबके सब जनजाति के ही लोग थे, जो आज भी उस पूरे क्षेत्र में बसे हुए हैं।

सामूहिक उल्लासमय नृत्योत्सव में आदिवासी स्त्री-पुरुषों ने भाग लेकर पूरे वातावरण को अति आत्मीय रसमय बनाया। नृत्यमग्न आदिवासी बालाओं ने जहाँ श्रवण की कलाई में धागा बाँधा, वहीं अन्य स्त्रियों ने श्रवण के पिता-माता की कलाई में रक्षा-सूत्र बाँधकर उन्हें अपना धर्म भाई-बहिन थरपित किया। आदिवासी बालाओं में एक बाला ऐसी थी जो श्रवण और उसके माता-पिता की बड़ी लाड़ली बनी। उसका नाम राखी था। उसी घटना की याद में राखी का त्योहार चल पड़ा जो श्रवण-राखी का प्रतीक लिए है। भाई-बहिन का अटूट रिश्ता बना। मेवाड़ में ही नहीं, अन्यत्र भी रक्षाबन्धन को राखी नाम से ही सम्बोधित किया जाता है और रक्षा-सूत्र ही राखी का प्रतीक बना हुआ है।

राखी के दिन बहिनें भाइयों को राखी बाँधने से पहले श्रवण कुमार का दीवार पर कुंकुम से उँगलियों

द्वारा थापा मांडती हैं और श्रवण को राखी चढ़ाती हैं। माता–पिता की सेवा के लिए प्रसिद्ध श्रवण की यह पूजा सोणा–सोवणी कहलाती है। श्रवण की यह भक्ति प्रत्येक घर में भाई–बहिन द्वारा अपने माता–पिता की भक्ति की सीख लिए जानी जाती है। चावल या फिर सेवइयों की खीर का भोग (धूप) दिया जाता है। मेवाड़ में सेवइयों का वीड़ा नाम प्रचलन में है। गेहूँ के बारीक आटे को अच्छी तरह से गूँथ–गूँथ कर उँगलियों की सहायता से पतली–पतली लड़ें निकाली जाती हैं। यही लड़ें सूखने के बाद वीड़ा का रूप धर लेती हैं। मैगी के मूल में यही वीड़ा अथवा सेवइयाँ रही हैं।

आगे जाकर लकड़ी से निर्मित मन्दिरनुमा पाटों से बनी काष्ठकला काँवड़ भी श्रवण की काँवड़ के नाम से जानी गयी, जिसे श्रवण या सरवण भी कहते हैं। यह काँवड़ अपने हर घाट पर नाना प्रकार के चित्रों से मंडित होती है। मेवाड़ में चित्तौड़ के पास का बस्सी गाँव कावड़ निर्माता खैरादियों के लिए प्रसिद्ध है। यह काँवड़ को बाँचनेवाले काँवड़िया भाट कहलाते हैं जो अपने–अपने क्षेत्र में यजमानों के गाँव–घर जाकर काँवड़ बाँचने या काँवड़ फेरने के लिए जाने जाते हैं। काँवड़िया इस समय सफेद धोती, सफेद कमीज और सिर पर चूँदड़ीनुमा पगड़ी अथवा साफा पहनता है। तीर्थयात्रा के दौरान वह लाल धोती, पीली कमीज तथा सिर पर रामनाम की पट्टी बाँधता है। काँवड़ का प्रारम्भिक रूप भगवान राम और श्रवण से जुड़ी गाथा–चित्रावली का रहा। रामजीवन की प्रधानता के कारण यह काँवड़ रामजी की काँवड़ के नाम से भी पहचान लिए है।

हरवण काँवेड़िया

कौन–सी घटना समय के प्रवाह को साथ लिए धीरे–धीरे परिपक्व बन विकास के आयामों के बीच अपनी छाप छोड़ती है और एक मिथक के रूप में धीरे-धीरे जन–जन की उपहार बन जाती है, कुछ कहते नहीं बनता। यह श्रवण जनजातियों में सरवण नाम की धारा पकड़ते हुए हरवण के रूप में कंठासीन हो गया। उसके साथ उसका प्रतीक काँवड़ भी जुड़ गया और राखी के दिन उसकी स्मृति के रूप में उसका तीर्थाटन स्वरूप पूजा जाने लगा जो आज भी पूजा जा रहा है, न केवल जनजातियों में, बल्कि अन्य सभी जातियों में भी भाई–बहिन के त्यौहार के रूप में प्रसिद्धि लिए है।

श्रवण विषयक गीत

माँगणियार अड़भोपे तथा अन्यान्य जातियों में श्रवण के गीतों का बड़ा प्रचार है। मेवाड़ के अड़भोपे से अपने गाँव कनोड़ में सन् 1952 के अगस्त माह में सुना गया लोकगीत आज भी यदा–कदा सुनने को मिलता है। ये अड़भोपे राखी के दिनों में खासतौर से इस गीत को गाकर धानचून इकट्ठा करते हैं और हस्तरेखाओं को देखकर भविष्य कथन करते हुए भी पाये जाते हैं। गीत इस प्रकार है–

''बारा बरस का सरवण व्हिया
ले पोथी भणवाने चाल्या
भणिया वेद वतावे
जाय परण्या कलवंती नार
म्हारा पीयर में गा मैं घणी
म्हनै लेइने म्हारे पीयर चाल
आँधा आँध्या ने कुचा में नाक
नहीं डूबे तो सिला सरकाय

छानी मानी रे म्हारी पग की पेंजार
धारी हरीकी लाऊँ दो चार
खाती का बेटा धरम का वीर
कावड़ घड़दे चांगा चीर
कावड़ घड़ी मोतियाँ जड़ी
आगे बेवाड़ूँ म्हारो आँधो बाप
लारे बेवाड़ूँ म्हारी आँधी माय
कावड़ ले काँधे धरी
सरवण चाल्यौ तीरथ धाम
सरवण पूत पाणीड़ो पाव
तरस्या मरतां जीवड़ो जाय
अणी बनी में कुवो न बाव
पाणी कठसऊँ लाऊँ म्हारी मांय
उगूणी दिसा तलाव भर्‌यो
मामो दशरथ चौकी देय
वणसऊँ जायर पाणीड़ो ला रे पूत
चंपला री डाल कावड़ धरी
ले तऊँबो भरवा निसर्‌यो
पाणी जाय तऊँबो झकोल्यो
मामा दशरथ वायो तीर
लागियो सरवण के तीर
कूद पड्यो समंदर की तीर
मरतां-मरतां बोल्यो
मामा-मामा थऊँ हत्यारो
आंधी माय र आंधा बाप
पाणी माँगे रूंखां छाव
था पापी को कुण मुख देखे
दशरथ मामो ले पाणी
आँधा आंधी ने पावा निसर्‌यो
आंदो बोल्यो थूं कुण रे सरदार
म्हूँ आपको सरवण पूत
तू रे नाहीं म्हारो सरवण पूत
म्हें तो थारो मुख नहीं देखां
सरवण कारणे म्हाणो जोवड़ो जाय
ज्यऊँ म्हें मरां ज्यऊँ तु ई मरे
पूत बिना दुख मांय पड़े
तऊँ तो छोड़ चल्यो परलोक
थारे बिना म्हासऊँ रयो एन जाय

थासे होसी अम्मर नाम
राखी दिन घर-घर पूजसी
पूरोई जग संसार
जब लग रेवे या धरती
तब लग रेसी थारो नाम
या म्हांकी है आसीस
छोड़ चल्यौ म्हांको सरवण पूत
थां बिन म्हांको जावे पिराण।''

भावार्थ–बारह वर्ष का श्रवण हुआ। पुस्तक ले पढ़ने चला। पढ़े-लिखों ने उसे वेद आदि में पारंगत किया। उसने कलवंती (कलहवंती) नारी के साथ विवाह किया। वह बोला–मेरे पीहर में बहुत सारी गायें-भैंसें हैं। अन्धे-अन्धी तुम्हारे माता-पिता को कुएँ में डाल दो। नहीं डूबें तो उन पर शिला सरका दो। यह सुन श्रवण को बड़ा गुस्सा आया। उसने कलवंती को बहुतेरा बुरा कहा और डाँटा-फटकारा।

ऐसी स्थिति में अपने घर से श्रवण का मन उचट गया। तब वह खाती के पास गया और एक अच्छी-सी काँवड़ घड़ने को कहा। खाती ने हीरे-मोती जड़ी अच्छी सी काँवड़ तैयार कर दी। उस काँवड़ के आगे वाले पलड़े में पिता को और पीछे वाले पलड़े में माता को बिठाया। श्रवण ने काँवड़ कन्धे पर धरी और तीर्थयात्रा को चल पड़ा। आगे जाकर माता-पिता को प्यास लगी। उन्होंने अपने श्रवण पुत्र से पानी लाने को कहा; किन्तु वहाँ दूर-दूर तक कोई पानी नहीं दिखाई दिया। पिता बोले–पूर्व दिशा की ओर तुम्हारे मामा दशरथ चौकसी के लिए निकले हैं, उनसे जाकर ले आ।

श्रवण चंपा वृक्ष की डाल के नीचे काँवड़ धर तूम्बा ले पानी लेने चला। पानी में तूम्बा को झकोला। उसकी आवाज से दशरथ को लगा कि नदी किनारे कोई जानवर पानी पीने आया है। यह जान उसने तीर से निशाना साधा। तीर श्रवण को जा लगा जिससे वह समन्दर तट पर गिर पड़ा। राजा दशरथ वहाँ पहुँचा। मृत्यु को प्राप्त होते श्रवण ने अपने मामा दशरथ को कहा–तुम हत्यारे हो। मेरे अन्धे माता-पिता वृक्ष की छाया तले प्यासे हैं। तुम जैसे पापी का मुँह कौन देखे। यह सुन दशरथ उन्हें पानी पिलाने चला। उनकी बदली हुई पद-चाप सुन श्रवण का पिता बोला–तुम कौन हो? दशरथ बोला–मैं आपका श्रवण पुत्र हूँ। पिता बोला–नहीं तू मेरा श्रवण-पुत्र नहीं है। हम तुम्हारा मुँह नहीं देखना चाहते। श्रवण के बिना हमारे प्राण निकले जा रहे हैं। उन्होंने श्राप दिया–जैसे हम मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं, वैसे ही तुम भी मृत्यु को प्राप्त करोगे। अपने पुत्र के बिना हम दु:खों से घिर गये हैं। दोनों विलाप करने लगे–हे श्रवण! तू हमें छोड़ परलोकवासी हो गया। तुम्हारा नाम अमर होगा। राखी के दिन पूरे संसार में घर-घर तुम्हारी पूजा होगी। जब तक यह धरती रहेगी, तुम्हारा नाम रहेगा। यही हमारा आशीष है। यह कह वे दोनों भी मृत्यु को प्राप्त हुए।

दशरथ को लगा श्राप

कहना नहीं होगा कि राजा दशरथ के लिए उन्हें बहन-बहनोई, श्रवण के माता-पिता का श्राप उनकी मृत्यु का कारण बना। जब कैकेयी ने अपने वर में राम को चौदह वर्ष का वनवास देना और उसकी बजाय अपने पुत्र भरत को अयोध्या का राजा बनाना माँग लिया। कहाँ तो पूरे राज्य में राम के राज्याभिषेक की तैयारियाँ चल रही थीं, जनता उत्साह और उल्लास के मारे फूली नहीं समा रही थी और कहाँ अचानक कैकेयी ने वर माँगकर रंग में भारी भंग कर दिया। दशरथ पर इस विपत्ति का ऐसा पहाड़ गिरा कि अन्त में उन्हें अपने प्राण विसर्जित करने पड़े।

राम से जुड़ी रामायण से तो सभी परिचित हैं। इधर यह शब्द इतना प्रचलित है कि व्यर्थ की सारहीन वार्ता, बहस, किंवा बातचीत के लिए भी प्रयुक्त होने लग गया। बहुत हो गयी रामायण, क्या धरा इस रामायण में, छोड़ो इस रामायण को जैसे जुमले आये दिन सुनने में आते हैं। इसी प्रकार सीता नाम जहाँ सतवंती, शीलव्रती नारी के लिए भारतीय समाज का आदर्श बना हुआ है, वहीं यह पक्ष भी ध्यान देने योग्य है कि जितना दु:ख सीता ने उठाया, उतना अन्य कोई नारी ने नहीं उठाये। इसलिए कई जगह लड़कियों का सीता नाम रखना भी वर्जित रहा है।

सीता नाम दु:खवाची

सच ही है, सीता नाम दु:ख का कारक बन गया। सीता ही क्यों, शकुन्तला के साथ भी यही सोच बना हुआ है और मीरा भी कम दु:खी नहीं रही। उसे तो ससुराल वालों ने तो प्रताड़ित किया ही, पर पीहर वालों की ओर से भी कोई सुख एवं सहारा नहीं मिला। मैंने ऐसी महिलाएँ भी देखीं जो कभी भी अपनी पुत्रियों का नाम सीता, शकुन्तला या मीरा रखने के पक्ष में नहीं रहीं। उनका कथन था कि हर महिला यह जानती है कि ये नाम दु:ख भोग्ये हैं; लेकिन यदि कोई इन नामों का सहारा भी लेता है तो केवल इसलिए कि ये ही नाम उसके उदात्त चरित्र के प्रतीक भी हैं। उन्होंने दु:ख तो अथाह उठाया पर कभी भी अपने शील पर आँच नहीं आने दी। तीनों अन्त तक सतवंती, शीलवंती नार ही बनी रहीं।

सीता तो भटकी भी बहुत। कई परीक्षाओं से उसे गुजरना पड़ा। जिस लोक-समाज ने उसे लांछना दी, उसी ने उसे शिरोधार्य भी किया। सच है, सच्चे को ही कष्ट से गुजरना पड़ता है। कष्ट भी प्याज के छिलकों की तरह, एक के बाद एक, किन्तु वही अन्त में पूजनीय भी बनता है।

रामकथा के अतिवाद से रामायण के बहुत सारे वे पात्र तथा उनसे जुड़े घटना-प्रसंग दबे से रह गये, जिन पर ध्यान बहुत कम गया या गया ही नहीं। लोकजीवन में ऐसा कई बार, बार-बार होता है जब कोई घटना, कोई प्रसंग, कोई अवसर समझ और स्थिति-परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होता हुआ अपना अर्थ बदलता रहता है और कभी-कभी यह बदलाव इस कदर हो जाता है कि उसकी असलियत भी अलोप हो जाती है।

श्रवण और राखी के साथ भी लगता है, यही हुआ। राखी जहाँ भाई-बहिन के अटूट प्रेम का प्रतीक त्योहार बना हुआ है, वहाँ इस अवसर पर श्रवण को काँवड़ लिए, उसके पलड़ों में उसके माता-पिता को बिठाया दिखाया जाना और उस चित्र का दीवार पर मंडावण और पूजा प्रतिष्ठा देख मुझे कई वर्षों से रक्षाबन्धन के साथ श्रवण की मान्यता का सन्दर्भ हाथ नहीं लग रहा था। जब मैं लोक की बात करता हूँ, उनके द्वारा मान्य घटना, प्रसंग, सन्दर्भ-कथा, चितर मंडन और गाथा आदि के जुड़े हिस्से को देखता हूँ तो शास्त्र-सम्मत विचार कथन को परे रखता हूँ। सच ही है, पोथियों, सूत्रों अथवा शास्त्रों में चढ़ी लिखावट जब लोक की धरोहर नहीं बन पाती है तब शास्त्र का कथन पोथियों में कैद होकर ही रह जाता है। ऐसा कथन हमारे अतीत काल का वैभव भले ही रहा होता है पर आज के सन्दर्भ का लोकजीवंत पक्ष तो नहीं हो पाता है।

विरासत का वैभव

जनजातियों में ऐसी बहुत सारी विरासत हमारे अतीत और वर्तमान की खोई, धूमिल हुई, विस्मृत कड़ियों को सूत्रबद्ध कर सकती है। ऐसा भी बहुत हो रहा है कि हम जब किसी का अध्ययन करते हैं तो मनुष्य,

आम मनुष्य के साथ जनजाति या कि आदिवासी वर्ग को अलग रखकर देखते हैं या कि उसे अलग से अध्ययन के लिए छोड़ देते हैं। मेरी दृष्टि में यह भी एक दृष्टि से नाइंसाफी है। यदि हम इनको भी अपने साथ रखें तो हमारा अध्ययन पूर्णता की कसौटी पर खरा और सही उतर सकता है।

जिन आदिवासी गाँवों में मैं जाता रहा, वहाँ अब वे लोग नहीं रहे जिनके पास बातचीत के लिए, बताने के लिए, पूछताछ के लिए पूरा समय, समझ और खजाना खोल देने का प्रेमभाव था, स्नेह-आदर और आत्मीय सम्मान का भाव था। उनके नहीं रहने से वह सब शून्य में बदल रहा है। बहुत कुछ खोते, लूटते, बर्बाद होते संस्कृतिजन्य सरोकारों को मैंने अपनी गीली होती आँखों से देखा है। लाख प्रयत्न करने पर भी कोई उस विरासती वैभव को प्राप्त नहीं कर सकता।

इतना सब कुछ होते हुए भी मैं निराश नहीं हूँ। मनुष्य ही में वह शक्ति है कि वह सबकुछ लुप्त-गुप्त होने पर भी अपने हिये की आँखों से वह सब देखने की सामर्थ्य रखता है; क्योंकि उनका जीवन केवल वर्तमान का जीवन ही नहीं होता। वह अतीत की अनदेखी नींव पर अपने वर्तमान की दिव्यता एवं भव्यता के साथ खड़े भविष्य को अपनी निगारों में चाहे तो कैद कर सकता है। आवश्यकता है, हम जनजाति के लोगों को अपना मित्र बनायें और उनके पास जो ज्ञान-सम्पदा, गुण-सम्पदा तथा जीवन-सम्पदा का आध्यात्मिक उत्स एवं उल्लास है, उसे ग्रहण करें।

सर्वत्र राम ही राम

राम सर्वत्र हैं। अच्छाई में भी और बुराई में भी। इतनी व्यापकता अन्य किसी नाम, महापुरुष और देव में नहीं मिलेगी। यहाँ सुखमय जीवन में भी राम है। आराम में भी राम छिपा हुआ है और अकर्मण्य बने रहने वाले निठल्ले हराम में भी राम की मौजूदगी है। हरामखोर जीवन जीने वाले भी कहते हैं– राम हमारे भीतर छिपा हुआ है। राम का नाम भी कितने अजब-गजब का है कि राम-राम रटनेवाले का तो उद्धार होता ही है, उसका उल्टा मरा-मरा जपने वाला भी बेड़ा पार ही लगता है। राम समद्रष्टा हैं। वह सबके साथ हैं। जो जैसा करेगा, वैसा भरेगा।

कई आदिवासी भाई मिले, जिन्होंने राम और कृष्ण में कोई भेद नहीं किया। सब कुछ जो राममय है, वही कृष्णमय है। आस्था और विश्वास हो तो दोनों में कोई भेद नहीं मिलेगा। तुलसीदास जब कृष्णनगरी द्वारिका गये तो वहाँ भी राम-राम की ही रट लगाते रहे। वे यह भूल गये कि यहाँ सभी कृष्ण-कृष्ण कहने वाले हैं, पर उनकी रामभक्ति टस से मस नहीं हुई। वे दिनभर मन्दिर की सीढ़ियों पर ही बैठे रहे पर उन्होंने राम-रटन नहीं छोड़ी। इस पर पंडों को दया आयी तो उन्होंने मन्दिर में प्रवेश दिया। वहाँ प्रवेश देने पर भी तुलसी कृष्ण की बजाय राम के ही दर्शन करना चाहते थे। कहते हैं, सच्चे भक्त की जिद्द भगवान भी पूरी करते हैं। तब देखते-देखते कृष्ण की प्रतिमा का सारा श्रृंगार उतरता गया और राम के जिस स्वरूप का तुलसी दर्शन करना चाहते थे, उन्हें उस स्वरूप के दर्शन हो गये।

आदिवासी इसीलिए सर्वप्रकारेण राम के ही रंग में रंगे हैं। कई रंगों के होते हुए भी उनका राम-रंग ही अन्त में असल और सर्वांगीण होता है। इसीलिए उदयपुर से 15 किलोमीटर दूर स्थित आदिवासी गाँव बड़ी ऊँदरी के सौ से अधिक की लम्बी उम्र जीते उदा बा पारगी ने मुझे समझाइश देते हुए कहा कि जीवन का रस है, वह भी राम-रस ही है। सब ओर लीला राम की ही है। इसलिए कहा भी गया–**रामजी री चिरकिली रामजी रा खेत/आवोरी चिरकिली खावो भर पे**

आदिवासी लोक साहित्य में उपलब्ध रामकथा प्रसंगों में सीता कथा-प्रसंग

डॉ. पूरन सहगल

मान्यता यह है कि सागर सबसे विशाल, गहन तथा विस्तीर्ण होता है। सागर से भी गहन, विशाल और विस्तीर्ण लोक होता है। सागर तो लोक का एक भाग मात्र है। इस विशाल सागर में वेद-पुराण और महाकाव्य समाहित हैं। इतिहास की भी सीमा होती है। लोक असीम और अनन्त है। जब इतिहास मौन हो जाता है तब लोक मुखर होकर उसे वाक्शक्ति प्रदान करता है। कई बार लोक का प्रवक्ता लोक साहित्य इतिहास की अँगुली थाम कर उसे निर्दिष्ट मार्ग पर चलाने का महत्त्वपूर्ण कार्य करता है तो कभी इतिहास भी लोक साहित्य का मार्ग प्रशस्त करता हुआ दिखता है। हमारा लोक साहित्य के मनोरंजन का साधन नहीं है। इसमें संस्कृति के बीजमंत्र निहित हैं। यह संस्कृति का प्रवक्ता, पोषक और संरक्षक है। इसलिए इसे सहेजना, समझना और संकलित करना आवश्यक है। अर्थवादी व्यस्ततम् भागम-भाग में हमने अपनी इस धरोहर की जितनी उपेक्षा की है, उसके कारण हमारे सांस्कृतिक धरोहर का बहुत बड़ा भाग नष्ट हो गया है, बिसर गया है। पारम्परिक लोक गायक एवं लोक कलाकार अपनी पीढ़ियों की परम्परा त्याग कर अन्य व्यवसायों में लग गये हैं। उन्हें जो राजकीय और सामाजिक संरक्षण और प्रोत्साहन प्राप्त था, वह बन्द हो गया है। वे मात्र भिक्षुक बनकर छा गये हैं। इस तंगहाली और उपेक्षा-वृत्ति के फलस्वरूप हमारा लोक साहित्य जितना बचा है, वह भी नष्ट होने के कगार पर पहुँच गया। लोक साहित्य को तलाशना अब रेत में से बाजरा बीनने जैसा दुष्कर कार्य बन गया है। बावजूद इसके हम निराश होकर कैसे और क्यों बैठे रह जाएँ? हमें सक्रिय होकर गाँवों, ढाणियों, कुटीरों, डेरों, पड़ावों पर जाकर उसे तलाशना होगा। श्रेष्ठता का अहंकार त्याग कर लोकमय हो जाना होगा। आज भी हमारी साठोत्तरी पीढ़ी के पास हम अपनी इस धरोहर को तलाश सकते हैं। विशेषकर आदिवासी समुदायों में उनकी संस्कृति आज भी जीवित है। उनका बखान आज भी मुखर हो सकता है।

सन् 2007 ईस्वी में ऐसा ही प्रयास भोपाल की 'आदिवासी लोककला एवं तुलसी साहित्य अकादमी' ने किया था। उन्होंने पत्र लिखकर एक कार्ययोजना सौंपी थी कि "हमारी जनपदीय वाचिक परम्परा में प्रचलित लोकगीतों में श्रीराम या रामकथा का उल्लेख हो, ऐसे गीत भावानुवाद के साथ संकलित करने का प्रयत्न हो।" मैंने निर्धारित 2 माह की अवधि के भीतर पूरी दशपुर जनपद में घूम-फिर कर ऐसे 41 लोकगीत एकत्र किये, जिनमें रामकथा के सन्दर्भ निहित थे। उन्हें कथाक्रम के अनुसार सम्पादित कर तथा उनका गद्य अनुवाद कर अकादमी को प्रेषित कर दिया था। यदि हम उस गद्यपाठ को पढ़ें तब हमें अद्‌भुत रूप में एक समग्र रामकथा का आभास हो जाता है। मैं उसे 'लोक

रामायण' कहना चाहता था। बालकवि बैरागी ने उसकी भूमिका लिखी और संकलन का नाम दिया 'लोक रमंता राम'। उसी संकलन को पढ़कर अकादमी के निदेशक डॉ. कपिल तिवरी ने मुझे फोन पर इतने अच्छे कार्य के लिए बधाई देते हुए संकलन का नामकरण 'लोकरंग में राम' कर दिया। वह रामकथा यद्यपि अप्रकाशित है; किन्तु उसका अप्रकाशन मेरी व्यस्तता एवं उसे और अधिक परिपूर्ण करने का मोह भी रहा। दशपुर जनपद आदिवासी समुदाय का सत्ता क्षेत्र रहा है। भील-सत्ता यहाँ दीर्घकाल तक कायम रही। बाद में मेवाड़ अंचल से राजपूत समुदाय ने उन्हें सत्ता से बाहर कर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया। आज भी इस अंचल में भील समुदाय और मीणा समुदाय की बहुलता बनी हुई है। उनकी लोक संस्कृति और बोली यहाँ की दशौरी मालवी में घुल-मिल गयी है; किन्तु उनके पास लोक-संस्कार एवं साहित्य अभी भी सुरक्षित हैं। मैंने उनके लोक कथक्कड़ों एवं आयुवृद्धों से उनकी गाथाएँ और कथाएँ एकत्र की हैं। कुछ पुस्तकाकार तथा कुछ अन्यत्र पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुई हैं।

लोक साहित्य तटस्थ भाव से अपनी बात कहता है। तटस्थ वह इसलिए रह पाता है कि उसे किसी राजा, जागीरदार अथवा साहूकार से जागीर या पुरस्कार नहीं लेना होता। जहाँ वह राम को भगवान रूप में प्रस्तुत कर उनकी महानता का बखान करता हुआ स्वयं को धन्य मानता है, वहीं वह सीता जी को निरपराध मानते हुए राम द्वारा सीता को वनवास भेजने के लिए उन्हें उलाहना देने से भी नहीं चूकता। "सीता ने दियो वनवास, राम जी आहणी नी करी।" लोक साहित्य का सबसे बड़ा सत्य यह भी है कि उसका सृजक कोई एक व्यक्ति नहीं होता, समूह होता है। वह व्यष्टिपरक नहीं होकर समष्टिपरक होता है। मैंने एक लेख में लिखा है कि "लोक साहित्य पैरों से नहीं पंखों से यात्रा करता है। वह सात समुद्र पार आ-जाकर वहाँ से बहुत कुछ ले आता है और बहुत कुछ दे भी आता है।"

जितनी बार उसका वाचन या गायन होता है, उतनी ही बार उसमें पाठ-भेद भी हो जाता है। कुछ घट-बढ़ भी हो जाती है। बावजूद इसके उसका केन्द्रीय भाव सदा अक्षुण्ण बना रहता है।

मैंने पिछले दिनों सीता जी पर आधारित एक लम्बा लोकगीत सुना। इसे सबसे पहले मनासा के मंसापूर्ण मन्दिर की भजन मंडली में सुना। तब उसके दो पद मेरे पल्ले पड़े थे। फिर इसी गीत को जावद तहसील के गाँव कोज्या, कदवासा में सुना। आखिरी बार इसे रतलाम तहसील के रावटी गाँव में सुना। यह क्षेत्र आदिवासी अंचल है। रावटी, व्याजना और सैलाना तीनों तहसीलें आदिवासी अंचल में आती हैं। मैं वहाँ मध्यप्रदेश के मेलों का सर्वे कर रहा था। यह गीत एक भिक्षुक गा रहा था। उसके पास रणत्या वाद्य था। पता चला वह वागड़ अंचल के भील समुदाय का व्यक्ति है और उसका नाम सुमन्या गमेती है। गीत इस प्रकार है—

सीता मइया लियो जी अवतार

"सीता मइया लियो जी अवतार।
धरणी की बेटी लियो जी अवतार।।
जगती में घणो पाप बढ़ि गयो, बढ़ि गयो जुलम अतचार।
धरम, नेम, मरजादा भांगी, डगि गया पागा चार।।
डीलां डील बढ़्यो रोगड़ो, कूण करे उपचार।
धरती माता आरत होवे, नहिं कोई दुख मेटणहार।।
सीता मइया लियो जी अवतार।
रिषियाँ की पत राखणहार।।1।।

रावण राकस जुलम कमायो, रिषियाँ ने संघार्‌या।
रगत काढ़ करसा में भर्‌यो, आसरम हगरा बार्‌या।।
चारी खऊँटाँ खड़ग घुमायो, राजा हमरा हार्‌या।
हाहाकार मची तिरलोकी, जुलम कर्‌या मन धार्‌या।।
हामऊँ पड़याँ मुँड उड़ावे, कर दे धूरमधार।
सीता मइया लियो जी अवतार।
सद्मत रावण हार।।2।।

रिषि मुनियाँ को रगत करसले रावणयो घणो पोमावे।
पुस्पक चढ्‌यो मऊँछाँ एँठे, मन ई मन इइतरावे।।
कार देव ने करी गरजना, ढब जा रावण के जावे।
रिषियाँ को यो रगत करस्यो, कार बणे खा जावे।
तू जणी भोम यो करसो मेले, वठे पड़े गा कार।
वंश नसावे, अंस नसावे, मेहलां ने करदे छार।।
सीता मईया लियो जी अवतार।
रावण वंस की कार।।3।।

सुण ले रावण, गुण ले रावण, कर ले खूब विचार।
थारे हाथों में धर्‌यो हे थारे वंस को कार।।
रिषियाँ मुमियाँ की तप-तपसा, नी हो सके बेसार।।
अणगण रिसियाँ की तपसा को हे करसो निरधार।।
जतरा पाप कर्‌या रे रावण, कर्‌या जतरा अतचार।
कतराई जोड़, जोड़ ले रावण, करसो बणसी कार।।
थारी रकसा नी कर पावे, सिव संकर, महाकार।
सीता मइया लियो जी अवतार, रावण को वंस नसावणहार।।4।।

रावण कसप्यो, पड्‌यो होच मे, जतन नजर नी आवे।
कार देव की गगन गरजना, बिरथा नी जा पावे।।
करसा को कई करूँ उपावो, होच-होच भरमावे।
बाऽअर ती तो गाठो दीखे, भीतर मन अकलावे।
राजा जनक घणों बलधारी, नी नाख्या हथियार।
बण की हीम में गाढ़ूँ करसो कर दऊँ बंटाढार।।
सीता मइया लियो जी अवतार। सतियाँ जतियाँ सतधार।।5।।

जनक राज तो तपे तपस्या, राज सिवां के सार।
रकत करस मुनियाँ की सगती, पड्‌यो राज में कार।।
गौतम रिसि ने जुगती काढ़ी, जनक सुणी चित धार।
अपणे हाथां धरती हाँको, निसचै भागेगा कार।।
धरती माता के गरभ में हे सगती को अवतार।

परगट होवे, जनक राज में, नियति को निसतार।।
सीता मइया ने लियो जी अवतार, दुस्ट दलन आधार।
सगती मता परगट्या, मैना मइया सुखसार।।6।।

हर हाँकता करसो फूट्यो, फूटी जी अमरतधार।
नान्हीं-नान्हीं आँखों वारी, लक्ष्मी की अवतार।।
ठुड्ढी तारो झलमले, झलमलयो अणियार।
मुलकावे, मन मोइत होवे, मैना के छूटी अमरतधार।।
बत्तीस धाराँ चोली भींजी, होयो जनम सतकार।
धन्न-धन्न देवत गण बोल्या, हो रई जै-जै कार।।
घन घुमड़्या नाड़ी घण गरजी, जल बरस्यो झमकार।
सीता मइया लियो जी अवतार, जनक पिता सुखसार।।7।।

जनकपुरी में सीता जी अवतर्‌या, अयोध्या में श्रीराम।
गुरु विसस्ट ती विद्या पाई, आसरम कर्‌यो मुकाम।
अस्तर-सस्तर निपुन संधार्‌या, धन्य हुआ गुरुधाम।
भरत, लखन, शत्रुघन साथे, मेहलाँ पधार्‌या सुखधाम।।
विसवा मुनि संग ताड़क वन पौंच्या, लखन वीर, सिरिराम।
ताड़का मार, अहिल्या तारी, पहुँच्या जनक सुधाम।।
सिव धनु चढ़ा सीता जी पर्‌ण्या खूब वई जैकार।
सीता मइया लियो जी अवतार, वै गयो लछमी को अवतार।।8।।

दासी मंथरा कपट कमायो, हुओ राम वनवास।
लछमन सीता संग में चाल्या, छनक नी ब्या उदास।।
लीलाधारी ने लीला रच दी, चौदा बरस बनवास।
राकसहीन धरा बणावण, दियो अटल विस्वास।।
धरम राख दुष्ट सब मारूँ, हे प्रन पालनहार।
सेस संग दुरगा अवतरणी, लछमन, सीता नार।
सीता मइया लियो जी अवतार, रिसि-मुनियाँ दुख मेटनहार।।9।।

रिसिमुनियाँ का दरसन करतां, खूब लिया आसीस।
सीता, अनसूया के चरणा नमयो, सुगनो सीस।।
अखन हुआगण रेहजो सीता, लुर-लुर हे आसीस।
सहजां रहिजो जनकदुलारां मत करजो हठ, रीस।।
रीसकर्‌याँ दुख ऊपजे, हठ ठान्या बगरे काम।
सावचेत वै मारग चालो, संग लखन सिरिराम।।
दूजे पंथे जाई पौंचजो, पंचवटी सुखधाम।
कुटि बणा रेहवास राखजो, कर्‌जो बठे मुकाम।।

विधि को लेखो विधि ही जाणे, कै जाणे करतार।
सीता मइया जनम लियो जी, विधि ने कर्‍यो निधार।।10।।

रावण ने छल छदम रचायो।
होना को मिर्‍गो पठवायो।।
रावण दुस्ट भेस धर आयो।
भिकसा कारण हाँक लगायो।।
जगदम्बा माता ने भरमायो।
कारदेव नोतो भिजवायो।
जेसी करणी वेसी भरणी।
मरवा को खातो खुलवायो।।
हरण कर्‍यो सीतामइया को खूब बढ्यो हंकार।
रिषि मुनियाँ को रकत असल में मइया सीता अवतार।।
रावण हाथाँ-हाथ ले चल्यो, लंकापुरी में कार।
वाह रे विधना खूब रचाई, लीला, लीलाधार।
सीता मइया लियो जी अवतार, लंक वंस की कार।।11।।

राम लखन जद पंचवटी आया।
दसा देख मन में अकलाया।
सीता-सीता करी पुकार।
सिथिल विया कर्‍का हथियार।।
जटायु राज ने आरत सुर में करी खूब गुहार।
दक्ख दिस रावण गयो सीता ने ले गयो लार।।
हिम्मत मति हारो राम जी, खांधे धरो हथियार।
सीता मईया लियो जी अवतार, दारुन दुख मेटनहार।।12।।

हणुमंत, सुग्रीव, जुड़गया, जामवंत, अंगद सरदार।
हणुमंत पहुँच्या लंकाभीतर, लाया सीता का हमचार।
लंका व्यारी राख बणा दी, हो रह्या हाहाकार।
नल-नील ने समदर बांध्यो, गया समंदर पार।
रावण को तो वंस नसायो, सिरिराम सिरकार।
सीता मईया खुद दुर्गा बण कर्‍यो सकल संघार।
सीता मइया रिषियाँ को सत, राखण को आधार।
सीता मइया लियो जी अवतार, धरती को भार उतारणकार।।13।।

राकस मार सिया-राम पधार्‍या, लछमण जी के लार।
रामराज की धजा फेहराई, दियो धरम आधार।।
दुस्ट कमाई दुसटता, माता पे दियो इलजाम।
राजधरम को पालन करता, विलख उठ्या सिरिराम।।

कतरी अगन परीक्षा लेऊँ, कतरो देऊँ बीसास।
बेबस वेतां दे दियो, सिता ने कठन वनवास।।
वालमीक का आसरम पऊँच्या, गरभ धार सतमास।
लव कुस जलम्या, उच्छव होयो, सीतां व्या उदास।।
राज मेहल का वारिस वेतां, सेवे आसरमवास।
रेह-रहे ठंड़ी सांसां लेवे, रेह-रेह भरे उसांस।।
विधना को लिखियो कुण वांचे, करे कूण उच्चार।
सीता मइया लियो जी अवतार, दुख झेलाय हरबार।।14।।

अस्वमेघ को अस्व छुड़ावा खुद आवा सिरिराम।
जण का जण ने होपताँ, कर्‌यो नमन परनाम।
लीला पूरी वै गई, हे प्रभु लीलाधार।
धरम निभायो हे धणी, धार धरा अवतार।।
धरती ती परगट वई, धरती करूँ समाव।
भूल-चूक त्वगसावजो, मनख जलम सुभाव।।
धरती माता परगट वी, चलक-चलक उजियार।।
ना कण जाण्यो ना देख्यो, सीता वई अलोप।
धन्न-धन्न देवत करें, नारद कहे अनोप।
पुस्पाँ की बरखा वई, देव करें जैकार।
सीता मइया लियो जी अवतार, सद्‌मत रावण हार।।15।।

सीतामाता परगट्या, लक्षमी का अवतार।
सीता माता परगट्या, सुरसत का अवतार।।
दुरगा समति परगट्या, सीता का अवतार।
सीता मइया लियो जी अवतार सद्‌मत रावणहार।।16।।

राम प्रभु अकला उठ्या, टप-टप बरस्या नैण।
सीता-सीता कंठती, फूट पड़्या दुख बैण।।
जीमणे ऊबा लव लत्ता, डावे कुस को ठाँव।
माता-माता करि उठ्या, नी लग पायो ढाँव।।
पलक झपकतां वइ गया, सीता सगत अलोप।
घन गेहर्‌यो, नाड़ी गजी, गजब हुओ घटटोप।।
वाल्मीकि औचक उबा, निरखे विधि को कार।
सुभ सलोक मुख ती काढ़्यो, राम कथा को सार।।
जतरे सूरज चंद्रमो, हे धरती निरधार।
वतरे सीता राम ने, नी भूले संसार।।
सीता मइया ने लियो जी अवतार सत्य धरम की राखणहार।
धरणी की बेटी लियो जी अवतार, सत्य-सील को सार।।17।।

भावार्थ–

1. सीता माता ने अवतार धारण किया। धरती की बेटी ने अवतार धारण किया।

संसार में बहुत पाप बढ़ गया। जुल्म और अत्याचार भी खूब बढ़ गया है। धर्म नियम और मर्यादा भंग हो गयी है। धर्म के चार चरण (सत्य, शुचिता, दान और दया) डगमगा गये हैं। सारी देह (समाज) रोगी हो गयी है। इसका उपचार कौन करे? धरती माता आर्तभाव से पुकार रही है। उसका दुःखभंजक कोई नहीं है। (इसलिए) ऋषियों की मान-मर्यादा की रक्षक सीतामाता ने अवतार धारण किया है।

2. रावण ने बहुत अत्याचार किये हैं। उसने ऋषियों का संहार किया है। उनका रक्त एक कलश में भर लिया है। उनके आश्रम जलाकर राख कर दिए हैं। उसने चारों दिशाओं में अपने खड्ग के बल पर सभी राजाओं को परास्त कर दिया। उसके मनमाने जुल्मों से सर्वत्र हा-हाकार मच रहा है। जो भी उसके सामने पड़ता है, वह उसका सिर उड़ाकर उसका नाश कर देता है। इसीलिए सद्मति देने वाली सीता माता ने अवतार धारण किया है।

3. रावण ऋषि-मुनियों के 'रक्त-कलश' को लेकर बहुत अहंकार दिखा रहा था। वह पुष्पक पर सवार होकर मूँछों पर ताव लगाकर मन-ही-मन इतरा रहा था।

तभी कालदेवता ने गरजना करते हुए रावण को सावधान किया। "अरे रावण ठहर जा। ऋषियों का यह रक्त-कलश ही तेरा काल बनेगा। तू जहाँ भी इस कलश को रखेगा वहाँ अकाल पड़ जाएगा। वंश का नाश होगा, महल जलकर राख हो जाएँगे। रावण के काल के रूप में सीतामाता ने अवतार धारण किया है।"

4. "अरे रावण तू अच्छी तरह मेरी बात सुन और समझ ले तथा खूब विचार कर ले। तेरे हाथों में तेरा ही काल रखा हुआ है। ऋषियों-मुनियों की तपस्या व्यर्थ नहीं जा सकती। यह रक्तकलश अनगिनत ऋषियों की तपस्या का सार है। तूने जितने भी पाप और अत्याचार किए हैं। तू कितना भी जोड़-घटाव कर ले। उपाय कर ले। यह रक्तकलश तेरा महाकाल (मृत्युदेवता) भी नहीं कर सकते। रावण (तेरा) वंश नाश करने के लिए ही सीता ने अवतार धारण किया है।" (भविष्य में करेगी)

5. रावण कालदेव की गगन गर्जना (आकाशवाणी) सुनकर चिन्ता में खो गया। उसे कोई उपाय नजर नहीं आ रहा था। वह जानता था कि कालदेव की आकाशवाणी व्यर्थ नहीं हो सकती। अब मैं इस कलश का क्या करूँ। उसे कुछ भी समझ नहीं आ रहा था। वह बाहर से तो मजबूत दिख रहा था, किन्तु भीतर मन बहुत व्याकुल था।

उसने सोचा राजा जनक बहुत बलशाली हैं। उसने मेरे सामने हथियार नहीं डाले हैं। यह कलश उसकी राज्य की सीमा में गाढ़ देता हूँ। उसका बंटाढार (सर्वनाश) हो जाएगा।

सीता माता ने सतियों और सतवंतों के सत्य की रक्षा करने के लिए अवतार लिया है।

6. राजा जनक जो शिव की तपस्या में लीन रहते थे। राज शिव के भरोसे चलता था। रक्तकलश तो मुनियों की शक्ति थी। राज्य में अकाल पड़ गया। ऋषि गौतम ने उपाय सुझाया कि "हे राजन यदि आप अपने हाथ से हल चलाओगे तो अकाल समाप्त हो जायेगा। धरती माता के गर्भ में शक्ति का अवतार स्थित है। विधि का ऐसा विधान है कि शक्ति का अवतार **जनक राज्य में होगा।**

सीता माता ने धरती से दुष्टों के नाश के लिए तथा मैना (जनकरानी) माता को सुख प्रदान करने के लिए अवतार धारण किया।

7. जैसे ही राजा जनक ने हल चलाया। एकदम अमृत की धारा फूट पड़ी। कलश फूट गया। नन्ही-

नन्ही आँखों वाली लक्ष्मी की अवतार कन्या दिख गयी। कन्या की ठुड्डी पर तारा झिलमिला रहा था। उनका स्वरूप आभायुक्त था। मुस्कान मन को मोह रही थी। मैना की माता के स्तनों से अमृत धाराएँ फूट पड़ीं। बत्तीस धाराओं से माता की कंचुकी भीग गयी। उनका जन्म सार्थक हो गया। उनकी कोख फलवती हो गयी। देवताओं ने कहा–धन्य है! धन्य है, कहकर आकाश से जय-जयकार की। बादल घुमड़ आये। बिजली गर्जने-चमकने लगी। जोर से वर्षा होने लगी। काल, सुकाल हो गया।

जनक पिता को सुख देने के लिए सीता मइया ने अवतार धारण किया।

8. जनकपुरी में सीताजी का अवतार हुआ। अयोध्या में श्रीराम जी का अवतार हुआ। श्रीराम ने गुरु वशिष्ठ जी के आश्रम में रहकर विद्या अध्ययन किया। अस्त्र-शस्त्रों में निपुण हुए। गुरुधाम धन्य हो गया। श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न को साथ लेकर महलों में पधार गये। फिर विश्वामित्र के साथ श्रीराम और वीर लक्ष्मण ताड़क वन पहुँचे। ताड़का को मार कर वन आश्रम में अहल्या का उद्धार किया। फिर वे जनक जी के सुधाम पहुँचे। वहाँ शिव धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाई, सीता जी से विवाह किया। खूब जै-जैकार हुई। सीता मइया ने लक्ष्मी के रूप का अवतार धारण किया।

9. मन्थरा दासी ने कपट किया। राम को वनवास हो गया। लक्ष्मण और सीता भी बिना उदास हुए संग में चले। लीलाधारी ने लीला रची थी। इसी कारण चौदह बरस का वनवास हुआ। श्रीराम ने धरती को राक्षस-विहीन करने का विश्वास दिलाया। मैं धर्म की रक्षा करूँगा। दुष्टों का विनाश करूँगा। पालन का भगवान श्रीराम ने प्रण लिया। शेष और शक्ति इसमें लक्ष्मण व सीता जी का अवतार हुआ।

ऋषि-मुनियों का दुःख मिटाने के लिए सीता जी ने अवतार धारण किया।

10. ऋषि-मुनियों के दर्शन करते हुए तीनों ने खूब आशीर्वाद प्राप्त किए। सीताजी ने महासती अनसूया के चरणों में सौभाग्य शीश नवाया। अनसूया जी ने सीता जी को अखण्ड सौभाग्यवती होने का अन्तर्मन से आशीर्वाद दिया। उन्होंने सीता जी को शिक्षा देते हुए कहा। हे जनक दुलारी! सदा सहज भाव में रहना। हठ और रीस (क्रोध) मत करना।

क्रोध करने से दुःख प्राप्त होता है और हठ करने से काम बिगड़ जाते हैं। सावधान होकर मार्ग तय करना। सदा श्रीराम और लक्ष्मण की रक्षा में रहना। दो मुकाम के पश्चात पंचवटी पहुँचकर सुखधाम समझ कर वहाँ कुटी बनाकर मुकाम करना।

विधि का लेख विधि ही जानता है या स्वयं ईश्वर जानते हैं। विधाता ने ही सीता का अवतार होना निर्धारित किया था।

11. रावण ने छल-छद्म की रचना की। सोने का मृग भेजा। स्वयं रावण भेष (साधू) बनकर कुटिया पर आया। भिक्षा हेतु अलख लगाई। जगदम्बा माता को भ्रम में डाल दिया। उसने ऐसा करके काल देवता को निमंत्रण दे दिया।

जैसी करनी वैसी भरनी होती है। उसने मरने का खाता खुलवा लिया। सीता माता का हरण करके खूब अहंकार करने लगा। सीता माता वास्तव में ऋषि-मुनियों के रक्त का ही अवतार हैं। इस प्रकार रावण अपना काल अपने हाथों स्वयं ही लंकापुरी ले चला।

वाह रे विधाता! तूने खूब लीला रचाई। सीता माता लंका-वंश के काल रूप में अवतरित हुई।

12. जब राम-लक्ष्मण पंचवटी लौटकर आये तब वहाँ की दशा देखकर व्याकुल हो उठे। सीता! सीता! पुकारने लगे। उनके हाथों से हथियार छूट गये।

जटायुराज ने आर्त स्वर में जोर से पुकार लगाई। उसने राम को बताया कि रावण सीता को लेकर

दक्षिण दिशा में गया है। वही सीता को अपने साथ ले गया है। आप हिम्मत मत हारो और कन्धे पर शस्त्र धारण करो।

सीता माता ने जगत के दारुण दु:खों को मिटाने के लिए अवतार लिया है।

13. हनुमान, सुग्रीव, जामवन्त और अंगद आदि सरदार मिले। राय करके हनुमान जी लंका पहुँचे, सीता का समाचार लाये। उन्होंने लंका को जलाकर राख बना दिया। लंका में हाहाकार मच गया।

नल, नील ने समुद्र पर बाँध बना दिया। सब समुद्र पार पहुँच गये। श्रीराम ने रावण का वंश नाश कर दिया। स्वयं सीता माता ने दुर्गामाता का रूप धरकर सर्व संहार किया। उन्हीं के बल राम ने रावण को मारा। वे ही रावण का काल बनीं। सीता माता ने सत की रक्षा करने के लिए अवतार धारण किया। उन्होंने धरती का भार उतारने के लिए अवतार लिया।

14. राक्षसों को मारकर रामजी, सीताजी व लक्ष्मण सहित अयोध्या लौटे। रामराज्य की यशपताका फहरा कर धर्म को दृढ़ किया। इसी बीच एक दुष्ट ने दुष्टता दिखाते हुए सीता जी पर कलंक लगा दिया। श्रीराम ने राजधर्म का पालन किया। वे मन में बिलख रहे थे। उन्होंने बिलखते हुए कहा–"मैं सीता की कितनी अग्निपरीक्षा लूँ? कितना विश्वास दिलाऊँ? विवश होकर उन्होंने सीता जी को वनवास दे दिया। सीता जी का त्याग कर दिया। सीता जी के गर्भ में सातमास का गर्भ था। वे वाल्मीकि के आश्रम पहुँचीं। वहीं लवकुश को उन्होंने जन्म दिया। आश्रम में उत्सव हो गया। सीता बहुत उदास थीं। राजमहल के वारिस आश्रमवास में रह रहे हैं। वे रह-रहकर ठण्डी साँसें लेती थीं और लम्बे उसाँस भरती थीं। विधाता का लिखा कौन पढ़ सकता है? कौन उसका उच्चारण कर सकता है? सीतामाता ने अवतार लिया। उन्होंने जीवन भर दु:ख भोगा।

15. अश्वमेध का अश्व मुक्त करवाने स्वयं श्रीराम, वाल्मीकि आश्रम पधारे। सीता जी ने 'क्षेम' जिसका जिसको सौंपकर विनम्र प्रणाम किया। उन्होंने कहा, "हे प्रभु! हे लीलाधर!! लीला पूर्ण हो गयी। हे स्वामी! मैंने आपके संग धरती पर अवतार लेकर धर्म का निर्वाह किया। मैं धरती से प्रगट हुई और धरती में समा जाना चाहती हूँ। मनुष्य जन्म के स्वभाव से भूल-चूक होती ही है। हे धणी! हे स्वामी! आप मेरी भूल-चूक क्षमा कर देना।

तभी सूरज की सी आभायुक्त धरती माता प्रकट हुई। प्रकाश इतना तेज था कि सबकी आँखें चौंधिया गयी। सीता को माता की गोद में अलोप होते न तो कोई देख सका और न कोई जान पाया।

देवताओं ने धन्य-धन्य जयघोष किया। नारद ने अनुपम कहा। देवताओं ने जय-जयकार करते हुए पुष्प-वर्षा की। सीता माता ने सद्मत की रक्षा करने हेतु अवतार धारण किया।

16. सीता माता लक्ष्मी का अवतार थीं। वे सरस्वती का अवतार थीं। वे माता दुर्गा की शक्ति के रूप में अवतरित हुईं। सीता माता ने सद्बुद्धि देने के लिए अवतार धारण किया।

17. राम प्रभु सीता के विदा होने पर व्याकुल हो उठे। उनके नयनों से टप-टप आँसू बरस पड़े। उनके कंठ से दु:ख भरे 'सीता-सीता' केवल इतने ही शब्द निकल पाये।

उनके दाहिने लव लला तथा बाएँ कुश लला खड़े थे। वेद माता-माता पुकार उठे। उनका भी कुछ बस नहीं चल पाया। शक्ति स्वरूपा सीता जी पलक झपकते ही ओझल हो गई। बादल घिर आए, बिजली कड़कने लगी, गजब अंधकार हो गया। घटाटोप हो गया।

वाल्मीकि जी अचम्भित खड़े-खड़े विधि की लीला निरख रहे थे। उनके मुँह से रामकथा का सार शुभ श्लोक निकल पड़ा।

जब तक धरती का अस्तित्व है, जब तक सूरज–चाँद है तब तक संसार सीता–राम को नहीं भूल पाएगा।

सीतामाता ने सत्य धर्म की रक्षा के लिए अवतार लिया। उन्होंने सत्य और शील (शुचिता) के सार रूप में धरती की बेटी के रूप में जन्म लिया।

सत्रह पदों की यह 'सीताकथा' एक सम्पूर्ण 'विरद वरवाण' है। लोक साहित्य में ऐसे अनेक कथा–प्रसंग उपलब्ध हैं जो धीरे–धीरे सीतामाता की तरह कंठ से प्रकट होकर कंठ में अलोप हो रहे हैं। इस लोक–सम्पदा की रक्षा–सुरक्षा हमारा परम दायित्व है। प्रस्तुत सीताकथा आदिवासी समुदाय में गायी जाने वाली लोकप्रिय तथा दुर्लभ रचना है। निश्चित रूप से इसका सृजन पीढ़ी–दर–पीढ़ी होता रहा होगा।

ऐसी ही एक और रचना समुद्र के राम के सामने प्रकट होकर राम को मार्ग देने के कथा–प्रसंग से सम्बद्ध है। वह रचना भी बहुत बड़ी है। समुद्र के स्वरूप का जैसा अद्‌भुत वर्णन उसमें किया गया है, उतना न रामचरित मानसकार ने किया है और न रामायणकार ने। उसपर अभी काम बाकी है। वह भी एक दुर्लभ रचना है।

एक लोकगीत में रामराज्य का कितना सहज वर्णन किया गया है–

''रामजी का राज घणो सिव संकर।
न कोई भौ न कोई भयंकर।।''

रामजी का राज्य बहुत शुभकर एवं मंगलकारी है। न किसी प्रकार का भय है और न कोई भय पैदा करने वाला है। आतंक और आतंकी सब समाप्त हो गये हैं। इस गीत की इन दो पंक्तियों में लोक ने रामराज्य की गरिमा और महनीयता प्रकट कर दी है।

यदि हम राम और कृष्ण की तुलना करें तब हमें कृष्ण–सम्बन्धी लोकगीत अधिक मिलते हैं। राम–सम्बन्धी लोकगीत कम मिलते हैं। कृष्ण के साथ लोक रंजन जुड़ा है। राम के साथ मर्यादा की सीमा है। उन्होंने कभी मर्यादा की रेखा नहीं लाँघी। सीता ने लाँघी तो पूरी कथा ही बदल गयी।

वाल्मीकि के अन्तिम श्लोक के अनुसार जब तक सूरज–चन्द्रमा रहेंगे, धरती का अस्तित्व रहेगा तब तक मर्यादा पुरुष राम और सत्यशील (शुचिता) की प्रतीक सीता जी का नाम भी रहेगा।

आदिवासी लोकगीतों में रामकथा

डॉ. लखनराम 'जंगली'

भगवान श्रीराम की स्थापना यद्यपि पुरुषोत्तम के रूप में है, किन्तु जनभावनाओं व लोक-भावनाओं ने अपने हृदय में भगवान श्रीराम को अयोध्या के राजमहल से उठाकर न सिर्फ भारतवर्ष; बल्कि दुनिया के कोने-कोने में, विशाल मन्दिरों में स्थापित कर युग-युगान्तर के लिए पूज्य बना दिया है।

लोकसभा में जनजातियों के प्रतिनिधि के रूप में स्थापित नेता रामविलास पासवान ने भरे सदन में चर्चा के दौरान भारतीय जनता पार्टी के नेता अटल बिहारी वाजपेयी व लालकृष्ण आडवानी की तरफ इशारा करते हुए कहा था-'आपके पास राम कहाँ हैं। आपके पास तो अटल हैं, आपके पास लाल हैं, राम तो रामविलास के साथ हैं।' यह बात भले ही राजनीतिक सन्दर्भ में कही गयी हो, किन्तु इस बात के निहितार्थ भी हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं, वनवासियों में भगवान राम के प्रति आस्था शाश्वत् रूप में विद्यमान है। इसके बावजूद कि कई जनजाति-शुभ-चिन्तकों ने भगवान श्रीराम को आर्यों का प्रतिनिधि बताया, कई जनजाति-चिन्तकों ने भगवान राम की महिमा को जन-जन तक पहुँचाने वाले महाकवि तुलसीदास को हिन्दू समाज का पथभ्रष्ट घोषित किया। जनजातियों का प्रतिनिधित्व करने वाले तथाकथित एक जनप्रतिनिधि नेता ने तो अभिलेखों में चले आ रहे पचासों साल पुराने अपने नाम से राम शब्द हटाने को अपने राजनीतिक उत्थान का कारण बताया। इन विषम परिस्थितियों के बावजूद जब राजनीति ने अपनी प्रकृति के अनुसार भगवान श्रीराम पर कीचड़ उछाला हो, कलम के सौदागरों ने उनके चेहरे पर आड़ी-तिरछी लकीरें खींची हों, सत्ता के दम्भ व क्रूर कट्टरता ने उन्हें बेघर किया हो, तो भी भगवान श्रीराम आज भी वनवासियों के हृदय में बिराजते हैं, जो उनके लोकगीतों में देखा जा सकता है। लिखित साहित्य के अभाव के बावजूद भगवान श्रीराम के प्रति श्रद्धा से सराबोर गीत वनवासियों की जुबान पर अपने पूर्वजों की थाती के रूप में सदियों-सदियों से सुरक्षित व पूजित हैं।

मैं सोचता हूँ, साहित्यिक-स्थापना अमरत्व का सोपान मात्र है; जबकि लोकस्थापना अमरत्व है। भगवान राम के अमरत्व का कारण भी लोकस्थापना है। भगवान श्रीराम लोक के प्रतिनिधि हैं, जन के प्रतिनिधि हैं। साहित्य तो लोक-मान्यताओं और लोक-स्थापनाओं के पीछे-पीछे चलता है। वनवासियों की लोककथाओं, लोकगाथाओं, लोकगीतों में भगवान राम की स्थापना के सन्दर्भ बड़े विषय हैं। आइये, वनवासी गीतों में भगवान श्रीराम की स्थापना पर थोड़ी चर्चा करते हैं।

वनवासी समाज का टोना-टोटका, भूत-प्रेत तथा अपनी प्राचीन मान्यताओं व परम्पराओं पर घोर विश्वास है। जहाँ नगमतिहा (सर्पदंश सम्बन्धी मंत्र) में मंत्रों की भरमार है, वहीं ओझाई गीतों की लम्बी श्रृंखला है। ओझाई के दौरान ओझा डीह-डीहवार, देवी-देवताओं का आवाहन सामान्य तरीके से तो करता ही है, गीतों में भी देवताओं की अभ्यर्थना-प्रार्थना करता है। देवीगीतों, अन्य गीतों के साथ-साथ अखरा (मंत्रों की पाठशाला में देवताओं, देवियों के लिए गाये जाने वाले गीत), आवाहन गीतों में भी

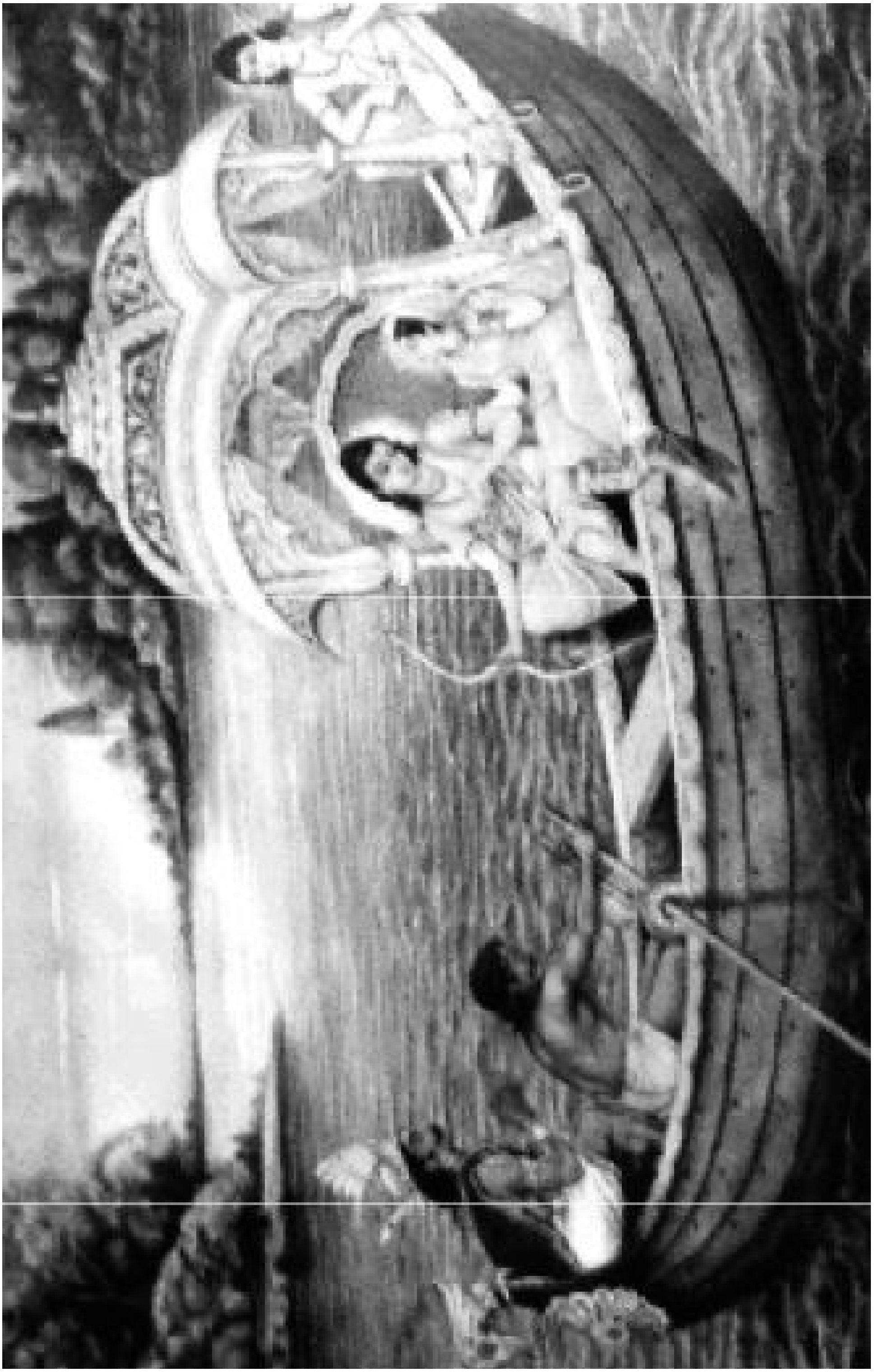

यत्र–तत्र सर्वत्र रामकथा विद्यमान है। कहीं राम की चर्चा है, कहीं हनुमान की तो कहीं रावण सहित अन्य पात्रों की। एक गीत जो अखरा में शिष्यों पर वीर हनुमान की सवारी के लिए गाया जाता है, इस प्रकार है–

''कहंवां न वोनहल कारी बदरिया, कहंवां न वोनहल देव,
कि देव हो कहंवां न वोनहल देव,
सरगेन वोनहल कारी बदरिया, अखसन वोनहल देव,
कि देव हो, अखरा न वोनहल देव,
काहे लागी वोनहल कारी बदरिया, काहे लागी वोनहल देव,
कि देव हो काहे लागी वोनहल देव,
बरसे न वोनहल कारी बदरिया, सुपली डोलावे बरे देव,
कि देव हो, सुपली डोलावे बरे देव,
रिमकी-झीमकि बन बरसेन लागे, लहरि-लहरि आवे देव,
कि देव हो लहरि-लहरि आवे देव,
जइसे न गरजे बाघ अउ बघीनियाँ, गरजत आवे वइसे देव,
कि देव हो, गरजत आवे वइसे देव,
झुरहुर-झुरहुर नार बहिय गये, संइये पइसी अजनी नेहाय,
कि देव हो सेइये पइसी अजनी नेहाय,
अजनी नेहइते बहे पुरवइया, अजनी गरभ रहि जाय,
कि देव हो अजनी गरभ रहि जाय,
कथ रे महीना कर हनुमत बेटवा, कइयो रे घरीय कर रात,
कि देव हो कइयो रे घरीय कर रात,
दस रे महीना कर हनुमत बेटवा, सोरहो घरीय कर रात
कि देव हो सोरहो घरीय कर रात,
कवन कोखी जनमे राम भइया लछुमन, कवन कोखी बीर हनुमान,
कि देव हो कवन कोखी बीर हनुमान,
माई कोखी जनमे राम भइया लछुमन, पंजरी टोरीय हनुमान,
कि देव हो पंजरी टोरीय हनुमान,
हँसुआ न खोजे गये हँसुआ न पाने, कइसे दईबा नभिया छिनाय,
कि देव हो कइसे दईबा नभिया छिनाय,
हँसुआ न खोजे गये हँसुआ न बावे, नसूती में नभिया छिनाय
कि देव हो नसूती में नभिया छिनाय,
कवन लोहा दाबे राम भइया लछुमन, कवन लोहा बीर हनुमान,
कि देव हो कवन लोहा बीर हनुमान,
तीर रे धनुष दाबे राम भइया लछुमन, बुची टंगा बीर हनुमान
कि देव हो बूची टंगा बीर हनुमान,
कइयो मूड़ी काटे राम भइया लछुमन, कइयो मूड़ी बीर हनुमान
कि देव हो कइयो मूड़ी बीर हनुमान,

दस मूड़ी काटे राम भइया लछुमन, अनलेखा बीर हनुमान,
कि देव हो अनलेखा बीर हनुमान,
चिठिया न लीखी भेजे राम भइया लछुमन, अजनी बहिन चलि आव,
कि देव हो अजनी बहिन चलि आव,
कइसे के आवे जावे राम भइया लछुमन, गोदिया के बलका रोवाय,
कि देव हो, गोदीया के बलका रोवाय,
भैने के देहूँ दूध, दही, गाय सूरही, बहीनी के लहरा पटोर,
कि देव हो बहिनी के लहरा-पटोर।''

गीत में प्रश्न व उत्तर साथ-साथ चलते हैं। गीत का भाव इस प्रकार है—कहाँ पर बादल छाया हुआ है तथा देवताओं का आगमन कहाँ होगा? सरगे अर्थात् आसमान में बादल छाया हुआ है और अखरा (मंत्र पाठशाला) में देवताओं का आगमन होने वाला है। बादल क्यों छाये हुए हैं व देवता क्यों आने वाले हैं? बादल बरसने के लिए छाया हुआ है और देवता सुपली (छोटा सूप) डोलाने के लिए आयेंगे। दरअसल देवताओं के आवाहन के समय शिष्यों के हाथ में सुपली पकड़ाया जाता है। आवाहन गीत के समय जब हाथ का सुपली हिलने लगता है तो माना जाता है कि देवता की सवारी सुपली धारण किये हुए शिष्य पर आनेवाली है। रिमझिम, रिमझिम बरसात होने लगी है। जैसे बाघ व बाघिन गर्जना करते हैं, उसी प्रकार देवता गर्जना करते हुए आ रहे हैं। बरसात की वजह से जल नाले में चंचलता के साथ उछलकूद करते हुए प्रवाहमान है। नाले में प्रवेश कर अंजनी स्नान कर रही हैं। अंजनी के नाले में प्रवेश करते ही पुरुवा हवा बहने लगी है। पवनदेव के संयोग से अंजनी को गर्भ रह गया है। हनुमान (अंजनी-पुत्र) कितने माह के हैं, और रात कितने घड़ी की है? अंजनी पुत्र को दस माह गर्भ में आये हो गया है; जबकि रात्रि सोलह पहर की है। किस कोख में और कैसे राम व लक्ष्मण का जन्म हुआ और हनुमान ने कैसे जन्म लिया? राम व लक्ष्मण ने सामान्य रूप से जन्म लिया जबकि हनुमान ने जन्म लेते वक्त अंजनी का कमर तोड़ दिया। अर्थात् हनुमान का जन्म बहुत कष्ट से हुआ। जन्म के बाद लोग हँसुआ खोज रहे हैं, हँसुआ मिल नहीं रहा है। आखिर नालछेदन कैसे होगा? सेविका ने नाखून से नाल छेदन कर दिया। राम और लक्ष्मण कौन सा लौहशस्त्र धारण करते हैं और हनुमान किस प्रकार का लौह अपने उपयोग में लाते हैं? राम और लक्ष्मण तीर और धनुष धारण करते हैं; जबकि हनुमान छोटी कुल्हाड़ी धारण करते हैं। राम और लक्ष्मण ने कितना सिर काटा और हनुमान ने कितना सिर काटा? राम और लक्ष्मण ने दस सिर काटा; जबकि हनुमान ने अनगिनत सिर काटा है। राम और लक्ष्मण ने अंजनी बहन को पत्र लिखकर अपने यहाँ बुलाया है। अंजनी कहती हैं कि हे भ्राता द्वय, अपने गोद के बालक हनुमान को रुला कर कैसे आऊँ? राम और लक्ष्मण कहते हैं, बहन तुम चली आओ। भगिना! हनुमान को दूध-दही खिलाकर प्रसन्न करेंगे, साथ ही देवलोक से प्राप्त सुरही गाय देंगे और तुम्हारे लिए ढेर सारा वस्त्र प्रदान करेंगे।

इसी प्रकार हनुमान के अशोक-वाटिका में फल खाने व वृक्षों के ढहाये जाने का प्रकरण इस गीत में आया है।

''लंकागढ़े गये हनुमत, कवन-कवन फल खाये रे
केरा खाये कटहर खाये, छोलन कहाँ गिराये रे - लंकागढ़े.....
औंरा खाये जमती खाये, अठुली कहाँ लड़ाये रे - लंकागढ़े.....
बोइर खाये, मकवर खाये, मुह काहे बिजुकाये रे - लंकागढ़े.....
खाते बर तो खाये हनुमत, बीरीछ काबर ढहाये रे - लंकागढ़े.....''

गीत में हनुमान से पूछा गया है कि लंकापुरी में जाकर तुमने कौन–कौन सा फल खाया? केला खाया, कटहल खाया, उसका छिलका कहाँ गिराया? आँवला व जामुन खाया तो उसका गुठली कहाँ फेंक दिया? बेर, मकवर खाकर आपने मुँह टेढ़ा क्यों किया? फल खाया तो खाया, आखिर वृक्षों को क्यों उखाड़ कर फेंक दिया? इस गीत में अक्षय–बध सहित पूरे प्रकरण को गीत का विषयवस्तु बनाया गया है। पर्यावरण–संरक्षण की अनिवार्यता बतायी गयी है।

इसी प्रकार एक और गीत विचारणीय है। इस गीत से स्पष्ट हो जाता है कि वनवासी समाज रामकथा से कितनी गम्भीरता से जुड़ा हुआ है। इस गीत में नदी के किनारे–किनारे तथा एक पहाड़ के ऊपर कई वृक्षों का वर्णन है, जिस पर भगवान राम सहित कई लोगों को बैठा बताया गया है। साथ ही नीचे ग्रामजन, साधु–महात्मा बैठ कर कागभुशुण्डी का कथा–वाचन सुन रहे हैं, गीत इस प्रकार है–

''पहरी के उपरे दुइ गो बिरीछवा बर अउर पाकर नाव हो माय,
बोही बिरीछ परे दुई ठे बलकवा एक लक्षुमन एक राम हो माय,
पहरी के ऊपरे दुई ठे बिरीछवा, एक पीपर एक आम हो माय,
अमा उपर बइठे बीर बजरंगी, पीपर तरी बइठे गाँव हो माय,
वोही बिरीछ तरी कउआ भुषूण्डी राती दिन राम राम हो माय,
वोही बिरीछ तरी साधू महात्मा गरुण धरै नित ध्यान हो माय।''

अर्थात् पहाड़ के ऊपर दो पेड़ हैं, एक बरगद तथा दूसरा पाकर का। उन वृक्षों पर राम और लक्ष्मण विराजमान हैं। उसी पहाड़ के ऊपर दो और वृक्ष हैं, एक पीपल का दूसरा आम का। आम के ऊपर बजरंग बली विराजमान हैं, जबकि पीपर के नीचे सारा गाँव बैठा है। उन्हीं वृक्षों के नीचे काकभुशुण्डी रात–दिन राम नाम का उच्चारण कर रहे हैं। उन्हीं वृक्षों के नीचे साधु और महात्मा तथा पक्षीराज गरुड़ ध्यानमग्न कथा–श्रवण कर रहे हैं।

इसी प्रकार एक होली गीत में लंका नगर के विस्तार का वर्णन इस प्रकार है।

''माया पुछों हो तोहीं, लंका के भेद बताव हो सही।
माया पुछों हो तोहीं.....
काय रे जोजन वर लंका हो, काय रे जोजन हरी।
लंका के भेद बताव हो सही......
काय रे जोखन चकरायी, जहाँ रवना हरी।
लंका के भेद बताव हो सही......
दस रे जोजन गढ़लंका हो, बीस जोजन हरी
लंका के भेद बताव हो सही......
तीस जोजन चकराई हो, जहाँ रवना हरी।
लंका के भेद बताव हो सही......''

उक्त गीत में भांजा मामा से लंकानगर का विस्तार जानना चाहता है। मामा भांजे को लंका नगरी का विस्तार बीस गुणा तीस योजन का बताता है।

इसी प्रकार एक करमा गीत में भगवान राम की सेना का वर्णन है। गीत में विशेष रूप से हनुमान की बहादुरी की चर्चा की गयी है। गीत इस प्रकार है–

''राम के सेवइका हलुमाने, बराते हो राम के
कवन देव पूजे राम भइया लक्षुमन, कवन पूजे बीर हलुमाने,
बराते हो राम के.........

शंकर भोला पूजे राम भइया लक्षुमन, रामजी के पूजे हलुमान,
बराते हो राम के.........
कवन लोहा दाबे राम भइया लक्षुमन कवन लोहा बीर हलुमाने,
बराते हो राम के.........
अगड़-बगड़ लोहा दाबे राम भइया लक्षुमन, सुलुस लोहा बीर हलुमाने
बराते हो राम के.........
कइयो मूड़ काटे राम भइया लक्षुमन, कइयो मूड़ बीर हलुमाने,
बराते हो राम के.........
दस मूड़ काटे राम भइया लक्षुमन, अनलेखा बीर हलुमाने,
बराते हो राम के.........''

अर्थात् राम जी की सेना में वीर हनुमान श्रेष्ठ योद्धा हैं। भगवान राम जहाँ भगवान शंकर के उपासक हैं; वहीं हनुमान भगवान राम की उपासना करते हैं। भगवान राम अपने शस्त्रों के लिए किसी भी प्रकार के लोहे का उपयोग करते हैं; जबकि हनुमान नरम व लचीला लोहा इस्तेमाल करते हैं। राम और लक्षुमन मिलकर दस सिर काटते हैं तो हनुमान युद्ध के मैदान में अनगिनत सिर काट डालते हैं।

एक और करमा गीत उद्धरित है, जिसमें सीताहरण की चर्चा की गयी है, गीत इस प्रकार है–

''सीता के रावन हर लेवे, कइसे धीरीजा धरे हो।
कइसे धीरीजा धरे.......
सीता के हरन भये पीता के मरन, कइसे धीरीजा धरे
दुख दून भइले अपार कइसे धीरीजा धरे।
सीता के रावन हर लेवे....''

अर्थात् सीता को रावण चुरा ले गया, भगवान राम कैसे धैर्य धारण करें। एक तरफ सीता का हरण, दूसरी तरफ पिता दशरथ का मरण, उनका दुःख दूना हो गया है।

राजा दशरथ जी के वाण से श्रवण कुमार का कैसे प्राणान्त हुआ, इस सन्दर्भ का एक गीत काफी लोकप्रिय है। करमा गायन करने वालों के मुँह से इस गीत को सुनना एक अलग अनुभूति है। स्वर की दृष्टि से या फिर साहित्य की दृष्टि से गीत का प्रभाव अन्तर तक होता है। गीत इस प्रकार है–

''एक सरुवन पूत, अन्हां रे अन्हूरी कर लरिका.......
एक सरुअन पूत
हांथे त धरल कउड़िया हो, चलल कुम्हरा दुकान।
एक रे धरीला दुइयो आंतर हो, बासन गढ़ि देल।
अन्हा रे अन्हूरी कर लरिका....
एक में त चूरल खीर बखीरवा, एक में खटा हो महेर।
दुसरे चुरल दूध चाउर हो, रस बरनी न जाय।
अन्हा रे अन्हूरी कर लरिका....
सरुवन त आंसी भला छोड़ल हो अन्हीं घीची तीरी खाय।
जियहु-जियहु सरुवन पूता हो जीय लाखो ही बरीस।।
अन्हा के लिहल खन्हवरिया, अन्ही हाँथे डोरियाय।
लेइयो चलल बिरधा वन में जहाँ कोइयो नई हमार।।

अन्हा रे अन्हूरी कर लरिका....
नदी के तीरे तीरवहिया, एको रे चिरैया नहीं आव।
एके रे अमउरा बर पाके, हो चिरैया नरियाय।
अन्हा रे अन्हूरी कर लरिका....
एक फँका फाँकल दुसर फँका फाँके लागल चटका पियास।
एक बून पनियाँ पियाव, चोला छुटे रे परान।
अन्हा रे अन्हूरी कर लरिका....
नहीं देखों तलवा तलैया हो नहीं नियरे लाठ।
नहीं रे दिखरे जल पोखर, कइसे पनियाँ पियाओं।।
अन्हा रे अन्हूरी कर लरिका....
खाँखे तो घरल खंख तुमरी, चले सयरा डफोर।
भूभूक-भूभूक जल मरे, जल रे भरत कल छटके।।
लागल सरवन बान - अन्हा रे अन्हूरी कर लरिका....
राम राम कही लगे गिरले, रामा छुटे रे परान।
रखिया बटोरे राजा दशरथ, लागे नतुसी में फाँस।
अन्हा रे अन्हुरी कर लरिका....
अन्हा रे अन्हुरी छाती पीटेल हो छाती बिहरल जाय।
अन्हूरी त लगले सरापे हो, राजा रोवे घिघियाय।
अन्हा रे अन्हूरी कर लरिका....''

श्रवण कुमार अन्धा-अन्धी का एक ही लड़का है। पैसा लेकर कुम्हार के दुकान पर जाता है। कुम्हार एक घड़े में दो दीवार (दुई आँतर) अर्थात् तीन खाने वाला घड़ा गढ़ कर देता है। एक खाने में खीर पकाया गया, दूसरे में मट्ठा से बना खट्टा महेर पकाया तथा तीसरे में दूध और भात पकाया गया। श्रवणकुमार ने अपने अन्धे और अन्धी माता-पिता का (अंश) (औसी-हिस्सा) निकाला। दोनों ने खाना खाया और श्रवण कुमार को दीर्घायुष्य का आशीर्वाद दिया। श्रवण कुमार ने वृद्ध पिता को कन्धे पर उठाया व माता को हाथ में रस्सी के सहारे लेकर जंगल में चल दिया, जहाँ आदमी का नामोनिशान नहीं है। नदी के किनारे-किनारे चलता रहा। कहीं पक्षियों का निशान भी नहीं है; तभी एक आम तथा बरगद का पेड़, जिसपर फल पके हुए हैं, चिड़ियाँ चहचहा रही हैं, दिखायी पड़ा। एक दो ग्रास निगलने के बाद ही तेज प्यास लगने लगी। अन्धा-अन्धी ने श्रवण कुमार से पानी पिलाने के लिए कहा। श्रवण कुमार ने कहा-''यहाँ ताल-तलैया दिखायी नहीं पड़ रहा है, न ही लाठ-कुआँ है, पोखरा भी दिखायी नहीं दे रहा है, कैसे जल पिलाऊँ।'' फिर काँख में खंखतुमरी (काँख में दबाकर भरने वाला पानी का बर्तन) लेकर वहाँ पहुँचा, जहाँ पानी का तरंग उठ रहा था। श्रवण कुमार ने खंखतुमरी पानी में ज्योंही डुबाया भुभुक-भुभुक कर आवाज कर जल भरने लगा। आवाज के कारण राजा दशरथ द्वारा जंगली जानवरों का शिकार करने के लिए लगाया गया तीर-धनुष का यन्त्र (कल) छटक गया और बाण श्रवण कुमार को जा लगा। श्रवण कुमार वहीं मर गया। राजा दशरथ पास आकर देखते हैं तो उनका भांजा श्रवण कुमार मरा पड़ा है। राजा ने वहीं पर श्रवण कुमार का दाह संस्कार किया तथा राख बटोर कर जल में प्रवाहित करने लगे। राख बटोरते वक्त उनके नाखून में हड्डी का फाँस घुस गया (अशुभ लक्षण हुआ)। तभी अन्धा-अन्धी आ गये और श्रवण कुमार को मरा जानकर

छाती पीट-पीट कर रोने लगे। उनका कलेजा फटा जा रहा है। अन्धी व अन्धा ने राजा दशरथ को श्राप दे दिया। राजा रोने गिड़गिड़ाने लगे।

इसी प्रकार एक गीत में राजमहल व राजमहल में चलने वाली गतिविधि का वर्णन इस प्रकार है–

''चलि जाबे भाई रामगढ़ देखे न हो
काहे कोठिया उठावल अंटरिया उठावल हो,
झांके बदिन भीरी-भीरी ऐना लगवावल हो,
चलि जावे भाई राम......
अमवा लगावल इमलिया लगावल हो,
चाटे बदिन लेमो के लगावल हो,
चलि जावे भाई राम......
कवन रानी सूतल बाड़े कवन रानी जागल हो
कवन रानी रांचेल जेवनार
चलि जावे भाई राम......
बड़े रानी सूतल बाड़े छोटे रानी जागल हो,
मांझल रानी राँचल जेवनार,
चलि जावे भाई राम......''

गीत का भावार्थ इस प्रकार है–

चलो भाई रामजी का गढ़ी देखने को। उनके महल में जगह-जगह शीशा लगा हुआ है। दरवाजे पर आम और नीबू तथा इमली का पेड़ लगा है। बड़ी रानी सो रही है, छोटी रानी जगी हुई है तथा मझली रानी तरह-तरह का खाना बना रही है।

एक और गीत द्रष्टव्य है–

''राम धरे हो गुलेल छपकत फीरे माझे गली में
संवरा के अंगना में एक पेड़ निमिया हो, वोह में बइठे धवरेल,
फीरे माझे गली में........
नीम तरी माटी चिटमिटिया हो मांटीं लिहले सनाय
फीरे माझे गली में........
रुचि-रुचि गोरहा बनावे हो खेले मनवांकर खेल,
फीरे माझे गली में........''

भगवान राम गुलेला लिए गली-गली घूम रहे हैं। संवरा के घर में एक नीम का पेड़ है जिसमें धवरेल पक्षी (कबूतर की एक जाति) बैठा हुआ है। नीम के पेड़ के नीचे चिट-चिटा माटी है जिसमें भगवान राम धवरेल में शिकार के लिए मिट्टी सानकर गुलेल का पत्थर बना रहे हैं। भगवान राम मनुष्य का खेल खेल रहे हैं।

सीता व राम-लखन के बिना अयोध्या सून है, इस आशय का गीत इस प्रकार है–

''एक दिल लागल हमार सीताबीना घर अँधियार
दिल लागल हो हमार....
एक राम बिना अजोध्या सून दिल लागल हो हमार....
लखन बिना अजोध्या सून दिल लागल हो हमार....

ए बीर गइले लंका भेद हो, लगाय दिल लागल हो हमार....
ए बीर लेले सीता पहिचान, दिल लागल हो हमार....
ए सीता बीना घर अन्हियार।''

सीता का हरण और बालि-वध सहित रावण-वध का वर्णन नीचे लिखे एक और गीत में विस्तार से किया गया है। कुछ पंक्तियाँ उद्धरित हैं।

''ए जोगिया आयल गोया, कहाँ जोगी तुमा लरकावे हो।
रावन धइले जोगिया के भेष हो, वोही जोगी तुमा लरकावे हो।
सीता के रावन हर ले गये हो, वोही जोगी तुमा लरकावे हो।
राम लखन वने-वने सीता के करने हो, वो ही जोगी तुमा लरकावे हो।
मीत के करने बाली मारे हो, वोही जोगी तुमा लरकावे हो।
रवना के लिहले परान सीता के करने हो, वोही जोगी तुमा लरकावे हो।''

आदिवासी लोकगीत जो रामकथा से सम्बन्धित है, गीतों पर चिन्तन करने से वनवासियों का राम के

प्रति एकात्मक भाव का दर्शन होता है। आर्य, द्रविण, मंगोल के विवाद से दूर वनवासी–समाज सम्पूर्ण रामकथा को अपनी व्यथाकथा समझता है। तभी तो भगवान राम के हाथों में न सिर्फ तीर–धनुष; बल्कि पक्षियों के शिकार के लिए गुलेल भी पकड़ाता है। गुलेल पकड़ाने के साथ प्रभु राम की मर्यादा का भी पूरा ध्यान रखता है। तभी तो पक्षियों के शिकार को भगवान राम की मानव लीला बताता है। हनुमान गदाधारी हैं, इसपर वनवासियों को कोई आपत्ति नहीं है; शर्त इतनी है कि उनके हाथों में वनवासियों का पारम्परिक हथियार 'बूची' टंगा जरूर होना चाहिए। वनवासियों का मित्रता करने और इनके निर्वहन में पूर्ण विश्वास है; तभी तो बालि वध का एक मात्र कारण सुग्रीव का भगवान राम से मित्रता है। भगवान राम वनवासी परम्पराओं, मर्यादाओं, मान्यताओं को उनके गीतों में सम्पूर्णता से जीते हैं। बहन अंजनी को अपने घर बुलाते हैं तो अंजनी गोद के बालक हनुमान के रोने का जिक्र करती हैं, तो भगवान राम बालक को न सिर्फ दूधभात खिलाने की बात करते हैं; बल्कि सुरही गाय भी देने की बात करते हैं। साथ ही बहन के लिए वस्त्र आदि प्रदान करने की परम्परा का निर्वहन करते भी दिखायी देते हैं।

भगवान राम किस जाति के हैं, किस नस्ल के हैं, किस धर्म के हैं, इन विवादों से दूर वनवासी समाज ने भगवान राम को सम्पूर्णता से स्वीकार किया है। ऐसा सिर्फ इसलिए हो पाया है कि श्रीराम वनवासियों की आकांक्षाओं, मर्यादाओं, वर्जनाओं, उनकी भावनाओं सहित सभी अपेक्षाओं की कसौटी पर खरा उतरते हैं। भगवान राम जन के उपासक हैं, जनाकांक्षा के उपासक हैं, जन भावनाओं के उपासक हैं। सिर्फ और सिर्फ इसीलिए पुरुषोत्तम श्रीराम वनवासियों–सहित सम्पूर्ण हिन्दू समाज के भगवान के रूप में प्रतिष्ठित हैं, विद्यमान हैं।

छत्तीसगढ़ी प्रहेलिकाओं और लोकोक्तियों में श्रीराम

डॉ. (श्रीमती) अनसूया अग्रवाल

संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् गोस्वामी तुलसीदास ने जनभाषा अवधी एवं ब्रज में साहित्य-सृजन कर लोकभाषा को उच्चतम् स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया है। लोकभाषा लोकसाहित्य की भाषा है। 'रामचरितमानस' के पूर्व ही लोकसाहित्य रामनाम की महत्ता और रामकाज की उपादेयता से समृद्ध थी। एक तरफ लोकगाथाएँ जहाँ श्रीराम के चरित्र के अनेक पहलुओं को उजाकर करती हैं, वहीं दूसरी ओर लोकगीत में श्रीराम एक सामान्य पात्र के रूप में चित्रित हैं। जहाँ जनमानस अपने सुख-दुःख, हास्य-रुदन, पीड़ा-प्रसन्नता के अवसर पर श्रीराम को पुकारता है वहीं श्रीराम भी उनसे दूर कहाँ हैं? उनकी एक पुकार पर दौड़े चले आते हैं। अजर, अमर, अलौकिक पारब्रह्म परमेश्वर श्रीराम अनादि काल से आजतक महामानव, धर्मराज्य प्रवर्तक और सत्यमेव जयते के संस्थापक के रूप में प्रतिष्ठित हैं, किन्तु छत्तीसगढ़ के लोकसाहित्य में वही राम लौकिक धरातल पर गृहीत हुए हैं। यहाँ की प्रहेलिकाओं में राम अगम्य नहीं हैं, उन्हें जाना जा सकता है। अगोचर नहीं हैं, उन्हें देखा जा सकता है। अदृश्य नहीं हैं, उन्हें पुकारा जा सकता है। राम छत्तीसगढ़ के जनजीवन में रमे हुए दिखते हैं। यहाँ का जनमानस श्रीराम से अत्यन्त निकटता से जुड़ा हुआ है।

जैसा कि सबको विदित है, छत्तीसगढ़ एक कृषि प्रधान प्रान्त है। खेती यहाँ का प्रमुख व्यवसाय है। यहाँ का पढ़ा-लिखा बाबू भी खेतों में काम कर गर्व का अनुभव करता है। सम्पन्न से सम्पन्न व्यक्ति और निर्धन से निर्धन व्यक्ति खेत का एक कोना पाकर मुदित हो उठता है। वह अपने खेत में भरपूर मेहनत करता है; तभी उसकी धरती सोना उगलती है। प्रस्तुत पहेलिका में श्रीराम एक कृषक के रूप में उपस्थित हैं, वे हल चला रहे हैं और सीता मैया आज्ञाकारिणी पत्नी की भाँति श्रीराम के खेत में बासी पहुँचाती हैं। बासी छत्तीगढ़वासियों का प्रिय आहार है। यह रात का बचा चावल होता है, जिसमें पानी डाल दिया जाता है। गोंदली यानि प्याज और आम की चानी यानि अचार के साथ बासी इतना जायकेदार लगता है कि इसको सामने पाकर छत्तीसगढ़ का व्यक्ति छप्पन भोग भी छोड़ देता है। रात में पानी में भीगे होने के कारण यह विटामिन सी से भी युक्त हो जाता है, अतः इससे पेट तो भरता ही है, सेहत भी दुरुस्त रहता है। छत्तीसगढ़ की इस संस्कृति और अलौकिक देवी-देवता को जो साधारणीकरण पहेली के माध्यम से पहेलीकार ने किया है, वह द्रष्टव्य है–

''राम निस नॉगर फाँदे, सीता ले दीस बासी
बिन बीजा के साग लान दे, हनू खावो बासी''

संस्कृत साहित्य में श्रीराम और अनुज लखन की जोड़ी जितनी प्रसिद्ध है, लोकसाहित्य में भी उतनी ही उल्लेखनीय और प्रसिद्ध है। श्रीराम की धर्मपत्नी सीता मैया हैं और पिताश्री हैं राजा दशरथ। उनके मंत्री हैं सुमंत। श्रीराम को वन पहुँचा देने का आदेश सुमंत को मिलता है। वनवास में श्रीराम को अनेक कष्ट उठाने पड़े हैं। जिस श्रीराम के कोमल चरणों में काँटे चुभे हैं; लोकसाहित्य में वे साधारण मानव हैं, उनकी

पीड़ा लोक की पीड़ा है, लोक उसे भुला नहीं पाया है, इसलिए लोकसाहित्य में राजा दशरथ और कैकेयी को लांछित किया गया है–

राजा पूछही त बताहों का, ये अंधेर कबले चहिली
जब ले चलिही, तब ले चलिही, नई चलिही त अपन घर चल दिही

सीता मैया को पुनः वनवास होता है, जहाँ ऋषि वाल्मीकि का आश्रम उन्हें प्राप्त होता है, जिसके संरक्षण में कुश का जन्म होता है। इस घटना से सम्बान्धित पहेली लोकसाहित्य में है। किन्तु यह चमत्कारपूर्ण घटना पूर्णतः लोकतत्त्वों पर आधारित है। शिष्ट साहित्य में वर्णित रामकथा से इसका दूर–दूर तक कोई सम्बन्ध नहीं है। लोकमानस से उपजी इस मनोरंजनात्मक घटना के अनुसार सीतामाता एक दिन अपने पुत्र लव को वाल्मीकि की देख–रेख में छोड़कर स्नान के लिए जाती हैं। लव पालने में सोये हैं। नदी पहुँचने पर माता की नजर एक बंदरिया पर पड़ती है, जो अपने बच्चे को छाती से चिपकाकर एक वृक्ष की ऊँची–ऊँची डाली में इधर–उधर कूद रही थी। माता उससे पूछती हैं–'बंदरिया, तुम नन्हे बच्चे को लेकर इतनी ऊँचाई से क्यों कूद रही हो? इसे तुमने घर पर क्यों नहीं छोड़ दिया?' बंदरिया कहती है कि 'यदि मैं इसे घर पर छोड़कर आऊँ तो कोई हिंसक पशु उठाकर ले जाएगा।' बंदरिया की बात सुनकर सीता का मातृहृदय भावी अनिष्ट की आशंका से काँप उठता है, तत्क्षण उनका ध्यान अपने पुत्र लव की ओर चला जाता है, जिसे वो कुटी में छोड़ आयी थीं। वे सोचती है–'कहीं वाल्मीकि सो गये होंगे अथवा अन्यत्र चले गये होंगे तो? उनके शिशु को कोई उठा तो नहीं ले गया होगा?' चिन्तातुर सीता माता तत्काल आश्रम लौट आती हैं और लव को गोद में उठाकर पुनः स्नान के लिए चली जाती हैं। इधर वाल्मीकि अर्धनिद्रा से जागते हैं, और पालने में लव को न देखकर चिंतित हो उठते हैं। वे सोचते हैं कि पुत्री सीता जब लौटकर आएगी और पालने में शिशु को नहीं पाएगी तो उसे मर्मांतक पीड़ा होगी। उनके कष्ट की कल्पना मात्र से वाल्मीकि द्रवित हो उठते हैं और अपने देह के कल्मष से एक शिशु की रचना कर उसकी मंत्रसाधना से उसपर कुश का छींटा मारकर उसमें जीवन फूँक देते हैं। तंत्र–मंत्र से जीवन प्राप्त वह बालक किलकारी मारने लगता है। मुनि श्रेष्ठ उसे पालने में सुलाकर निश्चिन्त हो जाते हैं।

इधर सीतामाता स्नान कर जब लौटती हैं तो पालने में अपने शिशु के प्रतिरूप कुश को देखकर हतप्रभ रह जाती हैं। उसे चकित देख वाल्मीकि सारा वृत्तान्त कह सुनाते हैं; सारा वृत्तान्त सुनकर सीता कुश को भी अपना पुत्र मान लेती हैं। इस तरह प्रस्तुत पहेली में कुश–जन्म की कथा सत्यापित है–

''निरसंखी को संसों भयो, बिन बाप के पूत
अहू पूत कब?
माता नी रिहीस तब''

न केवल शिष्ट साहित्य में; अपितु लोकसाहित्य में भी 'रामचरितमानस' को श्रेष्ठ महाकाव्य माना गया है, जिसके श्रवण मात्र से कोटि–कोटि पाप कट जाते हैं और आदमी को मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। एक छत्तीसगढ़ी पहेली में 'रामचरितमानस' को एक ऐसे विशाल वृक्ष के रूप में कल्पित किया गया है, जिसकी शाखाओं में लगने वाले फलों के स्वाद को मानस के रसास्वादन से मिलने वाली आत्मशांति का पर्याय बताया गया है। यथा–

''एक पिंहड़न मोल, सबमें अलग-अलग डारा
सबमा फर लागिस त सबमा अलग-अलग सुवाद''

श्रीराम, सीता, लव-कुश के अतिरिक्त त्रेतायुगीन अनेक पात्रों का उल्लेख छत्तीसगढ़ी प्रहेलिकाओं में उपलब्ध है। यथा हनुमान, रावण, मंदोदरी आदि। लोकसाहित्य में भी हनुमान समस्त कष्टों के निवारक देव हैं। प्रभु राम की इन पर विशेष कृपा है। माता-सीता तो इन्हें अपना पुत्र मानती हैं। प्रभु राम और सीता हनुमान के हृदय में वास करते हैं।

हनुमान जी पवनपुत्र हैं। किंवदंती के अनुसार अंजनी और पवन के अप्रत्यक्ष संसर्ग से हनुमान का जन्म हुआ था। पुराणों के अनुसार पवन, अंजनी और हनुमान तीनों अविवाहित हैं, लोकसाहित्य में भी इन तीनों के विवाहित होने का प्रमाण नहीं मिलता, बुझौवल है–

''बाप कुँआरा, बेटा कुँआरा, अऊ कुँवारी महतारी
कोरा म लइका होवय, बताओ न वेदचारी''

एकाध पहेली में राम-रावण युद्ध के संकेत भी मिलते हैं। रावण कोई पात्र नहीं वृत्ति है, जिसे मारने का बीड़ा श्रीराम ने उठाया था। पौराणिक कथा के अनुसार रावण पर राम का विजय प्रतीक है–अमंगल पर मंगल का, असत्य पर सत्य का, अन्धकार पर प्रकाश का। यथा–

''जनमती टुरा के लागे हे टोपी, राम मारिन रावन ल उही मं।
किरिस्न मोहिन गोपी ल उही मं, भात खायेन आज हमन उही मं।।''

छत्तीसगढ़ की संस्कृति का रुझान सदैव धर्म और दर्शन की ओर अधिक रहा है। सभी मनीषियों ने यही माना है कि माया सदैव मनुष्य को धर्म ईश्वर से विरक्त करती है, किन्तु यदि परमात्मा को प्राप्त करने की चाह हो तो भक्ति सद्कर्म, सत्ज्ञान, उपासना, यज्ञ आदि माध्यमों का सहारा लिया जाना चाहिए। छत्तीसगढ़ी प्रहेलिकाओं की भाँति लोकोक्तियों में श्रीराम नाम का भरपूर उल्लेख है। यहाँ भी श्रीराम सर्वसमर्थ हैं, उनकी इच्छा के बगैर कुछ भी हो पाना सम्भव नहीं है, यथा–

''राखही राम त लेगही कोन, लेगही राम त राखही कोन''

राम को प्राप्त करना सहज नहीं है। श्रीराम को प्राप्त करने के लिए साधना की जरूरत है, ठीक वैसे ही जैसे किसी कार्य के सम्पादन के लिए हिम्मत की आवश्यकता है–

''रोए मं राम नई मिलय''

श्रीराम दिव्य गुणों की खान हैं। छत्तीसगढ़ के कण-कण में ये बसे हुए हैं। छत्तीसगढ़ का जन इनका सुमिरन निरन्तर करता रहता है–

''भज मन सीता राम, कौड़ी लगे न दामा''

छत्तीसगढ़ का जन श्रीराम के नाम से रमकर मोक्ष के लिए भी इच्छुक है। यहाँ की सरल-सीमा में जन जानता है कि राम नाम ही सत्य है, शेष सब मिथ्या–

''मन मं राम भजन कर तोता, बिन भजन के खावे गोता''

यहाँ की लोकोक्तियों में श्रीराम के अतिरिक्त उनके अनुज लक्ष्मण और वानर साथियों का उल्लेख भी मिलता है यथा–

''रालबाभा संग ले, लंक जीन वर जाय
मेकु के मरना सुनय, रावन दुखी होइ जाय''

यहाँ रा, ला, बा, भा से तात्पर्य राम, लक्ष्मण, बानर, और भालू हैं। मे, कु का आशय मेघनाद और कुंभकरण है, जिसके मरने की सूचना से रावण दुःखी हो जाता है। इस तरह यह लोकोक्ति पौराणिक प्रसंग पर प्रकाश डालती है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि सीताराम छत्तीसगढ़ के मंगल और आनन्द की अनुभूति से जुड़े हुए हैं। श्रीराम का नाम, उनके उदात्त कार्य छत्तीसगढ़ अंचल में आज भी जीवित हैं। यहाँ का जन इन नामों से जीवन्तता और ऊर्जा प्राप्त करता है। यहाँ की लोकोक्तियों, प्रहेलिकाओं, लोकगाथाओं, लोककथाओं में ये मानवीय रूप में अवतीर्ण हुए हैं; इसलिए जन-जन के सुख-दुःख के ये साथी हैं, लोक इनसे कभी विलग नहीं हो सकता। यहाँ की मौखिक परम्परा में भी ये सदैव जीवित और जीवन्त बने रहेंगे।

उत्तराखण्ड के लोकजीवन में श्रीराम

डॉ. यशोधर मठपाल

उत्तराखण्ड तीर्थ-प्रदेश है, जहाँ हर जाति-धर्म विचार के लोग आते रहते हैं। यहाँ आदिवासी-आभिजात्य सभी वर्ग के लोग निवास करते हैं। ग्रामीणांचल में जनजातियों का बाहुल्य है, तथापि राम अथवा रामकथा सर्वव्याप्त, सर्वमान्य, सर्व-सुखदायी है।

उत्तराखण्ड में दो मंडल हैं–गढ़वाल और कुमाऊँ। गढ़वाल में 'महाभारत' के कथानक पर आधारित अभिनीत कला का प्रचलन है तो कुमाऊँ में रामायणी कथा की सर्वव्यापकता है। कुमाऊँ में रामलीला मंचन, रामचरितमानस का अखण्ड पाठ व सुन्दरकाण्ड का पारायण पूर्ण धार्मिक आस्था के साथ यत्र-तत्र होते रहते हैं, रामलीलाएँ वर्ष में दोनों नवरात्रियों (चैत्र व आश्विन) को गाँवों-नगरों में सामूहिक रूप से आयोजित होती हैं। कुमाऊँनी रामलीला शास्त्रीय संगीत व रागों पर आधारित होती है। यद्यपि पात्र बीच-बीच में गद्य का प्रयोग भी करते हैं; किन्तु रात्रि में विभिन्न प्रहरों के अनुसार विभिन्न राग-रागिनियों का मार्मिक गायन होता है, रामलीला के उस्तादों को समग्र नाटक कंठस्थ होता है, वे शास्त्रीय संगीत के विशारद होते हैं, हारमोनियम, तबला, सारंगी, वीणा, झाँझ, खड़ताल आदि का सम्यक् प्रयोग किया जाता है। पात्रों को एक माह पूर्व से तालीम दी जाती है, अपनी मार्मिकता के कारण कुमाऊँनी रामलीला प्रदेश से बाहर भी आयोजित होती है। दर्जनों विद्यालयों की अपनी-अपनी रामलीला समितियाँ होती हैं, जो विद्यालय की आमदनी का प्रमुख साधन भी हैं, ये समितियाँ दिल्ली, मुंबई जैसे महानगरों में भी लीला आयोजित करती हैं। रामलीला-मंचन इतना सजीव होता है कि राम-वनगमन, दशरथ-मरण, कौशल्या-विलाप, सीता-हरण और लक्ष्मण को शक्ति लगने के दृश्यों में नारियाँ जोर-जोर से रोने लगती हैं।

यद्यपि स्थानीय लोकभाषा कुमाउँनी में साहित्य रचनाएँ की जाती हैं; किन्तु रामलीला में हिन्दी और अवधी का ही मुख्यतः प्रयोग होता है, यदाकदा संस्कृत के श्लोकों का गायन किया जाता है। कुमाऊँनी रामलीला का आरम्भ सन् 1773 में माना जाता है। अतः इसमें गोस्वामी तुलसीदास के मानस का प्रचुर प्रभाव है। मार्मिक प्रसंगों में मानस की चौपाइयाँ यथावत् रख दी गयी हैं। इनके अलावा अरबी व फारसी का भी अल्प प्रयोग हुआ है जैसे श्रृंगी ऋषि को महाराज दशरथ अपनी व्यथा इन शब्दों में सुनाते हैं–

'क्या कहूँ मैं गुरु जी अपनी व्यथा, मुझको औलाद का गम सताता रहा।
हर तरह से हुई नाउमेदी मुझे अब, जमाना जवानी का जाता रहा।।'

उधर विश्वामित्र अवधेश को आशीर्वाद संस्कृत में देते हैं–

'लक्ष्मी ते पंकजाक्षी निवसतु भवने, भारती कंठ देशे।
बर्द्धताम् बन्धुवर्गाः सकल रिपु गणाः यान्तु पाताल मूलम् ...।।'

पुष्प-वाटिका में श्रीराम, सीता-प्रथम-दर्शन पर अनुज से कहते हैं–

'तनक निहारो तुम जानकी की छवि भाई,
वाटिका फिरत कोटि चन्द्र भी लजायो है।'

प्रभु राम ने अपने आगमन की सूचना देने महावीर को जब नन्दिग्राम भेजा तो भरत जी के साथ उनका संवाद मानस से ही पूर्णतः लिया गया है–

'जासु विरह सोचहु दिन राती, रटहुं निरंतन गुन गन पाती।
रघुकुल तिलक सुजन सुख दाता, आयहुं कुशल देव मुनि त्राता।।' आदि

कुमाऊँनी रामलीला का सबसे विलक्षण पक्ष, दशहरे पर प्रदर्शित होने वाले दशानन–परिवार के गगनचुंबी पुतले हैं, भारत में शायद ही कहीं अन्यत्र इतने विस्मयकारक पुतले बनते हों, जिनमें रावण, कुम्भकरण, मेघनाद के अलावा खर–दूषण, त्रिशिरा, ताड़का, शूर्पनखा, नरान्तक, देवान्तक आदि के पुतले बना कर वाहनों में बाजार में घुमाया जाता है, अल्मोड़ा शहर में पुतले के लिए एक–एक समिति बनी हुई है। वस्तुतः रामलीला के द्वारा रामायणी कथा आबाल वृद्ध सभी साक्षर–निरक्षर कुमाऊँनी स्त्री–पुरुषों को कंठस्थ हो गयी है।

देवभूमि के इस क्षेत्र में जितने भी धार्मिक संस्कार होते हैं, उनमें पुरोहित जहाँ संस्कृत में मंत्रोच्चार करते हैं, वहीं नारियाँ लोकभाषा में 'सगुन–आखर' गाती हैं, इन शकुन–गीतों में शायद ही कोई मंगल गीत हो, जिसमें श्रीराम, सीता, लक्ष्मण का उच्चारण न किया जाता हो, मंगलाचरण का आरम्भ ही इन शब्दों में होता है–

''शकूना दे शकूना दे सब सिद्धि काज में अति नीको शकूना बोल्या
दाईना बाजन छन, शंख शब्द दैणी तीर भरियो कलेश,
अति नीको सो रंगोलो, पटलो आँचली कमलै को फूल,
सो ही फूलू मौलावन्त, गणेश, रामीचन्द्रा, लछीमना, लवकुश,
जीवा जनम आधा अम्बर होय।
सोही पाट पैरी रहना, सिद्धि बुद्धि सीता देवी बहूराणी,
आयुवन्दी पुत्रावन्ती होय सोही फूलू मोलावन्ता।''

गणपति पूजन के बाद जब षोडश मात्रिका–पूजन होता है तो नारियाँ (जिन्हें मंगलमुखी या माँगोगाणी पुकारा जाता है) गाती हैं–

''कै रे लोक उपजनी माई मात्रा देव ए,
कै रे कोखी उपजनी रामचन्द्र पूत ए,
लछीमन पूत ए, चल तुमी माई मात्रा इनऊँ धरी आज ए।
इनऊँ धरौ धौला, हरा काज सोह ए।
कौशल्या राणी कोखी उपजनी रामीचन्द्र पूत ए,
सुमित्रा राणी कोखी उपजनी लछीमन पूत ए......''

एक संस्कार वसुधारा भी होता है, उसमें नारियाँ गाती हैं–

''वसोधारा वसोधारा धार उधारा, तसू घृत ले रामीचन्द्र लछीमन माय भरा ए,
वसोधारा वसोधारा धार उधारा,
तसू घृत ले सीता देही बहुराणी श्रृंगार कर ए।''

आवदेव संस्कार में श्रीराम, लक्ष्णम, कौशल्या व सुमित्रा राणी का आह्वान किया जाता है कि वे इस परिवार को दीर्घजीवन प्रदान करें। इस कुल की सभी बहुएँ पुत्रवती होवें, पुण्य आह्वान, कलश–

स्थापन नवग्रह-पूजा, अग्नि-स्थापना, नामकरण, नवजात को प्रथम सूर्य-दर्शन, ज्यऊँतिपूजा, सेली, यज्ञशाला-निर्माण, होम, यज्ञोपवीत में बटुक का स्नान, भिक्षा दान व अध्ययन हेतु काशी-प्रवास सभी में रामायणी पात्र विद्यमान होते हैं, उनमें सामान्यतः उपेक्षिता उर्मिला भी होती है, इतना ही नहीं, पावन अयोध्यापुरी का यश भी गाया जाता है, बटुक हेतु यज्ञशाला का जब निर्माण किया जाता है तो मंगलमुखी गाती हैं, **'वामण पुरोहित लै जन्यो सुजै छ, मेरि जनेऊ सुजै छ, बज्यू रामीचन्द्र लै, ककज्यू मेरा लछीमन लै शाला बणै छ। मेरि शाला वणै छ'** (वटुक के बोल हैं कि मुझे अभिमंत्रित जनेऊ ब्राह्मण पुरोहित द्वारा प्रदान किया गया, मेरे पिता रामचन्द्र व काका लक्ष्मण ने मेरी यज्ञशाला का निर्माण कराया है।)

इसी प्रकार कुमाऊँनी विवाह-संस्कार में सर्वप्रथम 'सुआल पथाई' होती है जिसमें नारियाँ आटे की रोटियाँ बनाकर धूप में सुखाती हैं, बाद में इन्हें तल लिया जाता है, पापड़ जैसी ये रोटियाँ, जिन्हें 'सुंआल' कहा जाता है, एक साल तक खराब नहीं होती हैं। इनके साथ चावल के भुने आटे या तिल को गुड़ की पाग में गूँथ कर बने लड्डू जिन्हें 'लाडु' कहते हैं, को सौगात के रूप में समग्र जाति-बिरादरी में बाँटा जाता है। सुआल पथाई के कई मंगल गीत हैं। एक गीत के बोल इस प्रकार हैं-

'को ए उ पण्डित लै कणि की मौले छ,
को ऊ सोहगिला लै कणि की छरौंछ,
पंडित रामीचन्दै लछीमन लै कणिकी मौलेछ।
सोहागिलि सीता देही लै बहुराणी लै कणिकी छरौछ।
अगप्य जतणा धूली बरौंछ छत्रा जतणा सवालि दुछैछ।
पड़ोसा वसनी सीता देही लै बहुराणी लै सुवालि दुछैछ.....''

विवाह संस्कार के प्रत्येक शुभ कार्य में (जैसे वर/कन्या स्नान, उबटन-लेपन, वर का अलंकरण, बारात का कन्या घर आगमन, धुलिअर्घ्य (द्वारचार) साखोच्चार, कन्यादान, विदाई तत्पश्चात्, पुत्रजन्म आदि के समस्त उछाहों में सगुन आखर तन्मयता व उल्लास से गाये जाते हैं-''भोजन जीमने में नारीवृद्ध द्वारा जो गालियाँ दी जाती हैं, उनमें भी हमारे राम जी सपरिवार उपस्थित रहते हैं। एक झलक देखिए-

''खंवन खंवन दियो जगायो जगमग ज्योति उजालो जी।
लाल ही कमल-झमक विद्वौना, आग पहुँचा विदेशीय लोग जी।
कहाँ के तुम विदेशीय लोगों कहाँ तुम लै जाणौ नेऊणौ जी,
अयोध्या के हम विदेशीय लोग जनकपुरी जाणौ बेऊणौ जी।।
रामीचन्द्र गारि कहा कैसे दीजे, लछीमन गारि कहा कैसे दीजे,
जाके एक बाबा तीन महतारी जी।
श्री कृष्ण गारि कहा कैसे दीजे, जाके एक बाबा दो महतारी जी।....''

समग्र उत्तराखण्ड में होली प्रधानतः बृजभाषा में ही गायी जाती है, जिसमें कुमाऊँनी भी मिश्रित होती है, और होली के महानायक भी नन्द के नटखट लाल ही हैं, जिस प्रकार हर शुभ कार्य का श्रीगणेश गणपतिवन्दना से होता है, उसी प्रकार होली-गायन का आरम्भ भी इन शब्दों से किया जाता है-**'सिद्धि को दाता विघ्न विनाशन, होरि खेले गिरिजापति वन्दन, गौरी को नन्दन, मूसा को वाहन, होरि खेलै गिरिजापति नन्दन।'** भगवान् शिव हिमालय के सर्वमान्य देवेश्वर हैं; अतः दूसरी होली-

''शिव दर्शन दीजे नाथ जटाधारी, शिव दर्शन दें।
पूरब दिशा से जातुरि आये, भीड़ भई तेरे मन्दिर में शिव दर्शन दें।।''

इनके बाद सर्वाधिक गाये जाने वाले गीत भगवान् कृष्ण, गोपियों, जमुनातट, ब्रजभूमि और मथुरानगरी पर आधारित हैं; फिर चाहे वह '**नदि जमुना के तीर कदम चढ़ि कान्हा बजाइ गयो बाँसुरिया हो**' या '**दधि लूटे नन्द को लाल वेचन ना जइए हो री हो**', हो या '**वृन्दावन केसर क्यों ना बोई। क्यों ना बोई नन्द लाल।**' अथवा '**मथुरा में खेले एक घड़ी, काहे के हाथ में डमरू विराजे, काहे के हाथ में लाल छड़ी.....।**' ही हो, श्रीकृष्ण-सुदामा-मिलन प्रसंग वाला एकाध गीत ही सभवतः करुणरस प्रधान होगा, शेष सभी श्रृंगाररस परक गीत हैं, इनके विपरीत मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम या रामायण के किसी प्रसंग पर आधारित होली गीत अधिकतर गम्भीर और करुणरस प्रधान हैं, दशरथ राजा के घर पुत्रजन्म से लेकर रावण-वध पर्यन्त कितने ही प्रसंगों पर होली के मार्मिक गीत हैं, कुछ प्रमुख गीत इस प्रकार है–

''भज दशरथ नंदन जनक लली,
दशरथ राजा के राम भये हैं, राजा जनक की भई है लली,
जनक स्वयंवर यज्ञ रचायो, तोड़ धनुष की बात चली है,
ये दोऊ भूप जनकपुर आए, पुष्प बिछाये गली गली।
स्यामल गौर किशोर मनोहर, निरखत मोही पुर की अली।
कौशल्या राम सुमित्रा लछिमन, जन्मी जोड़ी अवध भली।। भज....

× × ×

मुनिवर जठर पिनाक, परसत टूटि पड़ौ है,
जनक स्वयंवर यज्ञ रचो है, निजपुत्री के काज, परसत.....
देश देश के भूपति आये, सहित स्वजन गज बाज।
रामचन्द्र के छूवत कर से। खण्ड भये दो सात......
भृगुपति कोप अपार निरख के। कौशिक मुनि समुझात.....
राम सुनो कपटी तब भ्राता। चाहत जम पुर जात.....

× × ×

हाँ जी सीता वन में अकेली कैसे रही, कैसे रही दिन रात, सीता....
हाँ जी सीता रंगमहल में सब छोड़ चली है, वन में कुटिया बनाई, सीता.....
हाँ जी सीता षटरस भोजन छोड़ चली है, वन में कन्द मूल फल खाई.....
हाँ जी सीता सौड़ा सुफेदा छोड़ चली है, वन में पत्तियाँ बिछाई......
हाँ जी सीता पान सुपारी छोड़ चली है, वन में वनफल खाई....
हाँ जी सीता तेल फुलेला छोड़ चली है, वन में धूल रमाई......

× × ×

दशरथ को लछीमन बाल जती, दशरथ......
बारोबरस सीता संग रहिए, पाप न लागो एक रती। दशरथ......

× × ×

दशरथ भूप खेले होरी.... दशरथ भूप....
कौन राजा के कुँवर कन्हैया, कौन रानी के लाल री......

दशरथ राजा के कुँवर कन्हैया मात कौशल्या के लाल री......
राम लछीमन भरत सतुरघन, खेलें चारो भैया री.......
× × ×

कहत निषाद सुनो रघुनन्दन
कहत निषाद सुनो रघुनन्दन
सुने जगवंदन तुम सुनो जगवंदन
नाथ न लऊँ तुमसे उतराई।
नदी और नाव के हम हैं खेवइया।
वैतरणी के तुम रघुराई''

इन गीतों के अलावा शिवधनुष न टूट पाने पर सीता जी की मनोव्यथा पर भी एक होली गीत है तो दूसरा जयन्त की नादानी पर, एक गीत में भगवान् पवनसुत से लंका का हाल पूछते हैं तो दूसरे में मंदोदरी अपने वर को रामद्रोह की एक साथ वन्दना की गयी है, इन होली गीतों, मंगलगीतों और रामलीला नाटकों का जनमानस पर ऐसा प्रभाव है कि दो भाइयों में से एक का नाम यदि रामसिंह होगा तो दूसरे का लक्ष्णम सिंह, किसी व्यक्ति के यदि चार पुत्र हैं तो उनको 'दशरथ' उपनाम से जाना जाता है, ब्राह्मणों में सर्वप्रिय नाम रामदत्त है और हरिजनों में हर नाम के साथ 'राम' जुड़ा होगा, यथा नरीराम, धनीराम, शेरीराम, सदीराम आदि आदि।

उत्तराखण्ड के दोनों मंडलों के दो पौराणिक भूगोल हैं, जिन्हें क्रमशः 'मानस-खण्ड' और 'केदारखण्ड' पुकारा जाता है। लोकमान्यता है कि ये महर्षि वेदव्यास रचित 'स्कन्दपुराण' के ही खण्ड भाग हैं। मानसरोवर तक परिव्याप्ति होने से कुमाऊँ का पौराणिक नाम मानसखण्ड रहा है; जबकि केदारनाथ जी की पावन उपस्थिति के कारण गढ़वाल को केदारखण्ड पुकारा जाता रहा है, मानसखण्ड के 39वें अध्याय में सीतावनी का वर्णन है, जहाँ वैशाख माह भर सीता जी ने पवित्र कौशिकी नदी में स्नान कर तपस्या की थी और पूजा हेतु सीतेश्वर की स्थापना की थी। यह पूरा तात्त्विक स्थल हल्द्वानी-रामनगर के मध्य पवलगढ़ के समीप है, यहाँ प्राचीन मन्दिरों के भग्नावशेष तथा दो जलधाराएँ हैं, जिन्हें रामधारा और सीताधारा पुकारा जाता है, अल्मोड़े के पास काषाय पर्वत (कलमटिया) पर रामक्षेत्र है। वहाँ एक रामशिला भी है, जहाँ भगवान राम ने देव, ऋषि, सनकादि, पितरों और मानवों का तर्पण किया था। इसका वर्णन भी मानसखण्ड के 52वें अध्याय में है। श्रीराम यमराज के साथ इस स्थान पर वैकुण्ठ जाने से पूर्व पधारे थे। इसी प्रकार 63वें अध्याय के अनुसार कुम्भकर्ण का सिर कुमाऊँ में जिस स्थान पर गिरा था, उसे ही कालान्तर में घटोत्कच ने भीम को दान में दिया था। आगे 95 वाँ अध्याय रामेश्वर माहात्म्य को समर्पित है, रामेश्वर सरयू नदी के तट पर पिथौरागढ़ जनपद में है, यहाँ राम पादुकाएँ भी हैं, अल्मोड़ा के पश्चिमी भूभाग में रामगंगा नदी के तट पर रामपादुका भी एक धार्मिक स्थल है। यहाँ भी श्रीराम की पादुकाएँ चट्टान में उकेरी गयी हैं। इसी प्रकार केदारखण्ड में सीता-लक्ष्मण सहित प्रभु राम का देवप्रयाग में तपस्या करने का वर्णन दिया गया है। दशानन-वध की ब्राह्मण-हत्या पाप के निवारणार्थ श्रीराम देवप्रयाग में रुके थे, यह वर्णन 150वें, 158वें व 162वें अध्यायों में गुंफित है, श्रीराम ने गढ़वाल में कमलेश्वर महादेव की नित्य एक सहस्र कमलों से पूजा की थी। (अध्याय 188) गढ़वाल क्षेत्र में रामतीर्थ, सीताकुण्ड, रामकुण्ड, हनुमत्कुण्ड और रामेश्वर शिव-तीर्थ भी है। इतना ही नहीं, रामकथा से सम्बन्धित ऋषि वशिष्ठ, अत्रि, नारद, विश्वामित्र, गौतम आदि ऋषियों के

एक-एक आश्रम इस हिमालयी क्षेत्र में विद्यमान थे। ये सारे सूत्र उत्तराखण्ड के लोक मानस में श्रीराम की व्यापकता को ही सिद्ध करते हैं।

''राम अनन्त अनन्त गुन, अमित कथा विस्तार,
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्ह के विमल बिचार।।''

उत्तराखण्ड तीर्थ-प्रदेश है, जहाँ हर जाति-धर्म विचार के लोग आते रहते हैं। यहाँ आदिवासी आभिजात्य सभी वर्ग के लोग निवास करते हैं। ग्रामीणांचल में जनजातियों का बाहुल्य है, तथापि राम अथवा रामकथा सर्वव्याप्त, सर्वमान्य, सर्व-सुखदायी है।

कथा रामचन्द्र की : दृष्टि आदिवासियों की

डॉ. जयप्रकाश मिश्र

'रामायण काव्य बीजं सनातनम्'। रामायण काव्य बीज का सनातन है, जिसमें 'राम नाम जनैः श्रुतः' नायक भी जन लोक श्रुति का ही मान्य है। इन सबका तात्पर्य रामकथा की व्याप्ति सम्पूर्ण भारतीय के साथ-साथ विश्व वाङ्मय में है। अब तो जैसे ही रामकथा की चर्चा होती है। भारतीय क्या विदेशी वाङ्मय के मनीषियों की देन स्वरूप राम का चरित्र-चित्रण और प्रभावी उसका लालित्यपूर्ण मनभावन दृश्य वीडियोग्राफी की तरह जनमानस पटल पर दर्शित होने लगता है। यही है रामकथा का विशेष विस्तार और उसकी परिव्याप्ति। इसका मूल कारण जीवन के तमाम पहलुओं में समायी हुई रामकथा है जो जीवन-सन्दर्भ के स्रोत के रूप में परिलक्षित होती है। जहाँ-जहाँ भारतीय मूल के लोग गये हैं; अपने साथ रामकथा भी लेते गये हैं। जिनसे प्रभावित तत् स्थान के लोगों को भावनाओं के अन्तः में स्थान पाते-पाते समा गये तो जो कथा का मर्म रहा वह तोड़-मरोड़ के बावजूद जिन्दगी से जुटता स्पष्ट होने लगा, इसी सम्पृक्तता में रामकथा और उसके विभिन्न सन्दर्भ प्रभावी रूप से प्रकट हुए। यह रही दृष्टि जिससे उसे नापा, तौला, आँका तथा प्रयोग में लाया प्रयुक्त होने लगा है।

जनमानस जहाँ से कथा, मार्मिक कथा के सन्दर्भ ढूँढ़ने लगता है, वहीं समूची रामकथा उनके दिल-दिमाग में अपनी ऊँचाई, लम्बाई, चौड़ाई नापने लगती है। यह तो पल-प्रतिपल के जीवन-सन्दर्भों में भाव-विह्वल हो झूम-झूम आनन्द लेते हुए भाव में विभोर हो उठता है। ठीक यही स्थिति यहाँ के आरण्यक-आदिवासियों की है। ये समीपस्थ संस्कृति के मेलजोल से रामकथा के अन्यान्य हृदयग्राही सन्दर्भ इनके जीवन-सन्दर्भों में स्थान पाने लगे तथा उनका उत्तरोत्तर वर्णन उनके साहित्य में जुटता गया। उनकी रामकथा कहीं कुछ ही पंक्तियों की हो, परन्तु जीवन सन्दर्भों में जुटते-जुटते उसने विशाल मार्मिक उपजीव्य रूप धारण कर लिया है और आदिवासियों की दृष्टि सहचरी की भाँति निरखती रही है साथ ही समाद्रित भी हुई है। एक ललक रामकथा की फलवती होने लगी है जिससे इनके जीवन को गतिमयता सहज रूप में मिलती गयी है।

सोनभद्र के आरण्यक क्षेत्र में रामकथा के सन्दर्भ उनके अपने रंग-ढँग के हैं। जैसा इनका अरण्य में जीवन-क्रम जन्म से उत्तरोत्तर प्रवहमान है, उसी क्रम में रामकथा के गीत राम गीतावली के रूप ले लिये हैं। इनके साहित्य में वह भावना उभर कर व्यक्त हुई है। यह उनकी अपनी सहज सम्पृक्तता की ललक है, दृष्टि है।

आदिवासियों के प्रत्येक गाँव में गौंहा मुखिया के रूप में होता है। सामन्ती व्यवस्था के तहत सामन्त विशेष के सहारे पर अचल विशेष की व्यवस्था होती है। उसी के अनुसार उसके सुख-दुःख, भाव-अभाव को आदिवासी मानस भी महसूस करता है। रामकथा का सन्दर्भ वर्णित है। राजा दशरथ

के एक सौ साठ रानियाँ होते हुए भी बालक का जन्म नहीं हुआ। उन्होंने देवताओं की मनौती की जिसके परिणाम स्वरूप चार पुत्र जन्म लिए–

''लागल दिला नहिं छूटे रे सजनी
केकरे एक सै साठ रनियाँ एको बलक नहिं केकरे
राजा दशरथ सिंह के एक सौ साठ रनिया रे
देवता मनवे राजा दशरथ सिंह रे
लड़िका जनमले कुलि चारि रे। लागल......''

राम का जन्म राजमहल के अन्दर हुआ; परन्तु सीता का जन्म सबके समक्ष हुआ। सभी देवगण जन्मोत्सव देखने आते हैं। वे देवगण भूख–प्यास से व्याकुल हैं। खाद्य–सामग्री के अभाव में वन में कन्दा खोदकर उससे अपनी भूख मिटाते हैं तथा जल के अभाव में सोननद के दह के जल से अपनी प्यास बुझाते हैं, गीत की पंक्तियाँ–

''केकर जनम भयल ओलिया-कोलिया
केकर जनम माफ सहरे
राम जनम भयल ओलिया रे महलिया
सीता जनम माफ सहरे
सगरो देवता मिलि आवे देखे
सबरे मरे भूख पिआसे
कंदा कोड़िया केड़ि कइले अहारे
तुम्बा लवकी लेके पनिया के जाले गो साजन
कबहू न पानी घाटे
जाइ देखे सोनघाटे
पानी दह रहे लहराये''

राम का अवतार–जन्म किस समय हुआ। श्रीराम का जन्म दिन के मध्य नौमी तिथि को हुआ। राजा दशरथ सिंह की बेटी सोने का घड़ा लेकर स्नान के लिए जाने लगी तो उसको जाने से मना किया गया और बताया गया कि वहाँ पागल हाथी है। स्नान हेतु जाना अच्छा नहीं होगा।

''कवने दिना कवने जूनिया राम लिहे अवतरिया।
सुरूज कपारे नौमी बहते बयारे राम लिये अवतरिया
राजा दशरथ सिंह कऽ बिटिया
होई राम राजा दशरथ बलक
ले लेहु ए बेटी सोने कऽ घरिलवा
हाइराम चली सगरो नहान
जिनिजाउ बेटी बाबा के सगरवा
मातल हथिया जे बाइ।''

श्रीराम–भाइयों सहित बड़े होने लगते हैं, वन में आवास बना हुआ है। जंगली हिंसक खतरनाक जानवर नुकसान पहुँचाते हैं। इसके लिए राम भाइयों के साथ वन में 'धव' आदि की डालियाँ काट कर लाते हैं, उसी से घर के चारों तरफ घेरा बनाते हैं। घेरा बनाते समय दक्षिण

और प्रवेश-द्वार की व्यवस्था करते हैं। श्रीराम की बहन एवं सीताजी उस घेरे में फुलवारी लगाती हैं तथा फूलों के पौधों का अभिसिंचन करती हैं। फूल का पौधा बड़ा हो फूलने लगता है। बसन्त ऋतु का आगमन हो गया, भ्रमर उसपर गुंजार कर फूल का रस लेते हैं। वे राम के साथ आकाश की ओर उड़ जाते हैं। राम मत्त हो इन्द्रलोक में बैठते हैं। आदिवासी अपने घर उसके घेरा बीच फुलवारी आदि का परिदृश्य रामकथा के मुख्य पात्रों के द्वारा सम्पादित कराते हैं। गीत अपने कलेवर के साथ इस प्रकार सँजोया गया है-

''राम तऽ काटे धवइ कऽ झिंगटा
मन लागे हो देवरा घोरन घोराने
दखिन में रखले दुआरे लगाये फुलवारे
ननदी भउजिया धमकि बइठे फुलवारे
पेड़वा सींचि लगावे, पेड़वा उठल लहराये
एक फूल फूलल अगासे
सरसे भँवर रितु आये सतसे भंवर मड़राये
चुहुकि-चुहुकि रस लेवे रस लेले लंका उड़ि जाले
जाइके बइठे इन्द्रलोके।''

राम-कथा का अग्रिम सन्दर्भ है-राम-सीता जी का स्वयंवर, जब कोई धनुष नहीं उठा पाया तो राम ने धनुष को उठाया, चढ़ाया, खण्ड-खण्ड कर दिया। यह इतनी शीघ्रता से हुआ कि किसी ने देखा तक नहीं-

''केहु धनुही न उठाइ पारे
राम लखन जग्गे दरबारे
राम धनुष चढ़ाये
केहू नाहीं लखिपाये
दस बीस खण्डों कई डारे
राम धनुष चढ़ाये''

राम-लक्ष्मण शिकार के लिए वन में जाते हैं, पहले वन में राम, कदली-वन में लक्ष्मण शिकार खेलते हैं। हिरन का शिकार होता है, दोनों भाई उस हिरन को ले आकर आँगन में रखते हैं। मृग के दाँत एवं चमड़े आदि की बिक्री की जाती है। दाँत दस मोहर तथा चमड़ा सोलह मोहर में विक्रय होता है।

''राम वने राम केदुली बने लछिमन
राम वने खेलते अहेर हो रावन।
मारि दिहल हरिना विडहरे
लाइपटके माँग अगने
दस मोहर ओकर दंतिये हो दंतिये
सोरह मोहर ओकर चामे''

श्रीराम लक्ष्मण वन में आखेट के लिए जाते हैं। वन में कुछ दूर जाने के बाद ये दोनों लोग अलग हो जाते हैं। संयोग से हर्रा-बहेरों के वृक्ष की छाँव में राम बैठे हुए हैं। रोझ (नीलगाय) अपने कानों को हिला रहा था। लक्ष्मण ने तीर चलाया। तीर राम को लग गया, राम बेहोश हो गये, उनके मूर्च्छित शरीर को नये पत्तों पर लिटाकर नये पत्तों से ढँककर सूर्य, वनगीधिन, चिउटी आदि से प्रार्थना

करते हैं। राम का शरीर सूर्यताप से कुम्हलाने न पावे, वनगिद्ध इसको क्षत-विक्षत न करने पावें, तथा चींटियाँ राम के शरीर में न लगने पावें। जब तक लक्ष्मण घर में लौट नहीं आते। लक्ष्मण घर गये। घर में ओसरी के नीचे टूटी झिलगी चारपाई पर मुख मलीन कर बैठ जाते हैं। सीता उनसे पूछती हैं—आज देवर ऐसा क्यों कर रहे हैं। लक्ष्मण ने वन-गाथा बयान किये। सीता उसी क्षण वन जाती हैं। वह राम के पास पहुँच अपने सतीत्व का दावा करती हैं। श्रीराम मूर्च्छा-विगत हो उठ खड़े हो जाते हैं। सती की कई गाथायें, मन्दिर वहाँ पाये जाते हैं। रामकथा इस सन्दर्भ को यानी, सीता-सती-सन्दर्भ का कितने ही मार्मिक संवेदनशील ढंग से वर्णन हुआ है, यही इसकी अपनी दृष्टि है, गीत की पंक्तियाँ—

''हररा के अनते बहेरा के दुहें
रोझ कान डोलावे
रोझनी के उठते तीरा छटकावे
मरही के मरली राम के दोहइया हे राम
मारल हो सहोदर जेठ भइया हे राम
राम हे रमइया कहि गिरे हे राम
कुराकुठा दिहले ओढाय
तोर तऽ पइया लागऊँ सूरूज देवता हे राम
चामे जनि कुम्हिलाये हे राम
तोर तऽ पइया लागू मइ धरतिया
चिउटी जनि बगिराये हे राम
तोर तऽ पइया लागू राम गिधिनियाँ
नेगड़ा जनि वगिराये हे राम
अनु दिन देवर मोर ओरी ओकारी
आज कऽसन झखिनीतर ठाढ़
अनदिन देवर मोर सोने लोटा पानी पीये
आजु कइसन वोखी तूतुइया
अतना त बोलिया सुनल नहिं पावे हे राम
खाटि छाड़ि भूइयाँ बघकाले हे राम
जाइ अपने पिह्वा जगावे हे राम
जउ मइ पतिवरता हे राम
एक बोल कढ़ली दूसर बोल कढ़ली
तीसरे उठि राम जागे हे राम।''

वनगमन में राम-लक्ष्मण-सीता तीनों वन को चले, अयोध्या सूनी हो गयी। माँ ने देखा—आगे राम, पीछे लक्ष्मण, बीच में सीताजी, तीनों राजभवन से वन जोगी की तरह गये। पता नहीं लग रहा है, राजमहल में क्या कुछ हो गया, कैसी हलचल है। राम का राज सीता का महलवास छूट गया, ऐसा करने वाली कैकेयी अयोध्या में न रहे।

''राम हो लछिमन सिया वन हो
आगे राम पाछे-पाछे लछिमन

माझे चले सीता सुन्दरी उदयमान
राम लखन सिया वन के गवन किया
राजा घर कइसन हड़होर हो
राजापुर कलपे दिनि रात हो
केकई अयोध्या में न रहे
सीता छूटे सेज सुपेती
राम के छूटे राज रे''

अयोध्या में ऐसी कौन सी घटना घटित हो गयी, चारों तरफ शोर मचा हुआ है, राम-लक्ष्मण-सीता वन को चले गये। राजा दशरथ को सायं जर-जूड़ी आयी, कैकेयी-भवन में भोर होते राजा का प्राण छूट गया। उनकी चिता जलाई गयी, चिता की धूम ने आकाश को आच्छादित कर दिया। शवदाह के बाद राख हड्डी-चूर वाराणसी गंगा में प्रवाहित किया गया।

''राजाघर कइसन हड़होर हो
सही मांझे रजवा के भइले जर-जूड़ी हो
भिनुसहर छूटले परान हो
जरे लागल कठिया धधके लागल आग हो
धूइयाँ सरग मेड़राय हो
कोहला बटोर घट आने हो
हड़वा बनारस जाये हो।''

वन में सीता का हरण हो गया। राम व्याकुल होकर वन-वन सीता को ढूँढ़ते हुए लता-पत्तों, वृक्षों से सीता का पता पूछते हैं। गीत में रावण को चोर कहा गया–

''व्याकुल कुँजल वन ढूँढ़इ हे रामा
कहूँ देखा चकहा सिया हरिजाता
लता पतई पूछे सिया हरिजाता
रावन चोर सखी कुजा वने''

भरत ने राम का समाचार पूछा, राम-लक्ष्मण-सीता कहाँ हैं, कैसे हैं, किस वन में, किस दिशा में हैं। राम वन में लक्ष्मण कदली-वन, श्री सीताजी निर्जन वन में हैं, रामजी कंदा, लक्ष्मण मूली खाते हैं तथा श्री सीताजी दूध का आहार करती हैं, यह कैसी विषम परिस्थिति है।

''भरत पूछे राम की खबरि हो,
कवने वने राम कवने वने लछिमन कवने वने जनक दुलारी
रामे वने राम के दुलीवने लछिमन विरधा वने जनक दुलारी
का खाले राम का खाले लछिमन का खाली जनक दुलारी
कंदा खाले राम मुराई खाले लछिमन दूध पीअल जनक दुलारी''

सीताजी की खोज में हनुमन्तलाल का समुद्रोलंघन, मेघनाद के ब्रह्मफांस से बद्ध होना, रावण की सभा, दूत को दण्ड दिये जाने का विचार-विमर्श, पूँछ में वरभ लपेट कर तेल छिड़क आग लगाया जाना, पूँछ के बदले लंका दहन, लंका नगरी के दहन दिन आदि अनेक सन्दर्भ एक ही गीत में स्थान पाये हुए हैं। ये सन्दर्भ मार्मिक होते हुए रामकथा का एक विस्तृत आयाम प्रदान करते हुए जनलोक-हृदयग्राही बने हुए हैं, मार्मिक सन्दर्भों के समस्त गुण संवलित हैं।

श्री रामचरितमानस की कई पंक्तियाँ एक साथ स्मरण हो आती हैं–

''चला इन्द्रजित अतुलित जोधा, नाग फाँस बाधेसि लैगयउ
तेलवोरि पटवाधि पुनि पावक देहु लगाई
उलटि पुलटि कपि लंका जारी''

आदिवासियों का यह गीत ज्यों–का–त्यों इस प्रकार है–

''मेघनाथ चले बलवंता बाधि लागे वीर हनुमंता
कहते राजा रावन सुनते बेटा मेघनाथ झनमारे दूता बाँधे
हनुमान ब्रह्मफाँस बाँधे हनुमन्ता मेघनाथ
ले आने कचहरी काहू पूछी हो वार्ता बाड़ा होके जाई
हनुमन्ता लेलेन नाम सिरी भगवंता
तेलन वोर चिन्हु बधाई दहिनजरत आगी कुदिन
हनुमन्ता उलटि-पुलटि लेसेनि लंका मेघनाथ''

श्रीराम लंका पर चढ़ाई करने के लिए आ गये हैं, लंकावासी आपस में वार्ता कर रहे हैं–चलो भाई लंका से भाग चला जावे। अब तो श्रीराम यहाँ आ रहे हैं, सबकी दुर्दशा निश्चित है। अंगद, सुग्रीव, जामवन्त क्या करेंगे? उत्तर मिलता है, अंगल बल देंगे, सुग्रीव बुद्धि देंगे तथा जामवन्त मंत्री हर परिस्थिति की काट–समाधान बतलायेंगे, बड़ा ही घमासान युद्ध छिड़ेगा, नगाड़े बजेंगे, धनुष की टंकार गूँजेगी, अग्नि आदि वाण छूटेंगे, लक्ष्मण के बाण तो बिजली की गति से चलते हैं। आओ भाई हम सब लंका छोड़कर अन्यत्र भाग चलें जहाँ हम सबके जान–माल की सुरक्षा हो सके।

''चल रावण लंका हो पराई आवथयें राम रघुवीर
का करिहें बालिबेटा का करिहे सुग्रीव
का करिहें जामवन्त मंत्री हो
बल देइही बालिबेटा बुधि देइही सुग्रीव
काट करिहीं जामवन्त मंत्री हो आवथहे राम रघुवीर
कहँवा अगिनिवान कहँवा धनुषवान कहंवो निरूआ नगारे
आगे काऽ वान दुन-दुन पाछे कऽ वान घिट-घिट
लछिमन कऽ वान छूटे बिजुली समान चल लंका हे पाई''

राम के इतने अधिक मार्मिक सन्दर्भ अरण्य आदिवासियों के साहित्य में अपना स्थान बना लिये हैं, जिसे जन्म से पूर्व देव–मनावन–पूजन, जन्म की, जन्मोत्सव, घर की सुरक्षा, आखेट, सीय–पतिव्रत, सीता–स्वयंवर में धनुर्भंग, वनगमन अयोध्या की स्थिति, वनवास अवधि का जीवन, सीयहरण, हनुमान का सीय खोज में समुद्रोलंघन, राम–रावण युद्ध, लंकावासियों का चिन्तन आदि इन सन्दर्भों को आदिवासी उस बोलचाल की वैखरी वाणी के माध्यम से प्रकट किये हैं। इन सन्दर्भों को अपने जीवन की गति, स्थिति के अनुसार स्थान दिया है। यही रामकथा सन्दर्भों को प्रकट करने वाली उनकी अपनी दृष्टि है। इस सत्य को डंके की चोट पर स्वीकारना पड़ेगा। कथा श्रीराम जी की दृष्टि आरण्यक आदिवासियों की जिसे अपने जीवन सन्दर्भों के माध्यम से मुखरता देते गये हैं।

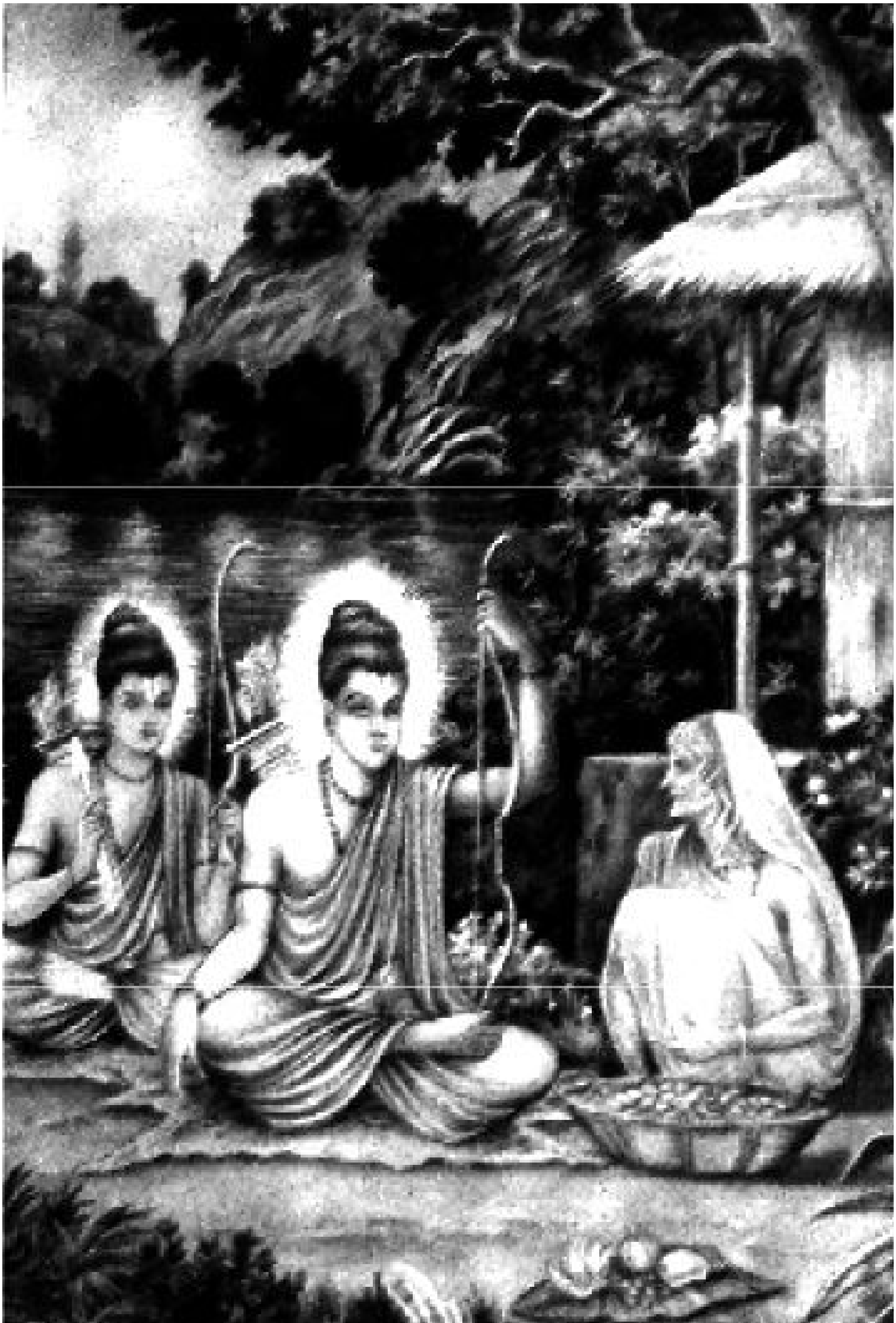

आदिवासी जीवन में रामकथा के प्रसंग

दीपक कुमार केसरवानी

प्राकृतिक, स्वच्छन्द जीवन जीने वाली आदिवासी जातियाँ आदिकाल से वनोपजीवी रही हैं। प्राकृतिक शक्तियों में अगाध श्रद्धा, विश्वास, भक्तिभाव रखने वाले ये प्रकृतिपुत्र देवी-देवता, वृक्षों, नदियों, पहाड़ों, घाटियों, जंगलों, गुफाओं, कन्दराओं, जरहथानों में निवास करते और सुरा, बलि स्वीकार करते हैं।

सामूहिक जीवन जीने वाली अनेक आदिवासी जातियाँ विश्व के प्रत्येक भाग में निवास कर भौगोलिक, पर्यावरणीय जटिलताओं, विभिन्नताओं के बावजूद अपनी आदिम जीवन-शैली, प्रथाओं, परम्पराओं, आस्था, विश्वास, कला, वाचिक साहित्य को कायम रखे हुए हैं।

भारत में निवास करने वाली आदिवासी जातियों के पूर्वज नेग्रिटो, आस्ट्रिक, किरात, द्रविण थे जो विश्व के अन्य भूभागों से आकर भारत के अन्य भूभागों में बस गये।

आर्यों के आगमन के पूर्व भारतीय समाज, जातिविहीन वर्णविहीन था या द्रविणों की विकसित सभ्यता व संस्कृति थी हड़प्पा, मोहनजोदड़ो की नगरीय सभ्यता द्रविणों की देन है। आर्यों के आक्रमण ने द्रविणों की सत्ता को छिन्न-भिन्न कर दिया। बावजूद इसके द्रविणों की सत्ता भारत के एक बड़े भूभाग पर कायम रही।

आर्य सभ्यता में वर्ण-व्यवस्था, जाति व्यवस्था का अस्तित्व कायम था। राम की लोकप्रियता तत्कालीन समाज में कायम थी। वैदिक साहित्य में 'राम' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ है, वेद और पुराणों में रामकथा का वर्णन है।

रामकथा में वर्णित राज्यों में अयोध्या, जनकपुर व राजा दशरथ, राजा जनक के राजपरिवार से जुड़े अन्य राज्यों पर आर्य राजाओं का अधिकार था। शेष आर्यावर्त लंकापति रावण के अधीन था। रावण के नाना सुमाली के नाम पर सोमालिया, रावण के ससुर मय के नाम पर मैक्सिको, बाली के मामा बालीजावा के नाम पर सुमात्रा द्वीप, रावण के भाई मारीच के नाम मॉरीशस आदि देश रावण के राज्य-विस्तार के द्योतक हैं।

रामकथा पर आधारित रामायण के रचनाकार महर्षि वाल्मीकि निम्न जाति के थे। 'स्कन्दपुराण' के वैशाख माहात्म्य में इन्हें जन्मान्तर का व्याध (बहेलिया आदिवासी) बतलाया है। इससे सिद्ध है कि जन्मान्तरण में ये व्याध जन्म में श्रृंगी ऋषि के सत्संग से रामनाम के जप से दूसरे जन्म में 'अग्निशर्मा' (मतान्तर से रत्नाकर) हुए। वहाँ भी व्याधों के संग के कुछ दिन प्राक्तन संस्कारवश व्याध कर्म में लगे। फिर सप्तऋषियों के सत्संग से मरा-मरा जपकर बांबी पड़ने से वाल्मीकि नाम से ख्यात हुए और वाल्मीकि रामायण की रचना की। (कल्याण सं. स्कन्दपुराण, पृ. 381; 709; 1024)

रामायण-रचना का कारण निषाद (आदिवासी) बना। तमसा नदी के तट पर विचरण कर रहे

महर्षि वाल्मीकि कामक्रीड़ारत क्रौंच जोड़े में से निषाद द्वारा नर-क्रौंच की हत्या कर क्रौंची के करुणाबद्ध चित्कार से द्रवित हो उठे और रोती हुई क्रौंची की ओर देखते हुए निषाद से इस प्रकार कहा-

''मा निषाद् प्रष्ठितां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।''

अर्थात् निषाद! तुझे नित्य निरन्तर कभी भी शान्ति न मिले; क्योंकि तूने इस क्रौंच के जोड़े में से एक की, जो काम से मोहित हो रहा था, बिना किसी अपराध के ही हत्या कर डाली।।15।।

महर्षि वाल्मीकि के मुख से निकली अकस्मात् यह उक्ति प्रथम काव्य बनी और कालान्तर में इसी आधार पर महर्षि ने लोक रामकथा को रामायण के रूप में संकलित किया।

निषाद (आदिवासी) कुल में जन्मे श्रृंग्वेरपुर के राजा गुहनाम की सहायता, कोलिन शबरी का ज्ञान, कपिराज सुग्रीव की सेना के योद्धा-नील, हनुमान, जाम्बवान, सुहोत्र, शरीर शरगुल्म, गज गवाक्ष गवय, सुषेण, वृषभ, मैन्द, द्विविद, गन्धमादन, उल्कामुख, असंग, अंगद, शतबील, मयंक, नल, गद, विकटास्य, दधिमुख, केसरी, निषठ, रठ, जटायु, सम्पाति आदि आदिवासी वीरों की शक्ति, कुशल रणनीति के कारण राम की वनयात्रा जययात्रा बनी।

दशरथपुत्र राम की वन्ययात्रा से विजययात्रा में आदिवासी जातियों का योगदान रहा और लंकापति रावण का वध, लंका पर विजय द्रविण जाति के राजा रावण के राजद्रोही विभीषण के कारण मिली।

रामकथा पर आधारित वाल्मीकि रामायण पर आधारित संस्कृत टीकाएँ, कतक टीका, तिलक या रामाभिरामी टीका, भूषण टीका, रामायण शिरोमणि व्याख्या, तीर्थव्याख्या, या तीर्थदीप, रामानुजयी व्याख्या, विवेकतिलक, धर्मकृत व्याख्या, रामायणकूट व्याख्या, चतुरर्थदीपिका, रामायण विरोध, विरोध परिहार, रामायणसेतु, तात्पर्यतरणि, श्रृंगारसुधाकर, रामायणसप्ताबिम्ब मनोरमा, वाल्मीकि हृदय, विरोधभंजिनी, रामायणतात्पर्यनिर्णय-व्याख्या, रामायण भूषण व्याख्या, अमृतकतक, रामायणसारदीपिका, गुरुबाला, चित्तरंजिनी, विद्वन्मनोरंजिनी, रामायणसार संग्रह, विषयपदार्थ, व्याख्या, काल्पवल्लिका, रामायणार्थप्रकाशिका, रामायण कथा विमर्श, लोमसरामायण, संब्रत रामायण, अध्यात्म रामायण, मंजुल रामायण, गौडीह रामायण, राम-रहस्य, अगस्त्य रामायण, सुब्रह्म रामायण, शौर्य रामायण, चंद रामायण, रामायण चंपू, रघुवंशम्, भीट्टकाव्य, महावीर चरित्रम्, उत्तर रामचरितम्, प्रतिमानाटकम्, जानकीहरण, कुंदमाला, बाल रामायण, हनुमन्नाटकम्, अद्भुत रामायण, आनन्द रामायण, 10वीं शताब्दी में कंबनकृत तमिल रामायण, 12वीं सदी में तेलगू त्रिपाद रामायण, 14वीं शताब्दी में मलयालम् में रामचरितम्, कन्नड़ी तोरावे रामायण, उड़िया में बलरामदास रामायण, मराठी में भावार्थ रामायण, 16वीं शताब्दी में अवधी में गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरितमानस ने रामकथा का प्रचार-प्रसार किया।

'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता' के तर्ज पर विश्व की अनेक भाषाओं में रामकथा का अनुवाद हुआ है। तिब्बत, श्रीलंका, मध्य एशिया, हिन्दू, चीन, श्याम, ब्रह्मदेश, बाली, यवद्वीप सहित वृहत्तर भारत के अन्य देशों में रामकथा का प्रचलन है।

भारत में रामायण के नायक रामनाम के कुल 71 शहर हैं जिनमें रामनगर-8, रामपुर-20 अन्य शहर हैं, कश्मीर में रामवन रामनगर अवस्थित है।

इसके अतिरिक्त ईरान में रामिया, रामरोप, रामिस्क, रामसार, रामहमोज, ईरान में रामाद्रि-बरेज, रामादि-तलूब, रामाजान, इजरायल में-हररामोन, मिजाप-रामो न रामा, जाईन में-राम, रामा, रामाल्लाह, रामलाह, रामथा, केनिया में-रामलहल, कबीरा-रामलटल, विध में-रामसे, मेडागास्कर में अंजोमा, रामरीटिना, मैक्सिको में-रामरेज, रामोनल, रामोंस, न्यूयार्क में-रामापो, रामापोखिर, अफगानिस्तान

में–रामगुलनाम, अलास्का में रामार्ट, अर्जेन्टाइना में–रामल्लो, रामव्योनस, रामोन, रामाज आस्ट्रिया में–रामग्टीन, रीमाकाम्ट, बांग्लादेश में–रामगढ़, रामपुर, बौलिया राम, बेल्जियम में–रामसड़ोक, रामसेल, रामस्केपल, इसी नाम से मिलते–जुलते आठ अन्य शहर हैं। बोलीक्या में–सैनरामान (तीव्र शहर), वोत्सवाना में–रामोत्सवा, रामरूडेन, ब्राजील में–रामल्हो, रामोज, कनाडा में–राम, रामा, रामपार्ट, डेनमार्क में–रामे रामसिंह, रामटेन, इंग्लैण्ड में–राम्पसाइड, रामसबाटम, रामसे, राम्सगेट, रामसीगल, फ्रांस में–रामटुएल, रामबरविमसर्ल, रामबट, जर्मनी में–रामबिन, रामबो, रामास्टे, रामसडार्फ, फिलीपिन्स में–रामोज, रावांडा में–रामबूरा, दक्षिणी अफ्रिका में–रामलबामा, रामे, रामगेट, सउदी अरब में–रामालाब्धाम, रामलटलधका, स्पेन में–रामेका, रामित, रामोन, रामश्की, रामेश्कोप, यूनाईटेड अरब अमीरात में रामस नामक शहर स्थित है।

लाओस (लव का देश) कम्बोडिया (कंबुज या अगस्त्य का देश), वियतनाम (शिवग्राम, सेगाँव), सिंहपुर (सिंगापुर, क्वालालंपुर), सिओल (शिवालय), भवद्वीप या जावा, सुर्णद्वीप, जापान, कोरिया, मिस्त्र, पेरु, अमेरिका, अर्जेन्टीना आदि देशों में लोकनायक राम से जुड़े स्थल विद्यमान हैं।

रामकथा की व्यापकता से देश–विदेश में निवास करने वाली आदिवासी जातियाँ अछूती नहीं रह पाईं। रामायण कालीन जातियाँ मुख्य रूप से कोल, किरात, भील, व्याधिक निषाद आदि जातियाँ भारत सहित अन्य देशों में निवास करती हैं। ये जातियाँ राम की विजययात्रा में सहयोगी रहीं। अपने पूर्वजों की यशकीर्ति को आदिवासी जातियाँ अपनी लोक–कथाओं, लोकगाथाओं, लोकगीतों, लोकचित्रों में संरक्षित कर आदिवासी संस्कृति की जड़ को मजबूत किये हुए हैं।

भारतवर्ष का उत्तरप्रदेश राज्य की अयोध्या नगरी जहाँ पर लोकनायक राम का जन्म हुआ और वनवास काल से सम्बन्धित स्थल श्रृंगीरामपुरम्, श्रृंगवेरपुर, चित्रकूट, पंचवटी, वाल्मीकि आश्रम सहित रामायण में वर्णित स्थल आज धार्मिक स्थल के रूप में विद्यमान हैं। विन्ध्य एवं कैमूर पर्वत श्रेणियों में अवस्थित मीरजापुर व सोनभद्र जनपद में रामायणकालीन अवशेष रामकथा की महिमा का बखान करते हैं।

लोककलाओं में रामकथा

विन्ध्य क्षेत्र की आदिवासी लोकमन की आत्मा 'राम' हैं। वनांचलों में तीर–धनुष के सहारे अपने अस्तित्व की तलाश में नाचते–गाते, झूमते–घूमते आदिवासी जातियों में प्रचलित रामकथा आदर्श सामाजिक, धार्मिक जीवन का आधार है।

रामकथा के अनेक स्मृतिचिह्न विन्ध्यक्षेत्र में अवस्थित हैं। यह क्षेत्र एक अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र है। विन्ध्य पर्वत श्रेणी की तराई में बसा विन्ध्यक्षेत्र भारतवर्ष के बीच में समुद्र तट के पतले प्रदेशों को छोड़कर बंगाल की खाड़ी से होकर अरब सागर तक विन्ध्य–पर्वत–श्रृंखलाएँ फैली हुई हैं।

विन्ध्यगिरि मध्य भारत के उत्तर से पश्चिम विस्तृत एक पर्वत–श्रेणी है जिसमें आर्यावर्त के दक्षिणात्य को प्रायः सम्पूर्ण रूप से विच्छिन्न किया है। यह पर्वत पश्चिम में गुजरात से आरम्भ होकर मालवा के दक्षिण किनारे पर्वत श्रेणियों में विभक्त होकर वाराणसी के निकट गंगाघाटी में जाकर समतल हो जाता है।

विन्ध्य क्षेत्र का लोक–संस्कार, लोकगीत, लोकपर्व बिना रामकथा प्रसंग के पूरा नहीं होता है। लोक के राम को आदर्श पुत्र, पति, भाई के रूप में स्वीकार किया गया है तो पतिव्रता सीता को कर्तव्यनिष्ठ बहू, अनुज लक्ष्मण को एक सत्यनिष्ठ सेवक के रूप में माना है।

विन्ध्य क्षेत्र में निवास करने वाले कोल, ओझा, बैगा, मझवार, खरवार, बियार, बिन्द, गोंड़, धरकार, चेरो, पनिका, बैसवार, भुईयाँ, भूर्तिया, कोरबा, पथरिया, घसिया, परहिया, केवट, माझी, निषाद आदि वनवासी जातियाँ अपने को पृथ्वी के प्रथम राजा निषादराज की वंशज मानती हैं, जिनकी सहायता से राम की वनयात्रा जययात्रा बनी और शबरी के कारण राम नारायण के अवतार की सार्थकता पा सके।

वाल्मीकिकृत रामायण में वर्णित है–'आरण्यैश्च महावृक्षैः पुन्यैः स्वादुफलैर्वृत्ताम्' अर्थात् सुस्वादु फलों से युक्त बड़े-बड़े वृक्षों वाला वन जिसमें रामचन्द्र ने अपना वनवास-काल बिताया था। यह स्मरणीय स्थल विन्ध्यक्षेत्र में अवस्थित था।

काशी से सोनभद्र जनपद के मुख्यालय राबर्ट्सगंज से होकर मारकुण्डी घाट दक्खिन में रतनपुर जगन्नाथपुरी रामेश्वर जाने का मार्ग गुजरता है। इसी भूखण्ड से होकर त्रेता के राम रामेश्वरम् गये थे। और कोल-भील, वनराज सुग्रीव, राजकुमार अंगद, नल-नील, हनुमान, ऋक्षराज जामवन्त आदि वनवासियों के सहयोग से लंका पर चढ़ाई के लिए समुद्र पर सेतु का निर्माण किया था जिसको देखकर श्रीरामजी हँसकर बोले–

''परम रम्य उत्तम यह धरनी। महिमा अमित जाइ नहिं बरनी।।
करिहउँ इहां संभु थापना। मोरे हृदयँ परम कलपना।।''

यह (यहाँ की) भूमि परम स्मरणीय और उत्तम है। इसकी असीम महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता है। मैं यहाँ शिवजी की स्थापना करूँगा। मेरे हृदय में यह महा संकल्प है।।2।।

''सुनि कपीस बहु दूत पठाए। मुनिवर सकल बोलि लै आए।
लिंग थापि विधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा।।''

श्रीराम के वचन सुनकर वानरराज सुग्रीव ने बहुत से दूत भेजे जो श्रेष्ठ मुनियों को बुलाकर ले आये। शिवलिंग की स्थापना करके विधिपूर्वक पूजन किया। (फिर भगवान् बोले) शिवजी के समान मुझको दूसरा कोई प्रिय नहीं है।।3।।

विन्ध्यक्षेत्र में अवस्थित विन्ध्याचल मण्डल के मुख्यालय मीरजापुर के पश्चिम में कर्णावती गंगा नदी के संगम-तट पर रामगया (विन्ध्याचल) पर भगवान् श्रीराम ने राजा दशरथ के पिण्डदान के पश्चात् रामकुण्ड का उत्खनन कर शिवपुर में विशाल शिवलिंग स्थापित किया था। अष्टभुजा मन्दिर के पश्चिमी भाग में सीताजी ने सीताकुण्ड का उत्खनन कर सीतेश्वर शिवलिंग एवं सीताकुण्ड के नैर्ऋत्यकोण पर महाबली हनुमान ने लहुलेश शिवलिंग स्थापित किया था। इसी मंडल के अन्तर्गत संत रविदास नगर में महर्षि वाल्मीकि का आश्रम, लवकुश जन्मस्थली एवं सीता-समाहित-स्थल सहित रामजन्म-भूमि-अयोध्या चित्रकूट, पंचवटी आरण्यक (जहाँ भगवान् राम ने सपत्नीक अनुज लक्ष्मण के साथ वनवास के दस वर्ष व्यतीत किये थे। रामकथा से सम्बन्धित अन्य स्थल विन्ध्यक्षेत्र में अवस्थित हैं, जिनके कारण रामनवमी, हनुमान जयन्ती, श्रीराम-विवाह पंचमी, जानकी नवमी, विजय एकादशी, विजय दशमी (दशहरा), दीपावली आदि लोकपर्व हर्षोल्लास के साथ मनाये जाते हैं; वहीं विन्ध्यक्षेत्र के अंचलों में रामलीला का मंचन लोक के मनोरंजनार्थ किया जाता है, ताकि लोक की भावी पीढ़ियाँ रामकथा के आदर्श पात्रों के पदचिह्नों पर चलकर आदर्श लोक स्थापित कर सकें। लोक को रामकथा प्रसंग ने इतना प्रभावित किया कि इस कथा के विभिन्न प्रसंगों के विन्ध्यक्षेत्र सहित देश के अन्य भागों में कठपुतली कलाकार लकड़ी, चमड़े से निर्मित रंग-बिरंगी राम, सीता, लक्ष्मण, रावण, मेघनाद, कुम्भकर्ण, हनुमान, सुग्रीव, अंगद, जामवन्त आदि बानरी-राक्षसी सेना में अँगुलियों के जादू से इन बेजान पुतलों में जान डाल देता है। ये कठपुतलियाँ कभी राम वनगमन, कभी राम-रावण-युद्ध आदि प्रसंगों को प्रस्तुत कर रामकथा-प्रेमियों में कठपुतली लोककला के प्रति आकर्षण

बनाये हुए हैं। विन्ध्यक्षेत्र में प्रचलित लोककलाओं में रामकथा के पात्रों का सांकेतिक अंकन गोदना के चित्रांकन में किया जाता है।

गोदना

गोदना मानव शरीर को स्थाई रूप से चित्रांकित करने का सशक्त, कष्टदायी, आकर्षक माध्यम है। विन्ध्यक्षेत्र के वनवासी, ग्रामीण इलाकों में वादी एवं नट जाति की स्त्रियाँ, स्त्रियों के अंगों पर सूई-काजल के माध्यम से सीता-रसोइया, सीता-राधनी, सीता-चौकी, रामझूला, रामनाम एवं पुरुष अपनी बाँह पर गदाधारी हनुमान, धनुषधारी राम-सहित अन्य चित्रों का चित्रांकन बहुलता से कराते हैं। इन चित्रों के आलेखन का उद्देश्य शरीर के अंग को अलंकृत करने के साथ-साथ लोकरुचि, लोक-देवता के प्रति श्रद्धा, पारिवारिक प्रेम, अज्ञात भय से मुक्ति लोकभाव का परिचायक है। लोक मान्यता है कि–'बाँधे मुट्ठी हाथ आया मानव मुट्ठी खोलकर सबकुछ पृथ्वी लोक छोड़कर परलोक सिधार जाता है। उसके साथ सिर्फ शरीर पर अलंकृत गोदना जाता है।' यह उक्ति लोकमन में इतनी गहराई तक जमी है कि हर स्त्री लोककला का अंकन कराकर अपना परलोक सुधारती है।

भित्ति चित्रकला

विन्ध्यक्षेत्र में वनांचलों, ग्रामीणांचलों में भित्तिचित्रण की परम्परा कायम है। स्त्री-पुरुष स्वयं विवाह, दीपावली के अवसर पर कच्चे मकानों व पक्के घरों की लिपाई-पुताई के बाद कच्चे घरों की भित्तियों (भीतरी भाग) पर गेरु, चूना, हल्दी, रामरज मिट्टी से चित्र-रचना करते हैं। घर के अन्दर की दीवारों पर सीताराम, राम-राम लिखते हैं। द्वार पर आकर्षक बेलबूटा बनाकर सीताराम का अंकन करते हैं। इतना ही नहीं, घर की बाहरी-भीतरी दीवारों पर राम-हनुमान आदि के चित्र का रेखांकन कराते हैं।

रक्षाबन्धन, भैयादूज के अवसर पर इन पर्वों से सम्बन्धित चित्रों के अंकन के बाद लोकचित्रकार सीताराम लिखना नहीं भूलते। लोक में राम को आदर्श वर एवं सीता को पतिव्रता बहू के रूप में स्वीकार किया गया है। विन्ध्यक्षेत्र में विवाह-संस्कार के अवसर पर वर-कन्या की बुआ-बहिन-भाभी के द्वारा विभिन्न प्रकार के आकर्षक कोहबर विभिन्न रंगों के माध्यम से बनाये जाते हैं। प्रतीकात्मक मंगलमय चित्रों के साथ-साथ रामसीता का चित्र अथवा नाम, शुभ-लाभ, स्वस्तिक, ओम् आदि चित्रांकन किया जाता है। विवाह-संस्कार का आरम्भ एवं समापन कोहबर से होता है। कोहबर का आलेखन उस कमरा में होता है जहाँ वर-वधू प्रथम रात्रि गुजारते हैं।

विवाह के अवसर पर कुम्हार द्वारा चटख रंगों से घड़े पर हनुमान के विभिन्न रूपों का चित्रांकन किया जाता है, इसके अलावा विवाह के मंडवार (मंडप) में भित्तियों एवं बाहरी दीवारों पर राम को सीता द्वारा वरमाला पहनाने का चित्र चित्रकार द्वारा चित्रित किया जाता है। कोहबर के चित्रांकन में स्त्रियाँ राम-सीता के विभिन्न प्रसंगों पर लोकगीत भी गाती हैं।

मूर्तिकला

विन्ध्यक्षेत्र के वनांचलों एवं ग्रामीणांचलों में दशहरा के अवसर पर व्यवसायिक कलाकारों द्वारा कागज, कपड़े, बाँस की खपच्चियों से रावण, मेघनाद, कुम्भकर्ण के रूपों वाले विशाल पुतलों का निर्माण किया जाता और आसुरी शक्ति पर दैवी शक्ति के विजय के परिणाम स्वरूप रामलीला मैदान में भगवान्

राम, लंकापति रावण, मेघनाद, कुम्भकर्ण का अग्निबाण से वध (दहन) करते हैं। दशहरा के अवसर पर मेलों में राम, हनुमान, राक्षस मुखाकृति वाले मुखौटे, रामराज की आकर्षक रंगीन मिट्‌टी से बनी मूर्तियाँ बिकती हैं।

लोक में रामभक्त हनुमान को बल और शक्ति का देवता माना गया है, इसलिए हनुमान-पूजा का प्रचलन है, हनुमान जी की मूर्ति चाहे पत्थर की हो या मिट्‌टी की गढ़ी हो, वह मन्दिर में स्थापित हो या खुले आसमान के नीचे हो, लोक द्वारा पूजनीय है। रामराज्य (राम-सीता-लक्ष्मण-हनुमान भाइयों) की मूर्तियों को प्रस्तर पर उत्कीर्ण करने एवं गढ़ने की परम्परा है। विन्ध्यक्षेत्र के मीरजापुर जनपद के चुनार, अहरौरा आदि स्थलों पर रामकथा के पात्रों की मूर्तियाँ गढ़ने की परम्परा आज भी कायम है।

लोकगीतों में रामकथा

आदिवासी जातियों ने राम को एक लोकनायक के रूप में स्वीकार किया है। आर्य जातियों से सम्पर्क बढ़ने के कारण आदिवासी जातियों में रामकथा लोकप्रिय हुई, विन्ध्यक्षेत्र की आदिवासी जातियों में प्रचलित विवाह, जन्म-संस्कार के अवसर पर रामकथा से सम्बन्धित लोकगीत-गायन की परम्परा है।

राम के वनगमन के समय आदिवासी जातियों ने राम का सहयोग कर राम के पक्ष से युद्ध किया था और राम-सेना को विजयी बनाया था। वाल्मीकिकृत रामायण, गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरितमानस में कोल, किरात, भिल्ल, निषाद, व्याध आदि आदिवासी जातियों का उल्लेख है। आदिवासी लोकगीतकार रामकथा को अपनी संस्कृति के आधार पर ढाल कर गाते हैं। रामजन्म 'अर्जुनदास केसरी' कृत प्रमुख लोकगाथा 'लोरिकायन' में वर्णित लोरिक-निलमल्ल-युद्ध, राम-रावण युद्ध जैसा है। निलमल्ल भी बार-बार मरता और रक्तबीज की तरह जीता है।

1. **कवने दिनेवा कवने जनिया राम लिहे अवतरियाऽ**
रसूरूज कपारे नौमी बहते बयारे राम लिहे अवतरियाऽ....

–रामजन्म

2. **राम त काटे धवइ कइ झिगंटा**
मन लागे हो देवरा घोरन घोरानेऽ...

–बाल्यावस्था

3. **राम लखन सिया वन के गवन किया,**
राम घर कइसन हड़होर हो।

–राज्याभिषेक

4. **सही सांझे रजवा के भइले जर जूड़ी हो,**
केकही भवन रजवा के भइले जर जूड़ी हो।
भिनुसहर छूटले परान हो,
जरे लागल कठिया धधके लागल आग हो।
धूइया सरग मेडराय हो,
कोइला बटोरि घर लाने हो।
हड़वा बनारस जाय हो,

–राजा दशरथ की मृत्यु, अन्तिम संस्कार

5. राजपुर कलपे दिन रात हो,
केवई अयोध्या में न रहै।
दुनउ भईया-सीता के छूटे सुपेती हो,
राजा के छूटे राजपुर हो।
उदित असमान केकई अयोध्या में न रहै।

–वनगमन

6. भरत पूछे राम सबीर हो,
सीता झंखल जो आनके तरेऽ।
कवने बने लक्ष्मण,
कवने बने जनक दुलारी हो।
रामे वने राम केदुली बने,
विरधा बने जनक दुलारी।
का खाले राम का खाले लक्ष्मण,
का खाले जनक दुलारी।
कन्दा खाले राम मुराई खाले लछिमन,
का खाली जनक दुलारी।

–वनगमन

7. कवने बने रामचन्द्र कवने बने लक्षमन हो,
रावन चोर सीख कुजा बनेऽ
केदुल बनेऽ राम बिजुल वनेऽ लछिमन
विरधा बने हो रावन चोर सखी।

–सीताहरण

8. मेघनाथ चले बलवन्ता,
बाँध लाने वीर हनुमन्ता।
कहत रावन राजा सुनते बेटा,
मेघनाथ झन माइये दुता बाँधा।
हनुमत ब्रह्म फांस बाँधे हनुमंता....
ले आने कचहरी काहू पूछी बाते बाड़ होके जाई।
हनुमंता लेलेन नाम सिरी भगवन्ता,
तेलनबोर चिहु बंधाई दिहिन जरत आगि कु दिन।
हनुमंता उलटि पलटि लेसेनि लंका मेघनाथ....

–लंकादहन

9. चल रावन लंका हो पराई अवध में राम रघुवीरइऽ,
का करिहे बलि बेटा का करिहे सुग्रीव।
का करिहे जामवंत मंत्री हो,
बल देहली बालि बेटा बुद्धि देहि सुग्रीव।

काट करिही जामवन्त मंत्री हो अवध में राम रघुवीरऽ,
कहवा अगिनवान कहंवा धनुषवाण कहंवा निरूआ नगारेऽ।
आगे कऽ बान द्न-द्न पाछे कऽ बान खिट-खिट,
लछिमन क बान छूटे विजली समान।
चल रावन लंका हे पराई

–राम-रावण युद्ध

आदिवासियों का लोकप्रिय नृत्य करमा है। करमा लोकगीतों में लोकगायक रामकथा का उल्लेख करते हैं। वनवास काल में शबरमंत्र की ज्ञाता तपसिनी शबरी ने चख-चख कर बेर खिलाया था, शबरी के इस प्रेम के वशीभूत होकर लोकनायक राम ने आदिवासी स्त्री को मोक्ष प्रदान किया था–

10. **सबरी जोहयम पथ मारे कब आही प्रभु मोरे,**
सुनहिन गइया के गोबर मंगा के।
अपन आंगन ला लिय डारे,
चिख-चिख बोइर बुदेला टोरे।
करूकस ला अपने खावे,
मठि-मठि ला चंगोरा चारे।

सोनभद्र जनपद में निवास करने वाली कोल जाति का कोलदहकी मुख्य नृत्य है और लोकदादर गीत इस नृत्य के साथ गाया जाता है। इस जाति के लोग अपने को कोलों की आदिमाता शबरी का वंशज मानते हैं और रामकथा में वर्णित शबरी की कथा को बड़े ही चाव से गाते हैं। स्त्रियाँ नृत्य भी करती हैं और पात्र राम-लक्ष्मण-सीता, शबरी का अभिनय करते हैं और वनवासी राम के लिए भोजन बनाने, खिलाने का नाट्य प्रदर्शन करते हैं–

11. **कउने बेलवा हो, कउने बेलवा,**
कउने बेलवा त लछिमन-राम मिलैया।
कउने बेलवा........

12. **पोखरी के भीतवा पर तीन पेड़ रूखवा हो,**
कटहर, निबुला, अनार हो।
वही तर बैइठलन तीन तपेसिया,
सीता अ लछिमन राम हो।

13. **सेवरि देखिलिन हो सगुनवा,**
घरवा राम अइहैं ना।
लामि-लामि केसिया से सबरी,
रहिया बहौरे रे।
वही रहिया अइहैं भगवान्,
पकली, पकली बइरिया विछि-विछि।
तोड़ली हो,
भोगवा लगावे भगवान सेबरी के घरवां।

14. प्रेम क भूखल हो भगवान सेबरी के घरे,
सगवा, बइरिया क भोजन बनावे।
जेवना जेवे भगवान सेबरी के घरे।''

–रामकथा बानागीत (लोकगाथा)

लोकगाथाएँ आदिवासी लोकजीवन की चलती-फिरती संस्कार-शालाएँ हैं। इन गीतों में पद्यात्मकता, गेयत्व, लालित्य, कथात्मकता, काव्य-सौष्ठव का पुट होता है।

आदिवासी जातियाँ पोथी-पांडित्य से आज भी दूर हैं। लेकिन वाचिक परम्पराओं के आधार पर रामकथा से सम्बन्धित लोकगीत लोककण्ठों में संगृहीत है। इन लोककथाओं में महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित 'रामायण' गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' कथाओं का वर्णन स्थानीय लोकगाथा, स्थानीय लोकनायक को जोड़कर लोकगायकों द्वारा किया जाता है।

गोडवानी लोकगाथा में 'लक्ष्मण सती' (लक्ष्मण जटी) की कथा आम जनमानस में प्रचलित कथा से अलग है। इस कथा के अन्तर्गत क्रमशः लक्ष्मन, इन्दरकामिनी, लक्ष्मन और तिरियाफूल, लक्ष्मन और मचलादाई, लक्ष्मन और रानी फुफैया, सीता वनवास आदि लोकगाथाओं के गाने का प्रचलन है।

रामकथा-गायन में पाण्डवानी कथा का मिश्रण दृष्टिगोचर होता है, लोकगायक कल्पना-लोक में विचरण करते हुए लोकगाथा का गायन करता है। प्रत्येक लोकगायक के गीतों में अन्तर भी मिलता है। रामायनी और इन्दरकामिनी की लोककथा निम्नांकित है–

लछिमन जी सतलोक के प्राणधारी थे। डुण्डा महल में निवास करते थे। परायी स्त्री से कभी मुँह नहीं बोलते थे। अन्ध कुओं में झाँकते नहीं थे। बाँझ-झाड़ की छाया में बैठते नहीं थे, तिल के खेत शौचक्रिया नहीं करते थे, लछमन जी छिवलहा बढ़ई से मनमोहन किंदरा बनवाकर बजाया करते थे, किन्दरा की आवाज सुनकर राजा इन्दर की कन्या इन्दरकामिनी मोहित हो जाती है और अन्तरा माछी बनकर डुन्डा महल में प्रवेश करती है, लछमन जी को जगाती है। लेकिन लछमन जी की नींद नहीं खुलती, इन्दरकामिनी जादू से लछमन को बोकरा बना देती है, बोकरा बनाकर अपने पास रखती है। तब महादेव कौरव, पाण्डव, हनुमान, नारद आदि एक साथ इकट्ठे होकर इन्दरकामिनी के पास से (बोकरा) लछमन को लेकर आते हैं। इन्दरकामिनी को अठारह खण्ड महल में बन्द कर देते हैं। इस लोकगाथा गीत (बानागीत) का अंश–

15. ''अजुध्या नगरी माँ रामा के बासा
झिंझरी महल में सीता माता
डुण्डामहल माँ लछमन सतेली की
कैसे वास कर रहे हैं भेया
होऽ ऽ जे खे सत के नैहा परवा ना रे
गली चलत तिन ना टोरे
पर तिरिया में मुख नहीं बोले
बाँझी रूख के छैयाँ नाहीं खड़े
अन्ध कुआँ झाँक के नाहिं देखे
हो झै बतावे मोर मालिक
हाय ऽऽ ऐसे है सतलोकी लछमन''

16. अठारा बाजन के तान मिलाके बजा रहे हैं मनमोहन किंदरा बाना गाय रहे हैं, मनमोहन किंदरा–

''राजा इन्दर की बेटी रे मैया
नाव रहे इन्दरकामिनी रे दाऊ
साठ जोड़ी जंग सहेली रे हीरा
महलो मा बासा करै भाई
शंकर झूला माँ झूले रे बाबू
बाजा के धुन पोंइचे हवे ऊहो
तलख बलख भवै हवै दादा
कैसे मनमोहन किंदरा के आवाज मोहिनी कर दैसे होऽऽ।''

(लक्ष्मन और तिरिया फूल)

17. ''तै सुनि के देवरा
इन्दर राजा के लड़की
दुर्बल कन्या बोली मा मैना
चाल मा कबुतरी
सोह की मोहनियाँ
चन्दा-सूरज उनहारी
ओला देख के रे देवरा
अपन सत माँ अटल रहते
तबै त सतधारी लेख तो तोला होऽऽ।
मै लान है भौजी, तै देखे ला कहथस
मै उईच लान के छोड़ हूँ
और हाथ न लगा हूँ कन्या ला।
मैं तोला बताइच दे हूँ,
अपन सत के परीक्षा ला।
कैसे तेख लम गैसे लछमन का।
कैसे सीताजी मन मा खुशी मै रहे होऽऽ।
चले जाम रहे है लक्ष्मन रे भाई
एक बन नाकिन चार बन नाकिन रे दादा
तीन बन नाकिन चार बन नाकिन रे भाई।
कुइली कछारा, धमकी ददरा, भूतहा कोनहा रे भाई।
करिया पहारा कांचे दह नारा नक गैन भैया।''

अर्थात् सीता जी एक बार मन में विचार करती हैं कि देवर लछमन सतधारी हैं। इन्हें शादी के लिए तैयार करना चाहिए। सीताजी इन्दरराजा की दुर्बल लछमन जी दुर्बल कन्या को लेने के लिए जाते हैं। बैरागी बाबा के बताये हुए मार्ग के अनुसार आशीर्वाद प्राप्त कर दुर्बल कन्या को पाने में सफल हो जाते हैं, लछमन जी दुर्बल कन्या को फूल बनने के लिए बाध्य करते हैं। दुर्बल कन्या के फूल बनते ही भौरामल जोधा फूल लेकर उड़ जाते हैं। इसके बाद रामचन्द्र जी सैनिकों द्वारा भौरामल जोधा के पास से दुर्बल कन्या को लाया जाता है। लछमन सत की परीक्षा में लछमन और मचलादई के बनागीत–

18. **''एक बखत लछमन अपने मन माँ सोचे है रे भैया**
बहुत दिन भै गैन भौजी खो नहि देखे आँव मै रे
आज मिल आती ते नगदै रहै भाई
या सोच के चले हव लछमन झिझरी महल खो होऽऽ।
होऽऽ लछमन झिंझरी महल माँ पहुच गैन्हो है।
अब सीता आपन सपना ला सुनाय रहे है होऽऽ।
कलशपुर के राजा
नाम है मछन्दर
ओखर एक कन्या
नाम हवै मचलादई
मै सपना मे जो देखो
सुन लै ओ देवरा हो
है बने इस दुलाहा
बा बनी से दुलही
मै हवो सुवासिन
गुढ़े हवै मढ़वा
मेले हवै बाराती
बजत हवै बाजा
नाचत्यै नच गरी।''

लछमन की सीता की गाथा लछमन और बीजलदई के रूप में प्रचलित है–

एक दिन रामचन्द्र जी मन में विचार करते हैं कि मेरी शादी हो गयी; लेकिन छोटे भाई लछमन की शादी नहीं हुई है। मेरे जीते जी लछमन की शादी हो जाती तो अच्छा होता। रामचन्द्र जी को चिन्तित देखकर सीताजी कहती हैं कि बासुक मामा की एक कन्या है जिसका नाम 'बिजुलदाई' है। सीताजी की बात सुनकर रामचन्द्र जी बासुक मामा से बिजुलदाई के सम्बन्ध में चर्चा करते हैं। बिजुलदाई को प्राप्त करने के लिए लछमन को लमसवाई जीतना पड़ता है। बिजुलदाई को बाँस के पोर में डालकर लछमन जी बसुक मामा को दे देते हैं। बाँस के पोर को लछमन जी बीच में खोलकर देखने लगते हैं। बिजुलदाई बीच में बाँस का पोर खुलने के कारण बादल में जाकर छिपती है। (सोनभद्र में सिंदुरिया के पास तीन नदियों–शोण, रेंड़, बीजुल का संगम गोठानी में होता है, कहीं यह प्रकरण उससे तो नहीं जुड़ा है?) इस बानागीत के अंश निम्नांकित हैं–

''ऐसे बोलत हवै सीता जी भाई,
तब रामचन्द्र करथै विचारा
मन मा होके दिल मा विचारै
राम बसुक एक ठन दूरी हवै दादा
नाम ओखर बिजुलादाई है हो।
होऽऽ काहे का बुलाये इस माचा,
कहथै बसुक मामा।
तब बताय रहे है रामचन्दन होऽऽ।

मैं सुनि ले हो मामा
कछु बात परगै
तेखर मारे राजा
तुमला बुलायौ हो
घर मा है दुरी
बीजुलदई होऽऽ
सियानी अब भैस गैस
ना होतिस ता हमार लछमन ला दे-दे तब ता नगदे रहे।''

इसी गाथा को जिला डिण्डौरा के लोक-गायक इस प्रकार कहते हैं–एक राजा थे बिजरामल (बिजयमल?)। रानी का नाम भूरी भैंस था। नौ लाख भैंसों के बीच में भादों करेलिन (बसिन कन्या) रहती थी। लछमन जी सीता के कहने पर करेलिन (बसिन) कन्या को लेने जाते हैं। गोंडवानी रामायनी में सीता-वनवास की गाथा भी मण्डल-क्षेत्र में प्रचलित है–

20. **''कैसे बोल रहे है रामचन्दर**
देख लछमन दया झै करबै
अब चले हवै चल को
तोला डोंगरा घुमाय लानो
कहत हवै सीता जी
चल देवरा नगदे कहवस हो
अब देवर भौजाई
घरै हवै रास्ता
डोंगर के भैया
आंगू हवै लछमन
धरे हवै तलवार
पाछे हवै सीता
भरे हवै लोटा मां पानी।''

रामलीला का मंचन

आदिवासी जातियाँ आर्यों के समान लोकनायक राम को नहीं पूजती हैं; परन्तु रामकथा से प्रभावित होने के कारण एवं आर्य जातियों से सम्पर्क होने के कारण राम उनमें लोकनायक के रूप में लोकप्रिय हैं।

भारतीय संस्कृति से ओत-प्रोत देशों में दशहरा, दीपावली मनाने के साथ-साथ रामलीला-मंचन का प्रचलन है। भारत में यह परम्परा प्राचीन है।

भारत के शहर ग्रामीणांचलों में भिन्न-भिन्न तिथियों पर रामलीला का मंचन होता है और स्थानीय जन ही रामकथा पात्रों की भूमिका का निर्वहन करते हैं। स्त्रियों की भूमिका पुरुष पात्र निभाते हैं। रामनगर (काशी) की रामलीला विश्व-प्रसिद्ध है।

विन्ध्यक्षेत्र के सोनभद्र जनपद में आदिवासी बाहुल्य इलाकों में आदिवासी युवा रामलीला का मंचन करते हैं; बिल्कुल सादगी के साथ। सामान्य वेशभूषा में युवक और बच्चे गाँव की चौपाल में रामकथा के पात्रों के संवाद स्थानीय लोककथाओं को जोड़कर बोलते हैं और दर्शकों का मनोरंजन करते हैं। वे

उसे अपनी भाषा-बोली में करते हैं। (यथा अगरही लोकनाट्य)

रामकथा का मंचन लोककलाकार कठपुतली के माध्यम से करते हैं। उत्तर भारत एवं दक्षिण भारत के विभिन्न राज्यों में रामकथा से जुड़े प्रसंगों को कठपुतली के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। कठपुतली नचाने और निर्माण में आदिम जातियाँ मुख्य रूप से जुड़ी हुई हैं। वादी जाति के कलाकार कठपुतलियाँ बनाते भी हैं, फिर उसका मंचन करते हैं। तीर-कमान चलाने में प्रवीण बालक दशहरा के अवसर पर श्रीराम-लक्ष्मण की तरह आपस में खेल खेलते हैं। राम-रावण के युद्ध का दृश्य उपस्थित कर देते हैं।

आदिवासी लोकजीवन में प्रकृति ने विभिन्न रंग भरा तो वाचिक परम्पराओं ने इन रंगों को मौखिक व्याख्या दी। लोकगीत, लोकगाथाएँ, लोककथाओं के माध्यम से आदिवासी भावी पीढ़ियों को सामाजिक समरसता, सहयोग की शिक्षा देते रहे हैं। लंकापति रावण की शक्ति, राम-रावण-युद्ध, वनवासी राम की आदिवासी जातियों द्वारा सहयोग आदि के प्रसंग पूर्वजों की लोकगाथाएँ रामकथा से सम्बन्धित ग्रन्थों में स्वार्णक्षरों में अंकित हैं। आज भी आदिवासीजन तीर-धनुष धारण कर अपने को शक्तिमान समझता है। तात्पर्य यह कि आदिवासी जातियों में लोकनायक राम का अस्तित्व चिरकाल तक कायम रहेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

1. सम्पूर्ण विश्व रामायण है-दीपक कुमार केसरवानी, गांडीव (वाराणसी), गुरुवार, 20 दिसम्बर 2006
2. वही
3. वही
4. प्राचीन भारत-राजबली पाण्डेय-रेखाचित्र
5. हिन्दी शब्दकोश, पृ. 431-432
6. वही
7 सोन के पानी का रंग-पं. देवकुमार मिश्र, पृ. 8
8 स्वतंत्र भारत-ऐसो हमार सोनभद्र-शेख जैनुल आब्दीन।
9. श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास सविचारित श्री रामचरितमानस लंकाकाण्ड, पृ. 709
10. वही
11. लोकगीतों में रामकथा 1-9, सोनभद्र के आरण्यक आदिवासियों का साहित्य-डॉ. जयप्रकाश मिश्र, पृ. 96-102
12. लोकगीतों में रामकथा 10, अनुष्ठानिक नृत्य गीत-प्रो. अश्विनी केसरवानी, चौमासा त्रैमासिक, वर्ष 19, अंक-58, मार्च 2002, पृ. 65
13. लोकगीतों में रामकथा 11-14, सोनभद्र के सलखन ग्राम सभा के आदिवासी कोल जाति बाहुल्य बैरहवा टोला में लोकगीत गायिका विफनी और लोकगायक सोबरन से लेखक द्वारा संकलित।
14. लोकगीतों में रामकथा 15-20, चौमासा गाथाओं में कथात्मकता-डॉ. ओंकार सिंह चन्देल, पृ. 55-60

रामलीला मंचन में राम दरबार

घर की भित्ति पर चित्रांकित रामभक्त हनुमान

अगहन मास के शुक्ल पक्ष में श्री रामसीता विवाह पंचमी के अवसर पर घर की दीवार पर बनाया गया चित्र

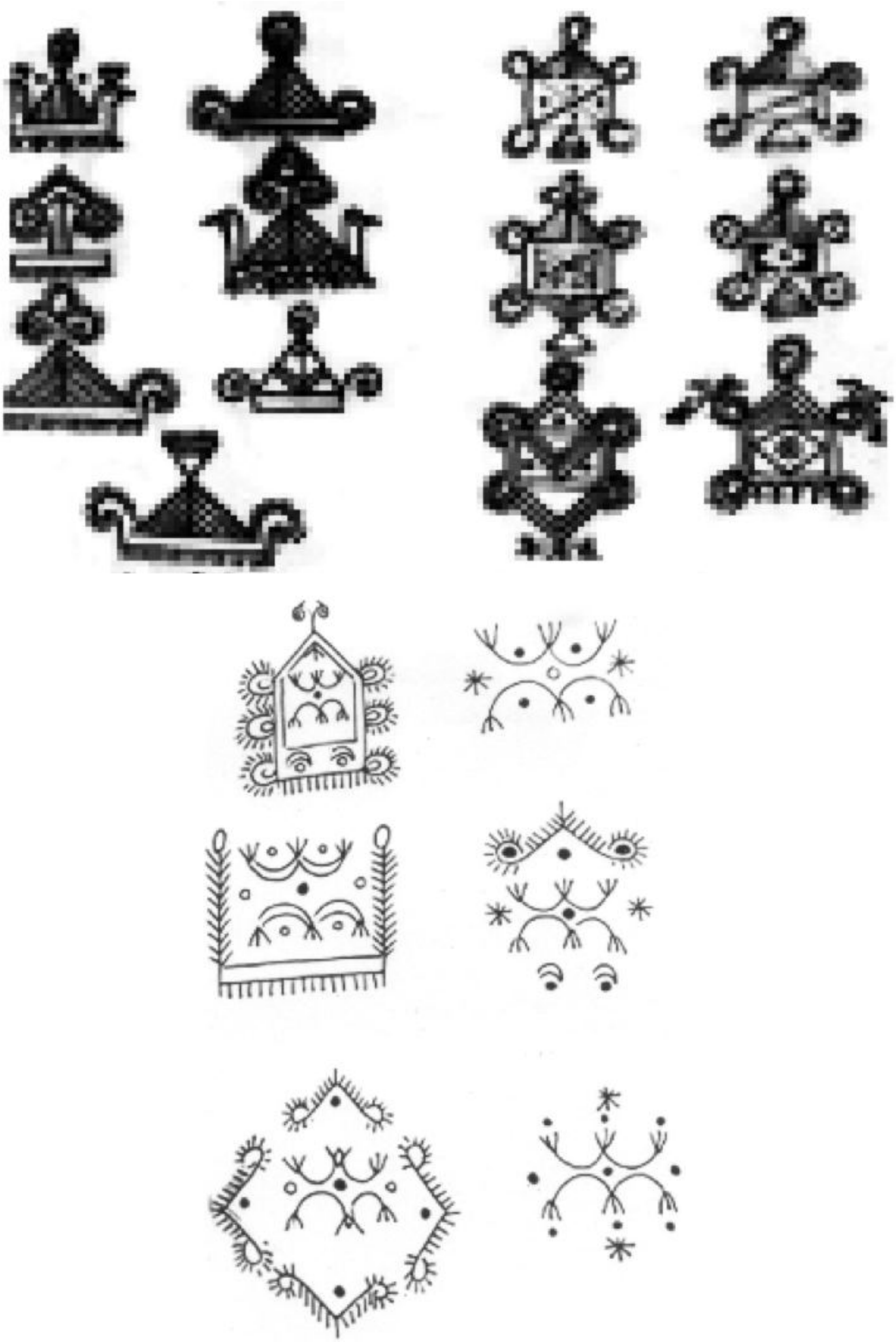

सीता रसोइया गोदना आलेखन

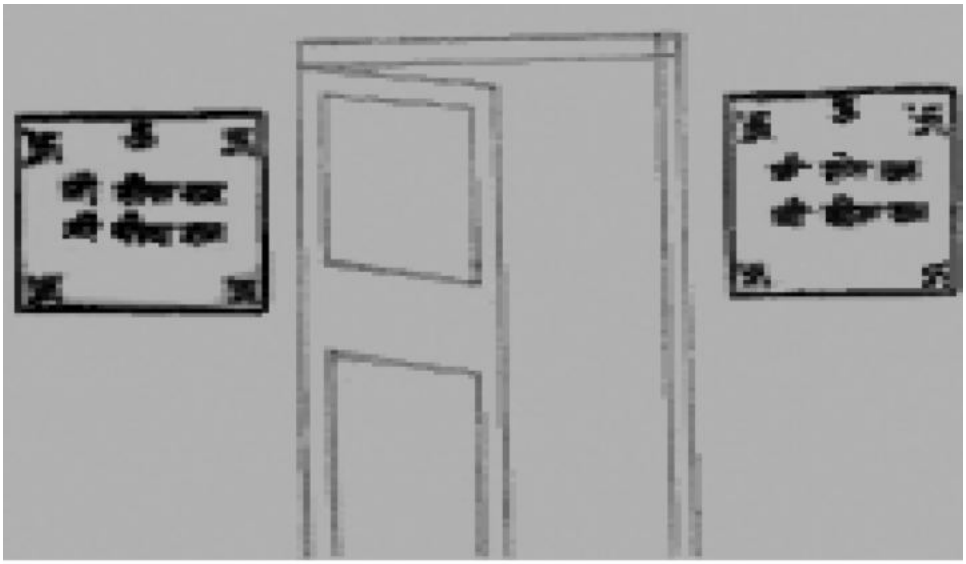

भित्तिचित्र मुख्यद्वार–सीताराम नामांकन

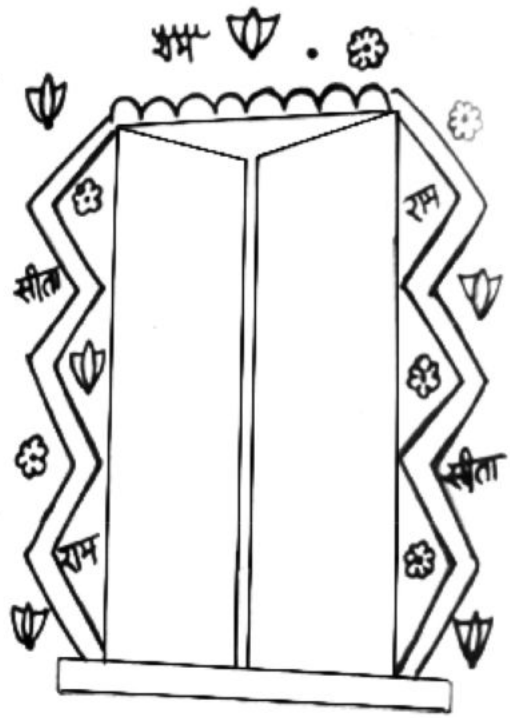

मुख्यद्वार पर सीताराम चित्रांकन

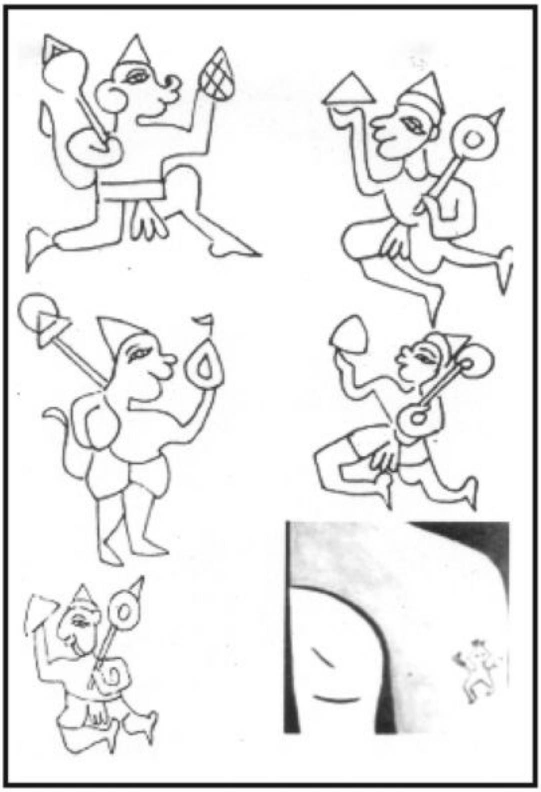

गोदना चित्रांकन रामभक्त हनुमान के विभिन्न रूप

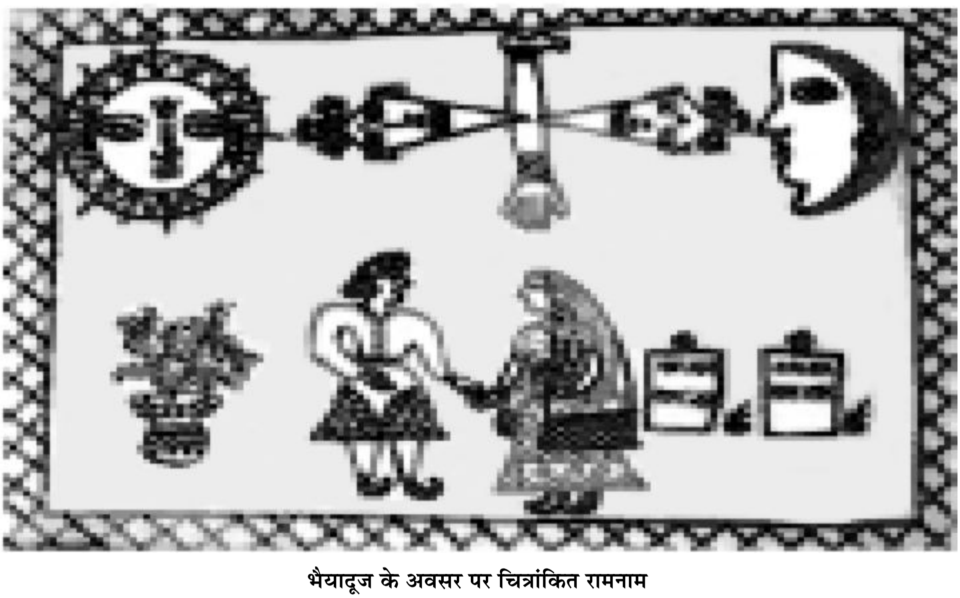

भैयादूज के अवसर पर चित्रांकित रामनाम

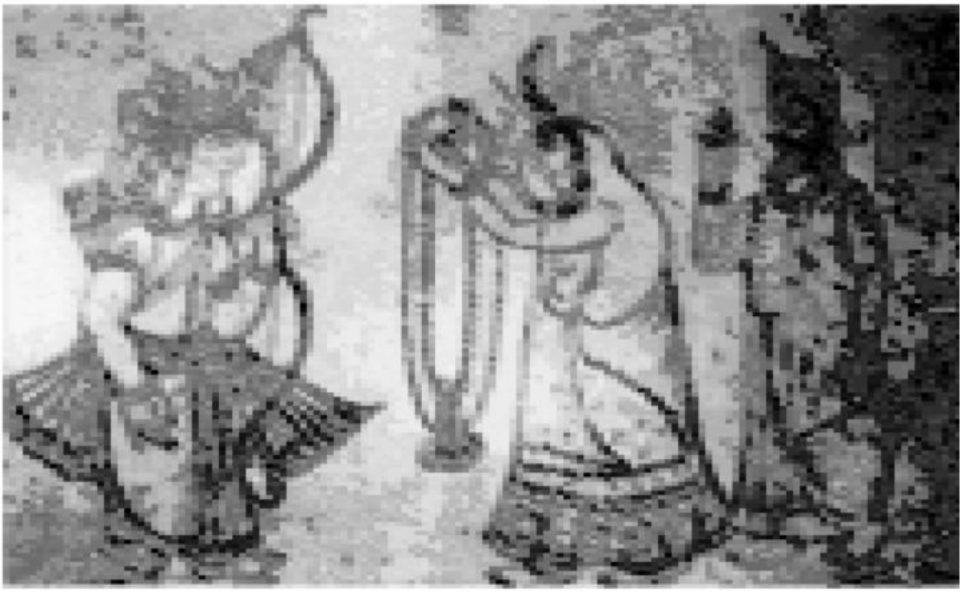

विवाह के अवसर पर पक्की दीवार पर चित्रांकित सीता स्वयंवर का दृश्य

विवाह के अवसर पर घड़े पर चित्रांकित रामभक्त हनुमान

गोदना चित्रांकन रामभक्त हनुमान के विभिन्न रूप

गोदना चित्रांकन रामभक्त हनुमान के विभिन्न रूप

गोदना चित्रांकन रामभक्त हनुमान के विभिन्न रूप

कोलों की देवी शबरी के राम

डॉ. अर्जुनदास केसरी

(शबरी कोलों की देवी और कोलिन थी। वह राम की भक्तिन थी। अतः वनवासी राम को जानने के लिए, शबरी का प्रसंग आत्मसात करने के लिए कोलों के बारे में जानना भी जरूरी है। अतः यह लेख उसी भाव से यहाँ प्रस्तुत है।)

कोल, भील और गोंड शिकारी वर्ग की बड़ी पुरानी जनजातियाँ हैं, जिनसे गोस्वामी तुलसीदास का भी कभी पाला पड़ गया होगा, तभी तो उन्हें लिखना पड़ा–

''इहइ तुम्हार बड़ी सेवकाई। लेइं न बासन बसन चतुराई।।''

मैं नौ फरवरी'14 कोलों की देवी शबरी के बारे में जानने के लिए मारकुण्डी घाटी में, शोणभद्र के तट पर चुनार दुर्ग की तरह स्थित विंध्ये क्षेत्र, कैमूर के सर्वोच्च शिखर के पाँव तले बसे बैरहवां 'कोलान टोला' प्रातः दस बजे पहुँता–दो किलोमीटर की पदयात्रा करके। उसी रास्ते सन् 1966 में हम कुछ लोगों ने पहली बार खोढ़वा पहाड़ की चढ़ाई की थी। उस समय शेर–भालू चीते वहाँ बसेरा बनाये हुए थे। जीवों में अजगर तक रहते थे। उसी समय से गुहाचित्रों की खोज का भूत भी मेरे ऊपर सवार हो गया था और लिखने का नशा लग गया था।

खैर, बस से उतरा तो धरकारों का एक झुण्ड मिला। वे सूपा, बेना, डलिया–डोलची बेचने ओबरा–डाला जा रहे थे। इनकी बस्ती में मैं बहुत पहले वाद्ययंत्रों की एक कार्यशाला पटवध स्कूल में कर चुका था, अनुभव था। इसमें से एक कलाकार ने कोलों की बस्ती का ठेकाना बताते हुए कहा कि उनकी नहीं, हमारी बस्ती में चलिए, हम बढ़िया नाचते–गाते हैं। माथा ठनका कि कहीं ये कार्य में बाधक न बन जायँ। इनकी विशेषता यह है कि ये दिन भर काम करके शाम को छक कर मद्यपान करते और तनिक–तनिक सी बात पर कपरफुटौवल कर बैठते हैं। थाने जाते हैं, सिपाही वसूली करकरा कर इनके रगड़े–झगड़े निबटाते हैं।

जो भी, मैं आगे बढ़ा, डरते–डरते तो सोबरन कोल मिले। यह एक अच्छे कलाकार हैं, कई कार्यक्रमों में जा चुके हैं, प्रमाण में उन्होंने एक प्रमाणपत्र भी दिखाया। सोचा, काम बनेगा, पर वह अकेले मिले। बात मैंने बताई तो उन्होंने कहा–''दिन में हम अपनी जीविका का काम करेंगे कि नाच–गाना करेंगे। यह काम रात में होगा।'' सोचा, आखिर उनकी भी बात ठीक है। हम उन्हें अधिक से अधिक नाश्ता ही तो देंगे, ये भोजन कहाँ पायेंगे? ''भूखे भजन न होइं गोपाला, ले लो अपनी कण्ठीमाला।''

बात मैंने कई तरह से समझयी तो उसे और उसकी बहू के समझ में कुछ–कुछ आयी तो बोला–''ठीक है आप परसों आइए, मैं सबसे पूछकर बताऊँगा, उस दिन उन्हें जुटाऊँगा भी, पर कुछ खर्चा–बर्चा दे दीजिए। उन्हें छनाना–घोटाना पड़ेगा, तब नाचेंगे, बतायेंगे।''

मैंने सौ रुपये निकाल कर दे दिया, वह मुस्कुराया, मैं सेबरी और राम का कथा–प्रसंग स्मरण

करते घर लौट आया।

सोच-विचार के बाद दूसरे दिन फिर पहुँचा तो स्थिति यथावत मिली। सोबरन को गाँव से बुलवाया तो तीन जन आये जिनमें दो छाने हुए थे। दो ढोल लिए हुए थे। कहा–"और बातिज कमाने चले गये हैं। हम नाचेंगे-गायेंगे, सुन देख लीजिए और वे नाचने-गाने लगे। बोल था–

"कहत मदोदरि, सुनऽ पति रावन।
लंका में दाहन होत।।"

मन्दोदरी-रावन का यह अच्छा प्रकरण था। ढोल दमक उठी थी, झाल सुहावन लगी। पाँवों की थिरकन में भी दम-खम था। लगा कि काम हो सकता है। बाजा सुनकर और लोग आ गये।

मैंने कहा–"**कुछ और गावो, सुमिरनी से शुरू करो।**" तो ढोल बजाकर गाने लगा–

"के के सुमिरीं हम आसन लगवतीं,
के सुमिरि गायीं गीति,
रामसुमिरि हम आसन लगवली हो,
सरदा सुमिरि गायीं गीत–येऽऽऽ हाँ।।
भवानी माई भूलि रहिया बतावऽ। येऽऽहाँ
× × ×
देवी तोहरे अंगने में आये निहारि,
गोड़ हे पइयाँ लागउं। येऽऽऽहे।"

इतना गाते अन्य कलाकारों, दर्शकों-श्रोताओं की भीड़ जुट गयी। स्वर में स्वर, वाद्यों की संगति करने के लिए और कलाकार जुट गये। लगभग एक घण्टा स्वर की गंगा बहती रही और हम उसमें डुबकियाँ लगाते रहे। अगले दिन फिर सबके जुटने की बात कहकर मैं घर लौट आया।

अगले दिन पहुँचा तो कुछ कलाकार और जुट गये। सोबरन ने कहा–'बाबू! आज देवी क गीत सुनाइब।' मैंने कहा ठीक है, 'बताओ भाई, किन-किन देवी-देवताओं की पूजा करते हो।'

'सेबरी कऽ बिरम्ही, दूल्हादेव (विवाह के अवसर पर), गंवहेर (गाँव में), डिहवार (डीह पर), घमसान (जहाँ, जब काम रुकता है।), जिस काम को कोई देवता नहीं कर पाता, उसे घमसान करते हैं–

"बिन घमसान कवन बारे तपनी।"

इसके अलावा मइहर माई, ज्वालामुखी, जलारानी (रोट चढ़ाकर), नारियल-दूध चढ़ाकर, जाऊर (खीर) चढ़ाकर। मंगेश्वरनाथ को गांजा चढ़ाकर पूजते हैं, गीत भी गाते हैं। देखऽ उहइ मंगेसर बाबा खोढ़वा पर बायंऽ।

"अरे निबिया महरानी का नाम तो लिया नहीं। क्यों?"

"ऊ जबर देवी हैं, गाने पर आती हैं तो बिना पूजा लिए नहीं मानतीं।"

"अरे भाई-पूजा ही न लेंगी, गाओ तो सही।"

वहीं नीम का वृक्ष था, चुनरी-मचिया टँगी थी। लगा कि यहाँ भी सावन में गीत-गवनई होती है। इतना कहते सोबरन ने आँखें मूँदी, फिर खोला तो लाल-लाल दिखीं, पेड़ की ओर देखा, फिर ढोल पर थाप मारा और गाने लगा–

"नीबिया के डारी मइया डालें ली हिंडोलवा कि झूलि-भूलि ना,
मइया गवनऽ गीतिया मिलिजुलि ना,

हमार दुधवा जुड़ाबऽ हो, मालिनि एक ना।

× × ×

नीबिया के पेड़ जीनि काटा ए बाबा,
ओही में चिरइया क बसेर।

क्या बात है? देवी की पूजा के संग-संग वृक्ष और चिड़िया-चुनमुन की बात जीव-दया, पर्यावरण के मूल्य उमड़ आये।

इतना गाते उसपर देवी सवार हो गयीं। वह लोटने-हबुवाने लगा। ढोल लुढ़क गयी। आँखें लाल हो गयीं। नाक बहने लगी तो राम प्रसाद ने मनाना शुरू किया, हाथ जोड़ने, पाँव पड़ने लगा।

सोबरन देवी के रूप में बोला-"पूजा चाहीं। गुड़, घी, शराब चाही, दो नहीं, मारे जाओगे।" मैं हैरान था-क्या करूँ?

राम प्रसाद बोला-"आप मनाईं, पूजा बदे 201 रुपया देहीं, तबै काम बनी, नाहीं देवी मार डाली।"

मैं भी क्या करता, झट 101 रुपया निकाला, देने लगा तो रामप्रसाद बोला-"पाँव पकड़ीं, देवी मनाईं।" मैंने हाथ जोड़ लिया, थोड़ा डरा भी।

खैर, सब सामान्य हुआ तो गायक-वादक आये, कार्यशाला करनी थी। एक घण्टा उनके साथ रियाज किया। एक दिन और बीता। शबरी के बारे में, शबरी के वंशजों के बारे में कुछ ही हाथ लग पाया था।

फिर अगले दिन पहुँचा। बैनर लगवाया। नीम तले सेबरी का प्रतीक रखा गया। बूढ़ा देयी के रूप में लकड़ी, टेढ़ी-मेढ़ी गाड़ी गयी और बातचीत शुरू हुई। ढोल-मजीरा, तरसा, हारमोनियम, घुँघुरू, झाल लेकर कलाकार बैठ गये। अगरबत्ती जलाई गयी। पूजा-स्वरूप फिर 101 रुपये का लड्डू मँगाया, उसे चढ़ाया गया। सोबरन, दुलारे, परसोतम, रामविलास, बौड़म, रामपती, विफन, सत्तन, बंगाली, नान्हू, जवाहिर, सुखराम, सुकालू, गोहन जुट गये। फिर बातचीत शुरू हुई तो कलाकार गीत की पंक्ति गुनगुनाने लगे-

"कहै गावैं न बजावै, देव अपने से आवैं
केकर राम केकर भइया लछिमन अब होऽऽऽ
केकर भरत भुवाल, दोनों भाई। आवऽ होऽऽऽ

× × ×

रानी कौसिल्या क राम-लछिमन
रानी केकई के भाई भरत भुवाल
केकरा के राम लिखैं, केकरा के रावन
केकरा के राज लिखें, केकरा वनवास।
राम-लछिमन के बन लिखिले
बारह बरिस के वनवास लिखिले
तेरहवें में राज भोगाई।"

इस गीत-गवनई से राम में वनवासी और वनवासी में राम का रूप मूर्तवत् हो गया। उनके संग स्वयं भी खूब झूमा-गाया-नाचा तो आनन्द आ गया।

फिर अगला गीत शुरू हुआ-

''फुलवरिया केतने दूर
के राम गेना के गइले।
कहंवां लगउला गेंदवा
कहंवां हो चमेला फूल?''

जवाब में आया–

''दुवरा लगवलैं गेंदा
खिड़की पर बेलवा
लालें फूल फूलै गेनवां
बेला उजर फूले ला।''

श्रीराम ने बेला–चमेला का बाग लगा दिया। कोलों के प्रथम आराध्य राम हैं, क्योंकि कोलिन सेबरी राम–भक्तिन थी। उसके अप्रतिम प्रेम के चलते राम ने उसके हाथ की जूठी बेर खायी थी। इसीलिए सेबरी भी पूज्या बन गयी। यही कारण है कि कोल रामकथा से जुड़े अनेक प्रसंग गाते–सुनाते हैं। वे राम और सेबरी का प्रस्तर–मिट्टी का प्रतीक बना कर वृत्त या अर्द्धवृत्त में नाचते–गाते हैं। कोलदहकी नृत्य के साथ 'दोहरी' पंक्तियों को बार–बार दुहराते हैं। यथा–

''कवने बेलवां अब कवने बेलवां हो
कवने बेलवां त लछिमन राम मिलइं हो।
हिन्नक-धिन्नक-धिन्नक।''

इसके साथ राम से सम्बन्धित एक लम्बा गीत गाते हैं जिसे अपनी भाषा में 'भजनिया कोलदहकी दोहरिया' कहते हैं–

''सेबरी के देखनी हो सगुनवां,
घरवां राम अइहैं ना।
लामी-लामी केसिया रे सेबरी रहिया हो बहोरै–
ओही रहिया अइहैं भगवान
त सेबरी के घरवा।
पकली बइरिया सेबरी बीछि-बीछि तोरे ले हो
भोगवा लगावैं भगवान, सेबरी के घरवां।
सेबरी देखेंली हो सगुनवां–
घरवां राम अइहैं ना।
प्रेम क भूखल हो भगवान
सेबरी के घरवां।
ओही रहिया अइनऽ हो भगवान
सेबरी के घरवां।''

शबरी भविष्यद्रष्टा है, उसने राम के आने का शकुन विचार लिया था। तभी तो सेबरी ने राम को बुलाया, सथरी दसाया, बेर साग चीख–चीख कर रखा कि कहीं कच्ची बेर न हो। नीम के छाँव तले चटाई भी बिछा दिया, पानी–पत्तर रख दिया और सेबरी कहने लगी–

''उतरऽ हो भगवान निबिया के शीतल छइयाँ।''

भगवान आये, आये तो बैठे कहाँ? देखिए–

''पोखरी के भितवा पर तीन पेड़ सखुववा
ओही तरे बइठइं तीन रे तपेसिया
सीता हो लछिमन राम हो, राम बिलायन।
खिरकी रे चमेला सिया राम भजे राम भाई।''

इस दिन की तो चर्चा भी पूरी हो गयी। ऐसे ही दस–बारह दिन बीत गये। मैं उन्हें राह बताता रहा, पर वे अपनी राह चलते रहे। एक दिन पूछा राम के अलावा भी किसी के गीत गाते हो तो गाओ, हाँ किसुना जी के।

गीत गाकर सुनाया और नाम बताया 'कोलझर्रा।' गीत की पंक्तियाँ हैं–

''कवने बनइं किसुना गइया चरावइं हो, कवने बने?
केदुल के बने किसुना बंसिया बजावइं,
गइया चरावइं।''
पंपापुर में दहिया जमावइं होऽऽऽ।।''

कोलों का जीवन विसंगतियों का जीवन है, तथापि वे मस्त रहते हैं। दिन में कमाते, रात होते छान–घोंट कर लुण्ड हो जाते हैं। झगड़े करके कपरफुरौवल भी कर लेते। प्रातः सब एक हो जाते हैं। नाचना–गाना उनकी प्रतिदिन की दिनचर्या है। स्त्रियाँ तबाह रहती हैं। बच्चे इस माहौल में पढ़ नहीं पाते हैं। ये प्रायः खदान में क्रशर से जुड़े हैं। मजदूरी करते हैं। गाँव में बिजली सड़क पर भले हो घरों में नहीं है। नहर (शोन पंप नहर) के जल से काम हो जाता है। घरों में टूटी चारपाई, मचिया, दो चार पात्रों, गगरी भर दानों के सिवाय कुछ नहीं दिखा। बच्चे नमक–चावल खाते दिखे। चाय–नाश्ता–जलपान का सवाल कहाँ? वस्त्र के नाम पर लंगोटी–लुंगी, बंडी। इस टाइम खाया तो उस टाइम नहीं खाया, उस टाइम खाया तो उस टाइम नहीं। पुवाल भरी बोरियाँ मिलीं जिनपर वे सोते हैं। एक ही घर में बेटी, बहू, भाई, बाप सब आड़ बचाकर रह–सो–लेते हैं। आज़ादी के साठ दशक और यह जिन्दगी हम कहाँ हैं? यह देश कहाँ है? राजधानियों में गुलछर्रे उड़ाते हैं, यहाँ फाकामस्ती है–राम ही का सहारा है। देखकर रहा नहीं गया तो पूछ बैठा–भाई अपने जीवन के गीत तो सुनाओ जिसमें दर्द भरा हो? तब ताल ठोंक कर गाने लगे–

''देशवां में भइनऽ कुदेस
चलऽ हो भइया आन देसवां।
गंवइयाँ हमके नीकइ न लागइ
देसवा भइनऽ भदेस-
चलऽ हो पिया
देशवां ई भइनऽ कुदेस।''

भाव यह कि अब इस देश में कुछ रह नहीं गया है। यह सुदेश–भदेश हो गया। पहले वाली बात नहीं रह गयी, जंगल कट गये। जानवर भाग गये। चिड़ियाँ–चुनमुन उड़कर दूसरे देश चले गये, जंगल के फल–फूल नष्ट हो गये, नदियों का पानी सूख गया। पंप का पानी जहरीला हो गया। तेन, पियार, महुवा, साखू-सरई, कोदई भी नहीं बची जिसे हम प्रेम से खाते और अकाल–दुकाल के लिए रख लेते थे।

कोदई की बात आ गयी तो मुझे छठे दशक में सुने एक गीत की पंक्ति याद आ गयी–'कोल छाँटइ कोदइया कोलिनि मुसुकाइ।'

पूछा यह गीत किसी को याद है? सुना सकोगे? तो कहा–हाँ, याद है सुनाऊँगा। सुनाने लगा–

''कोल छाँटइ कोदइया कोलिनि मुसुकाइ।।''

× × ×

''कोलवा पुअरा पोटइ रे
कोलिनिया करइ उधुवार।।''

कितना भावपूर्ण गीत है यह। कोलिनें कोदई (निकृष्ट कोटि का अनाज जो निरन्तर खाते रहने से मता देता है खाती है। वह ऐसा अनाज है जो कभी वर्षों–वर्ष सड़ता–गलता नहीं है। मिट्टी में सानकर दीवार बना दी जाती है, जिसे अकाल–दुकाल में निकालकर धो–बनाकर खाया जा सकता है।) उसे कोलिनें ढेकी में ओखली में कांडकर भात पकाकर खिलाती हैं। यह लगभग प्रतिदिन का क्रम है। यह गरीबी का प्रतीक है, लेकिन एक दिन कोलिन रूठ गयी, कोदई नहीं कांड़ी और कोल को भूख लग गयी। क्या खाता, उसने कोदई छाँटनी शुरू किया तो दूर से कोलिन मुस्कुराने लगी। चलो छाँटो कोदई, मजे न मारते हो। छाँटा–बनाया खा लेते हो, देखो तो कि छाँटने–बनाने में कितनी मेहनत लगती है।"

इस पंक्तियों में कैसी भाव–व्यंजना है। कुछ प्रेम है, कुछ अमर्ष है, कुछ अभावग्रस्त जीवन की विसंगति है, सहयोग का भाव भी है। श्रृंगार के साथ–साथ करुणा–हास्य भी है। ऐसे गीत किस आभिजात्य भाषा में प्राप्त हैं?

कोल समुदाय में ऐसे सैकड़ों गीत हैं जो सदियों ही नहीं, सहस्रब्दियों से उनके जीवन में रंजेपुजे हैं और स्वस्थ मनोरंजन के साथ, दुख में सुख की अनुभूति के लिए प्रेरणा–स्रोत भी हैं। जिस दिन ये गीत नहीं रहेंगे, ये मर जायंगे। इनका जीवन दूभर हो जायगा।

दिन जैसे बीतते जाते वैसे–वैसे उनके साथ आत्मीयता बढ़ती जाती। एक दिन ऐसा हुआ कि हम कार्यशाला कर रहे थे, बच्चे, बूढ़े–बूढ़ियाँ दीवार और टटरी के पीछे से सुन–देख रही थीं। मैंने देखा कि लगभग पचहत्तर वर्षीया बुढ़िया गीत के संग थिरक रही थी, हाव–भाव प्रदर्शित कर रही थी। कहा–आ माता जी, तू भी नाच दिखा तो वह शरमा कर घूँघट काढ़कर किनारे हो गयी। मेरे समझ में आया कि महिलाएँ भी नाचती–गाती हैं। पूछा तो पता चला कि हाँ, वे भी नाचती हैं। पहले कोलदहकी नाच में महिलाएँ भी भाग लेती थीं, अब नहीं लेतीं। मैंने उनसे आग्रह किया–नाचने का तो किसी तरह तैयार हुईं। आकर नाचने लगीं, तो क्या पूछना, शमा ही बँध गया। झूमकर नाचा, आनन्द आ गया। बूढ़ी माई जब नाचने लगी तो भसुर–समधी हट गये (मर्यादा)। इसी तरह क्रमशः तेरह दिन बीत गये–नाचते–गाते हँसी–खुशी में। चौदहवें दिन मैंने कहा–कुछ और रस–रंग के गाने सुनाओ तो ये गीत गाने लगे–

''मेरी बेनी गिरइ कवने ओर हो।
नचत रही तेरे हहरे अंगने।''

मैं तुम्हारे आँगन जब नच रही थी ते मेरी बेनी (बांह में पहने जाने वाला आभूषण) कहीं गिर गयी, अब तो नाचने नहीं जाऊँगी। ब्याह के समय की वह बेनी अब कहाँ मिलेगी?

दूसरा गीत–

''नाचइ पतुरिया घुघुरु घहनाइ''

आज नाचने वाली महिलाओं में तम्मू, तरेसी, बेसनी, बिफनी, मंजू, रन्नू और कौशिल्या थीं। उन्होंने आगे गाया–

''फुलवरिया है केतनी दूरी
गमक आवे बेला क हो।''

(कितनी दूर फुलवाड़ी है कि बेला की गंध मदमस्त कर रही है)

''सखी आई बेलवरिया में।''

यहाँ सखियों के साथ जानकी के जनकपुर वाटिका आने का भाव व्यंजित होता है।

इसी तरह दादरा स्वर में विरह-मिलन के भाव व्यक्त करने वाली पंक्तियाँ हैं–

''घुघुरुवा बोलइ सारी रतिया हो
सइयाँ सुनइं
जिया घबराइ।

सेजिया रे लागइ भयावन–
राती बिनु बालम के। हे रे हे।।

पारिवारिक जीवन के सुख-दुख की अभिव्यक्तियाँ भी इनके गीतों में मिलती हैं, जो प्रेरणादायक हैं। आज परिवार, संयुक्त परिवार टूटता जा रहा है। पहले, विशेषकर जनजातियों के परिवार और पंचायत जो सर्वोच्च सत्ता थी, जिस पर बड़े बूढ़े का बड़ा महत्त्व था। पुरानी कहावत भी है–'बूढ़े जेवन भीती लेलन।' अर्थात् बूढ़ों को खिला-पिला कर और दीवार को लीप-पोत कर रखा जा सकता है। इनके गीत की पंक्तियाँ देखिए–

''पूरब के देसवां में झांझर नइया
केन खेवइं नइया, ससुर मोर बुढ़वा।
केन खेवई नयिया देवर आना बोलत नाऽ।''

पूरब देश की ओर दूर जाना है, नाव झांझर हो गयी है, खेवइया ससुर जी बूढ़े हो चले हैं, देवर जी कुछ बोल ही नहीं रहे हैं। हमारी नाव पार कैसे लगेगी? (नौका) का मतलब जीवन-नौका से समझना चाहिए। अब तो उसे राम ही पार लगायेंगे।

गंगा जी पूरब की ओर बहती हैं। जल कम होने से धारा में रेत पड़ती जा रही है। (प्रदूषण) उस बालू रेती में बूढ़ी बंगालिन जाकर टोना-टोटका कर रही है, हम कैसे बचें–

''धीरे-धीरे बहइं मइया गंगा-जमुनवां
कइसन हऽ ए मइया गंगाजी क पनियाँ
बीचवा बहइ बालू रेत ए माई।
ओही बालू रेतिया में बुढ़िया बंगालिन
जादू अइसे मरलवा सरीर रे माई।''

इस तरह पन्द्रह दिन इनकी बस्ती में रहकर मैंने देखा कि कोल जनजाति निरन्तर टूटती जा रही है। अशिक्षा के चलते इस बढ़ती महँगाई में उनका जीवन कठिन से कठिनतर होता जा है। उससे उबरने के लिए एकमात्र सहारा है उनका नाचगाना, राम-सहारा। अत: जरूरत है कि उसे राजकीय संरक्षण प्राप्त हो, साथ ही उनके साहित्य को भी संरक्षित किया जाय।

जनजातीय लोकगीतों में राम

डॉ. ज्ञानेन्द्र प्रताप निराला

धनुष-यज्ञ में देश के कोने-कोने से राजाओं का जमघट जनकपुर में लगना शुरू हो गया था। कोई बल के दम्भ में तो कोई योद्धा धन-ऐश्वर्य के गर्व में, कोई दीर्घ और पुष्ट काया के मद में तो कोई रत्न-जड़ित-मण्डित मुकुट के अहम् में चूर था। वे बड़ी-बड़ी गर्वीली मूँछें ताने पधारे तो जरूर; लेकिन तपसी वेशधारी राम और अनुज लक्ष्मण के आगमन की प्रतीक्षा पूरे नगरवासियों को थी। उनका राजसी ठाठ-बाट नहीं था। उनके माथे पर मुकुट और ताज नहीं था। लेकिन तपसी परिधान में उनका आकर्षण नगरवासियों के नेत्रों में हमेशा-हमेशा के लिए समा गया था जिसका उल्लेख आदिवासी साहित्य में हुआ है।

1. सोनभद्र के आदिवासी चेरों के एक गीत में राम-लक्ष्मण के तपसी-वेष का आकर्षण, राम को झरोखे से निहारती सीताजी की स्थिति, धनुष और योद्धाओं की स्थिति और अल्पवय में रामजी के विलक्षण रूप-सौन्दर्य, लावण्य और वीरता का वर्णन इस प्रकार है–

''सखी राम लखन दुनों भइया जनकपुर, आय गइनो हो राम।
तपसी क रूप अनूप बनायो
कोटिन भाँति छवि रूप देखायो,
माता जानकी जी झरोखे बइठे नयन सर्माय गइलें हो राम।
सखी राम लखन दुनों भइया जनकपुर, आय गइनो हो राम।''

''बड़े-बड़े वीर जनकपुर जूटें
तिल भर धनुष गुमुष न खाय।
अबहीं रामचन्दर थोड़े उमर के, छलक धनुष तोड़ देहलें हो राम।
सखी राम लखन दुनों भइया जनकपुर, आय गइनों हो राम।''

2. अनुरागिनी सेबरी हर पल अपने इष्ट के ही चिन्तन भजन में हुलसित रहती थी। उसका नियत कर्म ईश्वरानुराग था। उसे उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते-जागते राम की ही लौ लगी रहती थी। गहरी आस्था और चिरंतन भजन-भाव के नाते भगवान को सेबरी की झोंपड़ी तक तपसी-वेश में जाना पड़ा। जंगली कुटिया में था भी क्या? सिर्फ राम का भजन और उन्हीं का भरोसा। कैसे हो आतिथ्य सत्कार; कामधेनु और नन्दी भी तो नहीं कि आवभगत मनोवांछित ढंग से कर सकें। लेकिन जरूरत भी नहीं, तपसी को तो कन्दमूल और जंगली बेर ही तो चाहिए था।

कोल आदिवासी के एक गीत में राम और सेबरी का चित्रण देखिए और एक लम्बी गाथा को जोड़ती दूरदर्शिता भी–कुछ ही पंक्तियों में रामकथा के कई प्रसंगों को ग्रहण कर लिया गया है–

''सेबरी रहिया बहोरे हो राम, भगवान अइहें।
सेबरी राम के बइर खियावे हो राम, भोगवा लगावें
सेंबरी लछिमन के बइर टिकावे हो, लछिमन पीछे के फेंकत
लछिमन के लागल शक्तिबनवा हो, लछिमन मुरझाय गइले
हनुमत उड़ गयो परबतवा लेवे, सजीवन बुटिया,
एक हाथ लिहे गदा, एक हाथे परबतवा।
उहां से उड़े तब भरत मार देहलें बनवा हो।''

3. बेटी में तीनों देवियों की परिकल्पना की गई है। सच में बेटी ही सृष्टि है, बेटी ही दृष्टि है, बेटी ही बृष्टि है। लेकिन समाज उसे संतुष्ट नहीं बना पाया। कहीं न कहीं पुत्र के बिना कोख सालती है। तभी तो पुत्र–जन्म पर उल्लास भरा मन और माहौल होता है, पुत्री–जन्म पर हताश भरा मन।

कोल आदिवासी भी इसी कुण्ठा में जी रहा है; तभी तो पुत्र जनम पर आदिवासी महिलाओं के कण्ठ से सोहर के स्वर फूटते हैं और पुत्री जनम पर ऐसा नहीं होता है–

''कहवां जनमलैं ले राम, त कहवां कन्हइयाँ,
त कहवां कन्हइया न हो,
कि अब कहवां जनमलैं गणेश जी कि, तीनों घरवों सोहर हो।
अजोध्या में जनमलैं जे राम, त गोकुल में कन्हइयाँ,
त गोकुल में कन्हइया न हो।
कि अब घरे में जनमलैं गणेश जी, कि तीनहुं घरवों सोहर हो।
कोसिला के जनमलैं जे राम, त देउकी के कन्हइया,
त देउकी के कन्हइया न हो
कि अब परबती के जनमलैं गणेश जी, कि तीनहुँ घरवाँ सोहर हो।''

आदिवासी बहुधा राम–कृष्ण में अन्तर नहीं मानता। वह दोनों में एक शक्ति का आभास पाता है और मानता है कि एक की आराधना से दूसरे की भी पूरी हो जाती है। इसीलिए उक्त गीत में राम–कृष्ण दोनों के कथा–प्रसंग निहित हैं। ऐसे और ऐसे और भी लोकगीत प्राप्तव्य हैं। उन्हें खोज निकालने के लिए कृतसंकल्प होना होगा।

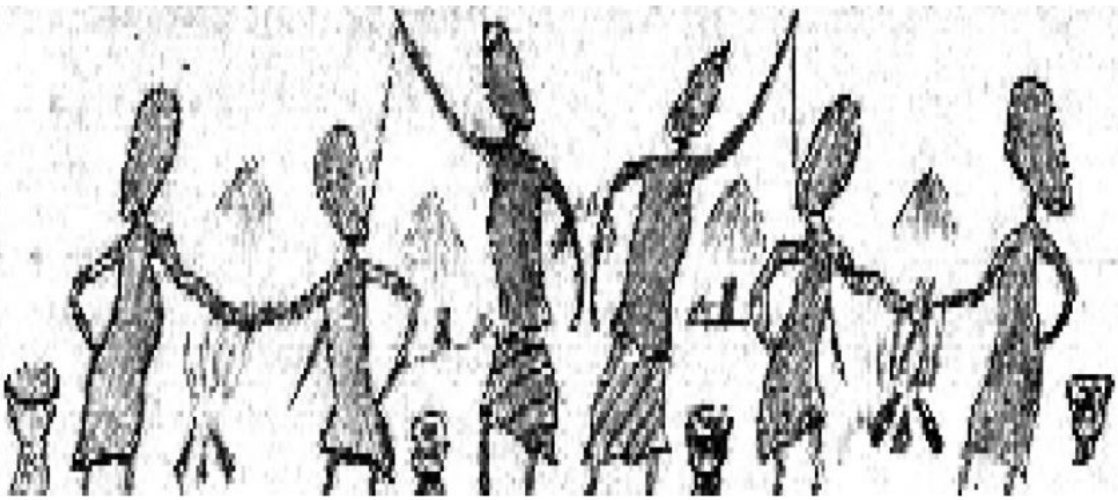

4. घसिया जाति अपनी भाषा और परम्परा को लेकर काफी सजग है। पुत्र-जनम के अवसर पर इनमें भी खुशी का माहौल बना होता है। पास-पड़ोस में भी खुशी का ठिकाना नहीं होता। वे महुआ की दारू और मादल की थाप पर रात-रात भर नाचते व गाते हैं। बिटिया की पैदाइश इनमें भी कष्ट पहुँचाती है। पुत्र की उत्पत्ति राम के अवतार के रूप में देखते हैं–

घसिया के एक गीत को देखिये, जिसमें हर्ष और विषाद द्रष्टव्य है–

''नउवें महीना ग गरब रहे ढेबी हो,
दसवें महिना अवतार।
रेपटी जनम भइल, कोला-पीछोला,
रेपटा जनम भइल मांझ अंगना।
अवध राजा दशरथ कोसिला के कोख में राम अवतार।''

(ढेबी = पुत्री, ढेबा = पुत्र)

वनवासी जीवन में व्याप्त श्रीराम

शिवप्रसाद 'कमल'

इस वर्ष वैशाख में ही सूरज जेठ माह की तरह तप रहा था। प्रस्तुत लेख के लिए सामग्री इकट्ठा करने हेतु आदिवासी समाज के पास जाना था। सुबह के समय घर के पुरुष, लकड़ी काटने, दातुन (नीम की पतली डाल) तोड़ने, दवा बनाने के लिए अपने लड़के-लड़कियों के साथ बस्ती छोड़ देते हैं। सुबह इनसे भेंट न हो सकेगी, यही सोचकर शाम को सूरज के नरम पड़ने पर इनसे भेंट करने का निश्चय किया।

सायंकाल साढ़े पाँच बजे मुसहरों और कोलों की बस्ती में जाने के लिए मोटरसाइकिल से अपने छोटे पौत्र आकाश रंजन के साथ निकल पड़ा। नगर के बाहर दो-तीन किलोमीटर जाने पर इन वनवासियों की बस्तियाँ हैं। इनकी बस्ती में पहुँचते-पहुँचते सूरज की स्वर्णरंगी ज्वालाएँ शान्त हो चुकी थीं। ऊपर आकाश में पश्चिम की ओर हल्की लाली फैलने वाली थी।

इनकी बस्ती के आसपास पेड़ों-पौधों तथा झाड़-झंखाड़ों पर अभी हरियाली शेष थी। इधर दो-एक बार वर्षा हो जाने के कारण बसन्त का वैभव सम्पूर्ण रूप से समाप्त नहीं हुआ था। इन वनवासियों को जीने के लिए जंगल, जमीन, जल और जानवर जरूरी हैं। लेकिन मैं जहाँ पहुँचा वहाँ बस्ती के नाम पर मात्र कुछ झोंपड़ियाँ अत्यन्त जर्जर अवस्था में थीं और वहीं कुछ बकरियाँ में...में...में...में...कर रही थीं।

शायद यह विडम्बना ही है कि स्वतन्त्रता के बाद ये मुसहर और कोल जंगल से बाहर कर दिए गए। इनके पास अब न जमीन है, न खेती के काम आने वाले बैल-गोरू। रही बात जल की तो इनकी इस मलिन बस्ती में मात्र एक चापाकल पानी के लिए लगा हुआ है। किसी समय वन सम्पदा पर इनका अधिकार था और ये उसी पर आश्रित थे; किन्तु आज ये लोग जंगल के बाहर कर दिये गये हैं।

इनकी रहनी निर्वासिनों की तरह हैं। अब ये जंगल के बाहर और नगर के बाहर की बीच वाली जमीन पर झोंपड़ी बना कर रहते हैं। कभी आम, महुआ, गूलर, करौंदा, पियार मेवा और कंद-मूल खा कर मस्त रहने वाले ये वनवासी आज सचमुच न घर के हैं और न घाट के। कभी वनों में रहते हुए इनकी स्त्रियाँ किसी संस्कार के अवसर पर गाया करती थीं–

''आम पुतर हवे, निमिया महतारी
बनवा के कर रक्षपाल ए वनवासी।''

आम पुत्र और नीम महतारी (माता) हैं, इनकी रक्षा करना वनवासियों का धर्म है। अब तो न आम के बौर और न ही महुवे के फूलों की मदमाती सुगन्ध इन्हें आकर्षित करती है; क्योंकि इन सबसे वंचित ये लोग वीरान जीवन के कठिन दिन काट रहे हैं। यहाँ न महुवा है और न आम, न टेसू-पलाश के जंगल। खैर, इनकी बस्ती के बाहर कच्ची सड़क पर पौत्र आकाश रंजन ने मेरे कहने से मोटरसाइकिल रोक दी। उससे उबर कर इनके पास पहुँचा तो कुछ मैली-कुचैली स्त्रियाँ कौतुक और भय से हमें देखने

लगीं। सबसे पहले हमारी बात उनकी एक वृद्धा स्त्री से हुई। मैंने कहा–'हम रामजी के बारे में कुछ पूछे आइल हई।' (मैं रामचन्द्र जी के सम्बन्ध में कुछ पूछने आया हूँ।)

तब तक कुछ अधनंगे बच्चे और एक युवा लड़का, जिसने पूछने पर अपना नाम राजू बतलाया– हमारे आसपास इकट्ठा हो चुके थे। मुझसे कुछ दूर एक झोंपड़ी के बाहर एक साठ-सत्तर वर्ष का बूढ़ा आदमी आँखों पर चश्मा लगाये निस्पृह बैठा था। मैंने उन्हें अपने पास बुलाया और कहा कि आप लोग राजा दशरथ के पुत्र रामचन्द्र जी को जानते हैं।

इन बूढ़े सज्जन का नाम मल्लू है। इन्होंने सम्मति सूचक सिर हिलाया। मैंने इन्हें अपने बाएँ हाथ से पूरब की तरफ दिखाते हुए कहा–"यहाँ चुनार की विजयादशमी की रामलीला होती है। रावण जलाया जाता है। आप लोगों ने यह लीला देखी है?"

मल्लू बोला–"हाँ, हमरे सौ हाथ दूर पर ई लीला होला। हम सब कोई देखले हई। ऊ देखीं अपने पीछे, उहाँ सीताजी बैठेलीं। अशोक बाटिका में।" उसने मुझे मेरी पीठ की ओर दिखाया।

मेरी गाड़ी कुछ आगे बढ़ी। इस संवाद से उन लोगों का कुतूहल और भय समाप्त हो गया। सबसे पहले जिस स्त्री से मैंने प्रश्न किया था वह अब मुस्कुरा रही थी। उसका परिचय मालूम हुआ कि वह राजी की दादी हैं और उसका नाम धनुई है। मैंने अब उसी से पूछा–"तू लोग अपने काम-परोजन (जन्म, ब्याह, मुंडन) आदि में रामजी के गीत गावऽलू की नाहीं। रामजी के बारे में का जानऽलू।"

मेरे पूछने पर वह इधर-उधर देखने लगी, फिर बोली–"रामजी अजुधिया (अयोध्या) से वन में आइल रहलें, सीता जी आउर लछिमन जी के साथ, तब हमनी के पूरबज (पूर्वज) लोग उनकर विवस्था (व्यवस्था) वन में कइले रहलन।" उसकी बात सुनते ही मेरा ध्यान 'रामचरितमानस' की चित्रकूट में भगवान के पहुँचने पर कही जाने वाली चौपाई की ओर गया–

"कोल किरात वेष सब आए। रचे परन तृन सदन सुहाए।।"

और

"यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नव विधि घर आई।।
कंदमूल फर भरि-भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना।।"

मेरा उत्साह बढ़ा उसका उत्तर सुनकर। मैंने कहा–"दादी! सोहर, विवाह कऽ कउनो गीत सुनावऽ जेमे रामजी, सीताजी कऽ बरनन (वर्णन) होवे।"

तब तक अन्य झोंपड़ियों की बूढ़ी और युवा स्त्रियाँ भी जुट गयी थीं। उनमें से एक बूढ़ी महिला जिसका नाम मंजू बुआ है–उसने गीत की पंक्ति सुनाई–

"सोनवा रुपवा कुछ नाहीं मांगिले।
माँगी ले राम अइसन पूत ए गंगा मइया।"

मैं चकित हुआ। इन वनवासियों के यहाँ तो गंगा भी उपस्थित हैं और राम भी। उन्हें राम जैसा पुत्र चाहिए।

मेरे पुनः अनुरोध करने पर अब धनुई दादी ने एक पंक्ति में सीता का वर्णन दिया–

"अंवरा के गछिया अंगनवा देखत सोहावन
पूजन चले ली सीता देई, अंचरा पसारे ली
जुग-जुग बाढ़ो अहिवात!"

सम्पूर्ण वन-क्षेत्र में आँवला, हर्रे, बहेड़े आदि के वृक्ष बहुतायत से होते हैं। ये वृक्ष ओषधियों में उपयोगी हैं। उनसे अपने लिए आशीष माँगने और सौभाग्य की कामना करने की सीता की यह इच्छा–

वृक्षों, वनस्पतियों की महत्ता सिद्ध करती है।

औरतों में गाने की बड़ी ललक होती है–जन्म-विवाह आदि अवसरों पर। मेरे कई बार कहने पर मन्नो बुआ ने टुकड़े-टुकड़े में निम्न गीत सुनाया–जिसे जोड़ने पर इसका यह स्पष्ट स्वरूप हुआ–इस सोहर का–

''चरिही कोन के पोखरवा त राम करे दतुअन हो
ए ललना, बनवा से आवेला नउआ
अजोधिया पता ढारेला हो
ए ललना, सीता के भइले नंदलाल
लोचन पहुँचावेला हो
पहिला संदेशा वसिष्ठ मुनी
दूसर कोसिला रानी
ए ललना तीसर लोचन लखन देवर
राम जनि सूनहु हो।''

क्या अभिव्यक्ति है कि सीता को पुत्र होने की सूचना सबको मिले, मात्र राम को नहीं। मेरे मन में अनेक प्रश्न उठ रहे थे, किन्तु अँधेरा बढ़ने लगा था और अपने-अपने काम से पुरुष वर्ग दो-एक करके लौटने लगे थे। मैंने आखिरी सवाल मन्नो बुआ से किया–"रामजी की भगती करती हो?"

उसने तपाक से उत्तर दिया–"हम लोग का राम जी के भगती करब। भगती तऽ सबरी मइया कइलें रहलीं। जेके राम जी दरसन दिहलें आउर उनकर जूठा बइर (बैर) खइलें रहन।" मेरा मन बुआ की बात पर मुग्ध हो गया। उन लोगों को धन्यवाद देकर लौटने लगा तो मानस के शबरी प्रसंग की निम्न चौपाइयाँ जीवन्त हो उठीं आँखों में–

''सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला।
स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपचाई।।''

और

''कंदमूल फल सुरस अति, दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए, बारंबार बखानि।।''

राम विश्व के पहले ऐसे राजकुमार थे, जो उन्हीं वनवासियों की तरह वस्त्र धारण कर, उनकी जैसी झोंपड़ियों में रहकर और उन्हीं के जैसा भोजन कंद-मूल खाकर, चौदह वर्षों तक उन्हें अन्याय के विरुद्ध लड़ने की दीक्षा देते रहे। अतः स्वाभाविक है कि वनवासी उनसे जुड़े हुए हैं। भले ही सब नगरीय सभ्यता से प्रभावित हो गये हैं; किन्तु अपना अतीत उन्हें भलीभाँति याद है। उन्हें राम के आतिथ्य और राम के उनके प्रति स्नेह का गर्व है।

मैं जहाँ साक्षात्कार लेने मुसहरों की बस्ती में पहुँचा था, उसके ठीक बगल में चुनार की प्रसिद्ध रामलीला की रावण-दहन की लीला होती है। विगत सौ वर्षों से ये वनवासी रावन-दहन की लीला के प्रत्यक्षदर्शी रहे हैं। वैसे चुनार की रामलीला एक सौ पैंसठ साल पुरानी है, लेकिन इस लंका क्षेत्र में बसनेवाले ये बनवासी इसे तब से देखते हैं जबसे उनको वन-क्षेत्र से निष्कासित कर दिया गया था। सम्भवतः यही कारण है कि ये मुसहर और कोल रामकथा से विशेषकर जुड़े हुए हैं। इन्हें भले ही रामकथा का सम्पूर्ण रूप से ज्ञान न हो, लेकिन विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले इनके गीतों में राम जीवन्त रूप में विद्यमान हैं।

यह एक विचारणीय प्रश्न है कि राम ने चौदह वर्षों तक वन में निवास किया था और उनकी संस्कृति से परिचित हुए थे। ऐसी हालत में स्वाभाविक है कि वनवासी भी राम के परिवारजनों माता-पिता सबसे भिज्ञ हो गये हों। वास्तव में देखा जाय तो राम-रावण युद्ध दो संस्कृतियों-सभ्यताओं का युद्ध था। इसे आर्य एवं अनार्य युद्ध के रूप में जाना जाता है। इस युद्ध में आर्य संस्कृति विजयी हुई थी। अर्थात् राम की जीत हुई थी।

ये आदिवासी भले ही न जानते हों आज, किन्तु इनकी पुरानी पीढ़ी अच्छी तरह से आर्य संस्कृति से जुड़ी हुई थी; क्योंकि सभी ऋषियों और मुनियों की तपस्या-स्थली और उनके अनेक गुरुकल इसी वन क्षेत्र में थे। इनकी सेवा में रहनेवाले वनवासी पूर्ण रूप से आर्य संस्कृति से परिचित थे। ऋषि गौतम का गुरुकुल तो इन्हीं वनवासियों के क्षेत्र में था और कई उदाहरण मिलते हैं कि कुछ वनवासी भी तपस्यारत रहकर मुनियों की श्रेणी में आ गये थे।

शबरी, जटायु, सम्पाति आदि ही नहीं अन्य अनेक जातियों की और नामों की बात छोड़ दें तो वानर और रीछ भी ऐसी जातियाँ थीं जो राम-रावण युद्ध में राम की ओर से लड़ी थीं। आप सोचिए यदि वानरों और रीछों का सहयोग न मिलता तब भला राम के लिए यह युद्ध जीतना कितना कठिन हो जाता? राम जिस आर्य संस्कृति का प्रतिनिधित्व कर रहे थे उससे ये जातियाँ भली-भाँति परिचित थीं और वनगमन के काल खण्ड में जब ऋष्यमूक पर्वत के नीचे हनुमान भाव-विह्वल हो कर कहने लगते हैं–

पुनि धीरज धर अस्तुति कीन्हीं।
हृदय हरषि निज नाथ हि चीन्ही।।
मोर न्याउ मैं पूछा भाई।
तुम पूछहु कस नर की नाईं।।

यही नहीं, हनुमान रामकथा के ऐसे वनवासी पात्र हैं जो सम्पूर्ण आर्यावर्त में उनका प्रतिनिधित्व करते हैं। यदि वानर जाति आर्य संस्कृति से परिचित न होती तो हनुमान पावक को साक्षी मानकर राम-सुग्रीव मित्रता का नया अध्याय न रचते–

तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ।।

कहने का तात्पर्य यह कि वनवासी भली-भाँति आर्य संस्कृति से परिचित थे और उन्हें एक नायक की जरूरत थी जो राम के रूप में उन्हें काफी प्रतीक्षा के बाद मिले। यहाँ एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि राम ने वनवासियों को अभयमुक्त करने तथा अत्याचारों से लड़ने के लिए सक्षम बनाने में, अपने जीवन के यौवनकाल को उन्हें संगठित करने में खर्च कर दिये थे।

सीताहरण के पहले तक राम और लक्ष्मण वनवासी पुरुषों को तो सीता उनकी स्त्रियों को अपनी सुरक्षा करने के लिए प्रशिक्षित कर रहे थे। क्योंकि सबसे अधिक वनवासी ही रावण के सहचर राक्षसों से संत्रस्त थे। ऐसे में राम का नायक बन जाना स्वाभाविक था। राम पहले ऐसे राजकुमार थे जो उनके साथ रहकर वन के कष्टों का साक्षात्कार करने में सफल हुए थे। बालि-वध की कथा को दरकिनार कर दिया जाय तो एक भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलता, जिसमें राम के द्वारा कोई वनवासी कभी प्रताड़ित हुआ हो।

राम ने अपने वनवास में न्याय, धर्म, मर्यादा को जिस प्रकार वनवासी संस्कृति से जोड़ने का कार्य किया, उसी के चलते आज भी वन क्षेत्र में उनकी गाथा विद्यमान है और आगे भी वनवासियों के मध्य वह नायक बनकर जीवित रहेंगे। लेकिन हमारा भी कर्तव्य है कि हम वनवासियों को न्यायपूर्वक जीने के साधन उन तक पहुँचाते रहें। वनवासियों के वर्तमान रहने से ही हमारी संस्कृति की संरक्षा सम्भव है। उनको उनके अधिकार देकर हम आर्य संस्कृति की रक्षा कर सकेंगे।

वनवासी रामभक्ति के दो प्रेरक प्रसंग

शेख जैनुल आब्दीन

(रामायण राम पढ़ते हैं, हम अक्षर पर उँगली रखते हैं)

प्रथम–वन में राम–भरत संवाद–

भरत वीर! तू घर के लवट जाऊँ
भूखड़ा के अन्न
पियसवा के पानी
नंगवा के देहू चीर
भरत वीर.....
राम चले वनको
भरत चले घर
अखियाँ भरल
सरजू जी के नीर
भरत वीर.....

मैं चोपन से ट्रेन द्वारा राबर्ट्सगंज जा रहा था। बोगी में जिस बर्थ पर बैठा था, उसके ठीक पीछे वाली बर्थ पर एक बूढ़ी औरत ने कारुणिक स्वर में उपरोक्त गीत गाना शुरू कर दिया था। वह अपने कलेजे से पूरा जोर लगा कर गीत गा रही थी। उसकी आवाज में जो घरघराहट थी–वह बता रही थी–गायिका बूढ़ी और दुर्बल है। ट्रेन अपनी गति से दौड़ रही थी। ट्रेन की गति–रिदम गीत को संगीत के ताल–छन्द में आबद्ध कर राम–भरत–संवाद को बड़ा मार्मिक बना रहा था। मैं भावुक होकर अपनी जगह से उठा और बूढ़ी औरत के पास जा बैठा। मेरा उसके साथ जो संवाद चला, उसका सारांश कुछ इस प्रकार है। उस आदिवासी बूढ़ी महिला को यह भली–भाँति ज्ञात है कि कैकेयी के हठ से 14 वर्ष राम को जब वनवास हुआ तो वह माता सीता–लहुरा भाई लक्ष्मन के साथ विन्ध्याचल मार्ग से ही दक्षिण को गये थे। भरत उन्हें मनाने आये थे। राम ने भरत को राजधर्म का बोध कराकर उनसे अयोध्या लौट जाने का आग्रह किया था। राम–भरत जी को समझाकर आगे बढ़ गये। भरत जी निराश होकर आँखों में सरजू जी का नीर भरकर घर लौट गये। उस बूढ़ी औरत को यह भी विश्वास है, उसकी आस्था के राम इसी मार्ग से दक्षिण गये थे तो इसी मार्ग से अयोध्या लौटेंगे। वह प्यासे होंगे। उन्हें पानी पिलाने के लिए उसने अपने द्वार पर एक कुआँ खुदवा रखा है। वह प्रतिदिन प्रातः, दोपहर व शाम अपने कुएँ की जगत पर बैठकर राम के आगमन की प्रतीक्षा करती रहती है। उसकी आस्था के राम जरूर लौटेंगे। इसी मार्ग से लौटेंगे। वह उन्हें अपने हाथ से कुएँ का पानी काढ़कर पिलायेगी। अपनी साधना और प्रतीक्षा को सफल बनाकर जीवन के आवागमन से मुक्ति पा जायेगी।

रामायण पाठ की बुझौनी–उस दिन वह भगीरथ मुझे खदान वाली झील में स्नान करता हुआ नजर आया। आज महत्वपूर्ण स्नानपर्व मकर संक्रान्ति का दिन था। जब वह नहाकर जल से बाहर निकला तो काँप रहा था। उसकी देह की तरह उसका वस्त्र भी मटमैला था। वह भीगे हुए गमछे को पहनकर खड़ा हुआ और कुछ बुदबुदाने लगा। शायद कोई मंत्र पढ़ रहा हो। उसका चेहरा उस समय किसी धार्मिक पुस्तक की तरह पवित्र लग रहा था। वह काँपता हुआ एक टोकरी के पास गया। चेहरों को सूर्य की ओर उठाकर आँखें मिचमिचाने लगा। कुछ देर तक इसी तरह खड़ा रहा। सूर्य-वन्दना करके वह झुका और काँपते हाथों से टोकरी में से एक गुटका निकाला और पढ़ने बैठ गया। मैं अब उसके काफी समीप आ गया था। वह रामायण का गुटका था। उसने गुटके को खोला और पंक्तियों पर उँगली फेरने लगा। बहुत तेज-तेज से उँगली फेर रहा था। जैसे उसे रामायण कण्ठस्थ हो। जब वह रामायण का पाठ कर चुका तो मैंने बहुत श्रद्धाभाव से उसे प्रणाम किया और पूछा, ''क्या आप पढ़े-लिखे हैं।'' उसने कहा, ''हम पढ़ा नाहीं हैं।'' तो फिर रामायण कैसे पढ़ रहे थे, मैंने बात को आगे बढ़ाया, ''मैं रामायण पढ़ता नहीं हूँ, हम क्या जाने आखर। हम तो भालू, बानर, सूअर, हिरन, चितल, शेर, बाघ, बघुवत, पाथर, कोंदो-सांवा, गईता, भरूहा, झऊवा, वंशी, मादल, करमा, काची, शराब यह सब बचपन से पढ़े हैं। राम पढ़े हैं तो रामायण पढ़ते हैं।'' राम का प्रश्न छिड़ा तो दोनों तरफ से मन निर्मल हो गया। उस खुशी के माहौल में मैंने अपनी जिज्ञासा शान्त करने के लिए पूछा–''कैसे पढ़ते हो, जब पढ़े नहीं हो।''। ''आप बहुत सोझवा है बाबू! आप नहीं समझोगे हमारी बुझौनी।'' उसने निश्छल हँसी हँसते हुए कहा।

''क्या है बुझौनी?'' मैंने पूछा।

''हमने कहा न राम पढ़े हैं। हम अक्षर पर अँगुली रखते हैं। राम पढ़ते हैं, रामायन पढ़ना है। हम पढ़ें या राम पढ़ें। धर्म कर्म कर लिया। मेरी मुक्ति के लिए राम ने रामायण बाँच दिया, हमारा इतने से संतोख है। आगे राम जाने।'' उसका धर्मपरायण दर्शन और धर्म व्याख्यान सुनकर मैं हतप्रभ रह गया।

इस प्रकरण से राम के रमत्व की बात स्पष्ट हो गयी होगी। वह निरा आदिवासी पहाड़ी अरण्यवासी था। श्रीराम सही अर्थों में भक्तों के संग रहते हैं। राम सब कुछ करते हैं, हम तो अहम् और भ्रम जीते हैं। जब इसी अहम् और भ्रम का अन्त हो जाता है तो सारा जगत्, जन-जन, कण-कण राममय हो जाता है।

श्रीराम आस्था और प्रेम के भूखे हैं–''**प्रेम ते प्रकट होइं मैं जाना।**''

न जाने कितने ऐसे लोग हैं जो निरक्षर हैं, परन्तु उन्हें रामायण कंठ्स्थ है–सुनते-सुनते। पहले गाँव-गाँव में शाम-रात रामायण पढ़ी-सुनी जाती थी और तब अन्याय, अत्याचार, उत्पीड़न, असत्य-अधर्म नहीं था, सदाचार लोगों के आचरण में था। वे गलत काम से डरते थे।

तमाम ऐसे गाँव हमने देखे हैं, जहाँ रामायण पढ़ी नहीं, पूजी जाती है। वह साक्षी बनती है। जिस तरह राम की खड़ाऊँ ने चौदह बरस राज्य-संचालन किया उसी तरह अनन्त काल तक राम पूजे जायेंगे आस्था का प्रतीक बनकर जन-जन के हृदय में बस कर।

वनवासी और वनवासी राम

रामनाथ शिवेन्द्र

तमाम विडम्बनाओं के बावजूद हमें राम, कृष्ण और शिव की प्रचलित कथाएँ सदैव प्रभावित करती रही हैं। इन कथाओं के अलावा दुनिया के लोग शायद ही किसी दूसरी कथा को जानते होंगे जो इन कथाओं के मर्म को फलाँग सके। इन कथाओं के अपूर्व होने पर मुझे सन्देह नहीं। राम का वनवासी रूप हमें आज के भौतिकवादी समय में जितना प्रभावित करता है उतना किसी और कथा-पात्र का नहीं। कथा पढ़ते या सुनते ही साँसें फूलने लगती हैं कि कोई ऐसा व्यक्ति हो ही नहीं सकता जो मर्यादा के बन्धन से खुद को जकड़ ले; क्योंकि बन्धन कुदरती नहीं होता है। व्यक्ति सदैव स्वतन्त्र रहने का आकांक्षी होता है। यह बात अलग है कि उसकी स्वतन्त्रताएँ बाधित या छीन ली जायें जैसा कि हुकूमतें हर काल में किया करती हैं मानव सभ्यता के विकास-क्रम में कोई ऐसा काल नहीं, जब मानव-सभ्यता की कुदरती आजादी को तमाम पाबन्दियों में न रखा गया हो, भले ही वह काल दीर्घ न रहा हो, अल्प ही रहा हो। सत्ता तो हर काल में व्यवस्था और शान्ति स्थापनाओं के नाम पर तमाम तरह के रंगीन कानूनों के द्वारा अपने नागरिकों को आच्छादित करती रही है। बहरहाल यह प्रसंग सत्ता कौतुकों के विमर्श की तरफ ले जाता है, जिसे यहाँ प्रस्तुत करना प्रासंगिक नहीं।

समझना होगा कि यह जो राम का मर्यादा वाला रूप है, खुद को नियंत्रित व प्रतिबंधित करने वाला (राम जो राजकुमार थे, उनकी आजादी को भला कौन बाँध सकता था) क्या सरल और तरल है, क्या उसे बचाने में एक मनुष्य के नाते राम की जो स्वतन्त्रताएँ थीं वे छिन नहीं गयीं? या उन्होंने खुद से अपनी स्वतन्त्रताओं का परित्याग नहीं किया? क्या यह अचरज नहीं है कि राम अपनी वैयक्तिक स्वतन्त्रताओं के त्याग के बाद भी पूरी मानवीय गरिमा के साथ सामान्य मनुष्य की तरह कथा-समय के साथ भाग रहे हैं। यह जो राम की सामान्यता है, राजा से परजा बनने की तरफ की छलाँग है, विचारणीय है, जबकि ऐसा होता नहीं। लोग तो खुद को समाज के विशेषाधिकार प्राप्त खानों में स्थापित करने के लिए ही लालायित व उत्सुक रहते हैं, पर राम ऐसा नहीं करते। वे तो राजा से परजा की तरफ छलाँग लगाते हैं, आखिर खुद को नियंत्रित कर सामान्य बने रहने का चयन राम ने क्यों किया? उनका काल था त्रेता वाला, सतयुग के ठीक बाद वाला, कहीं उसका प्रभाव तो राम पर नहीं था? माना जाता है कि सतयुग का काल सम्पूर्ण मानवीय स्वतन्त्रता का समत्व वाला काल था, उसके बाद के काल का नायक भी तो सत्गुण वाला ही होगा, भला वह तामस प्रवृत्ति का कैसे हो सकता है? राम का वनगमन दुनिया के इतिहास में एक असाधारण घटना है, वे वन गमन का चयन करके वनवासी हो जाते हैं; पर सत्ता व्यवस्थापन पर सवाल नहीं उठाते। अपने सामान्य से अधिकारों के लिए भी सवाल नहीं उठाते, कम से कम इतना तो सत्ता-व्यवस्था से पूछ ही सकते थे कि उन्हें वन में क्यों निर्वासित किया जा रहा है या उसके उत्तराधिकार को क्यों छीना जा रहा है, वह

भी बिना कारण बताये।

राम का वनवास या निर्वासन तत्कालीन सत्ता-व्यवस्था पर सवाल की तरह चिपका हुआ है। थोड़ा गम्भीरता से सोचने पर स्पष्ट हो जाता है कि हर काल का सत्ता-प्रबन्धन एक ही तरह से काम करता रहा है, भले ही वह काल राम का ही क्यों न हो। सत्ता-प्रबन्धन से जुड़ी कैकेयी की इच्छा राज्यादेश में तब्दील हो जाती है। किसी व्यक्ति की इच्छा का राज्यादेश में तब्दील होने का यह एक चिंतित करने वाला उदाहरण है। मजा यह कि राम उस आदेश को सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं और वनगमन कर जाते हैं, वे प्रतिकार नहीं करते, उनके सामने मर्यादा का सवाल था। वे किसी भी हाल में मर्यादा नहीं तोड़ सकते थे। मर्यादा और अधिकार पर विमर्श का एक जरूरी आधार राम वनगमन के द्वारा छोड़ जाते हैं। सवाल है मर्यादा और अधिकार के बीच के फर्क का, मर्यादा क्या होती है और कैसे बनती है, यह सारा कुछ वैयक्तिक होता है, व्यक्ति उसका खुद मानक और प्रमाण होता है। मर्यादा निजता के आर्तबोध की उपज होती है, जहाँ चित्त और चेतना एकाकार होकर समूहगत हो जाती है, वहाँ 'निज' जैसा कुछ नहीं होता, जबकि अधिकार तो सत्ता-प्रबन्धन द्वारा प्रदान किया गया महज एक औजार होता है जो सामान्य से विशेष की तरफ ले जा कर वर्गीकृत करता है। आज के उपभोक्तावादी समय में मर्यादा और अधिकार में से किसी एक का चयन करना हो तो अधिकार का पक्ष ही चुना जायेगा, मर्यादा का नहीं, पर राम के लिए संकट है। वे मर्यादा का चयन करते हैं और वनगमन कर जाते हैं। वे प्रतिवाद नहीं करते। वे अपने अधिकारों को मर्यादा से ऊपर नहीं रखते।

तो ये हैं राम, जो स्वेच्छया अपने कुदरती अधिकारों का परित्याग करते हैं और मर्यादा के कठिन और जटिल रास्तों पर निकल पड़ते हैं। वन-गमन के अलावा आप देखें पूरी रामकथा में सीता का अपहरण एक ऐसी दूसरी परिघटना है जो राम के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को खोलने का काम करती है और इस घटना के घटने का कारण होता है-राज्यादेश के अनुपालन के लिए राम का वनगमन। तो यह जो राम का वनगमन है पूरी दुनिया के लिए एक कथानक के रूप में अपूर्व और अद्भुत। ऐसे वनगमन का कथानक दुनिया की किसी सभ्यता में नहीं है, राम चाहते तो अयोध्या छोड़कर किसी दूसरे राज्य में जा कर अपना आश्रय तलाश कर सकते थे। उन्हें उस समय का कोई राज्य राज्याश्रय दे ही देता। पर राम ऐसा नहीं करते। राज्यादेश के अनुपालन में वे सहर्ष वन गमन करते हैं। तो हमें देखना है कि यह जो राम के द्वारा लिया गया वनगमन का निर्णय है, वह क्या रामकथा को आगे छलाँग लगाने भर का निर्णय है या इसके अर्थ कुछ दूसरे हैं, जहाँ तक मुझे पता है राम के वनगमन वाले निर्णय पर गम्भीरता से विचार ही नहीं किया गया है, जबकि पूरी रामकथा में यह जो राम का वनगमन है, अपूर्व और अद्भुत कथानक है। ऐसा कथा-मानव सभ्यता के इतिहास में कहीं नहीं।

किसी राजा का वनगमन का निर्णय सरल नहीं है, आखिर वन ही क्यों? राम तो नागर समाज के थे, पर हमें ध्यान देना है कि राम मर्यादा पुरुष हैं, मर्यादा के बन्धन से बन्धे हुए हैं, वे जानते हैं कि उनके लिए वन ही वह स्थान है जहाँ वे अपने चित्त और चेतना दोनों को नियन्त्रित रख सकते हैं। वन एक ऐसा स्थान है, जहाँ सामाजिक व राजनीतिक प्रबन्धन में कोई घालमेल नहीं है। रिश्तों में चालाकियाँ और कलाबाजियाँ नहीं होती हैं, वन के नागर और अरण्यक का कोई अर्थ नहीं, सो वे वनगमन करते हैं। यह जो राम का वनगमन है-रामकथा के शुभेच्छुओं के लिए चिन्तन-मनन के कई दरवाजे खोल सकता है, अगर वे चाहें तब। वे मानवीय भेदों के रहस्यों तक भी इस कथा के माध्यम से पहुँच सकते हैं, समझ सकते हैं कि आदमी और आदमी में भेद नहीं होता। हर आदमी प्रकृति का बेहतर उत्पाद होता है।

राम–वनगमन न करते तो सीता का अपहरण नहीं होता, बालि नहीं मारा जाता, उन्हें हनुमान जैसा भक्त भी नहीं मिलता और न ही लंका विजय होती, तो ये सारे घटनाक्रम राज प्रबन्धन से जुड़े हुए हैं, पर जो शबरी वाला प्रसंग है वह तो दूसरी कथा के रूप में रामकथा में महत्वपूर्ण स्थान पाता है जो राम के वनवासी होने के रूप को उद्घाटित करता है। वनवासी राम और अयोध्या के राम में कोई तुलना नहीं; क्योंकि अयोध्या के राम के लिए तो कुछ करना ही नहीं था। एक राजा की तरह वे उत्तराधिकार का सुख भोग सकते थे; जबकि वनवासी होकर राम पूरी तरह आरण्यक सभ्यता के नागरिक बन जाते हैं। आरण्यक यानि आदिवासी सभ्यता। वन की सभ्यता, जो कुदरती होती है, कुदरती जमीन पर उगती है, जहाँ स्वामित्व और नियंत्रण के रोग नहीं होते, पूरी तरह समत्व पर आधारित एक ऐसी सभ्यता जिसका जीवन ही वन हो, वन की तरह हरा–भरा, उन्मुक्त जीवन के रागों को गुनगुनाता।

आदिवासियों के बीच राम का जो रूप है, वह अयोध्या वाला नहीं है, वे राजा नहीं हैं, वनवासी हैं, सबके प्रिय हैं, चित्त और चेतना के साधक हैं, प्रकृति की तरह प्रकृतिमय हैं, आदिवासियों की लोक कथाओ में सीता के अपहरण का प्रसंग बहुत ही अश्रुपूर्ण है, उनकी लोक कथाओं से यह मालूम नहीं होता कि रावण विद्वान् था, केवल इतना पता चलता है कि रावण अत्याचारी था और उसने छल करके सीता का अपहरण किया था। यह भी मिलता है कि रावण लंका का राजा था। धांगरों और खरवार जनजातियों में एक गीत गाया जाता है जिसके बीच में आता है–

''सीता मइया के भगाय ले गयल बभना हो
उहै बभना जवन देलेस भगाय
बिभीसन के रजवा (राज्य) से हो''

सीता के अपहरण का कथानक आदिवासियों के गीतों में कई तरह से ढला हुआ है। यहाँ पर ध्यान देने लायक है कि उनके गीतों में रावण को राजा के रूप में नहीं देखा जाता है, रावण उनके गीतों में उपस्थित है–एक ब्राह्मण के रूप में। इससे यह पता चलता है कि आदिवासियों में सत्ताप्रबन्धन या राजा के बारे में कोई विमर्श नहीं था, यहाँ विमर्श है जाति पर। ऐसा लगता है कि राम के काल में भी जाति के सवाल मौजूद रहे हैं, भले ही वे प्रमुख न रहे हों, पर रहे हैं। इस गीत से दूसरी सूचना मिलती है कि वनवासी राम आदिवासियों में वन–प्रसंगों के कारण अधिक लोकप्रिय हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि वे अयोध्या के राम के रूप में कम लोकप्रिय हैं, आदिवासियों के विस्थापन की कहानियाँ किसे नहीं मालूम, राम भी अयोध्या से विस्थापित किये गये थे। सम्भव है नागर सभ्यता के पोषकों ने उस समय भी तमाम अबोध व कमजोर लोगों को विस्थापित किया हो और जंगल में विस्थापितों का ही वर्ग समूह निवास करता रहा हो। वे भला राम को क्यों नहीं मान–सम्मान देंगे? हम जानते हैं कि आधुनिक सभ्यता ने कारखाना बनाने के नाम पर मुख्यतः आदिवासियों, वनवासियों को ही विस्थापित किया है। उनसे संस्कारों ने वन की अन्तरंगता को छीन लिया है, विस्थापन की इस स्थिति पर एक आदिवासी गीत देखें जो राम को समर्पित हैं....

''जनमवा काहे देला राम!
भात भात लरिका नरियाँय,
बनिया माँगे दाम....
जनमवा काहे देला राम!
करजा काढ़ि खेतवा रोपली
उहो गयल झुराय,

बरधा बेचि के दरोगवा के देहली
बनवा से देलेस निकाल....
जनमवा काहे देला राम!''

राम को समर्पित इस गीत से स्पष्ट है कि आदिवासी समूहों में राम उनके यहाँ भी उनके अन्य राजा लाखन, मद्यन्त, दूल्हा देव, बड़ा भासुरिया, भैरव, माता आदि देवी–देवताओं की तरह पूज्य हैं, पूज्य तो उनके गीतों व पारम्परिक पूजाओं में हनुमान, काली माई आदि भी हैं, सामान्यतया आज के आदिवासी पहले नागर और आरण्यक सभ्यता में विखंडित आदिवासी नहीं हैं। वे अब मुख्य धारा की तरफ लौटते हुए लोगों में हैं, वे बदल रहे हैं, पूजा और आराधना के क्षेत्रों में तो उनमें उल्लेखनीय बदलाव हुए हैं। हाँ वे आर्थिक रूप से भी बदलना चाह रहे हैं, पर यह जो स्वामित्व और पूँजी पर टिकी सत्ता है उनके बदलावों के प्रति उदार नहीं है।

जहाँ तक आदिवासी समाज में राम की उपस्थिति का सवाल है, वह एक अलग तरह का सवाल है, राम तो सभी के हैं, राम के लिए नागर और आरण्यक का कोई मतलब नहीं। पूरी रामकथा चाहे वह जिस किसी के द्वारा लिखी गयी हो, उसमें वर्णित राम को किसी जाति विशेष के खानों में नहीं बाँटा जा सकता। राम की असल कथा तो वनगमन से प्रारम्भ होती है। वे वनगमन के बाद ही शबरी से मिल पाते हैं। वनगमन के बाद ही उन्हें पता चलता है–बालि के बारे में तो यह जो बालि और सुग्रीव हैं, यह जो शबरी है, सभी आदिवासी हैं। रामकथा प्रसंगों में निषाद, राक्षस, शबर, वानर, नाग आदि जैसी जनजाति का सन्दर्भ आता है। जाहिर है राम का सम्पूर्ण मानवीय कर्म वन में ही फलित होता है। अयोध्या का लंका तक का फैलाव उस समय कोई साधारण कार्य–भार नहीं था। पहले तो अयोध्या केवल अयोध्या थी। उसका फैलाव लंका तक नहीं था। इस सन्दर्भ में यहाँ डॉ. लोहिया को उल्लिखित करना आवश्यक है...ये वही लोहिया जी हैं जो रामायण मेले का आयोजन अयोध्या में करवाते रहे हैं...पहली बार किसी राजनेता ने रामकथा को राजनीति की कथा की तरह देखा था और कहा था कि–

''धर्म दूरगामी राजनीति है और राजनीति अल्पकालीन धर्म।''

राम का जीवन बिना हड़पे (राज्य) हुए ही फैलने की कहानी है। उनका निर्वासन देश को एक शक्ति केन्द्र के अन्दर बाँधने का एक मौका था। इसके पहले प्रभुत्व के दो प्रतिस्पर्धा केन्द्र थे। अयोध्या और लंका। अपने प्रवास में राम अयोध्या से दूर लंका की ओर गये। रास्ते में अनेक राज्य और राजधानियाँ थीं, जो एक या दूसरे केन्द्र की मातहत थीं। मर्यादा पुरुष राम की नीति निपुणता की सबसे अच्छी अभिव्यक्ति तब हुई जब राम ने रावण के राज्यों में एक बड़े राज्य को जीता। उसका राजा बालि था, बालि से उसके भाई सुग्रीव और सेनापति हनुमान दोनों अप्रसन्न थे। वे रावण के राज्य से निकल कर राम की मित्रता और सेवा में आना चाहते थे। भारत माता धरती माता...डॉ. राममनोहर लोहिया, पृ. 69

तो यह है राम का सार्वभौम मानवीय व्यक्तित्व। वे अयोध्या का फैलाव लंका तक कर जाते हैं, पर बिना किसी साम्राज्यवादी क्रूरता से। राम सुग्रीव की व्यथा का साक्षी बनते हैं और उन्हें ही बालि के जीते हुए राज्य का राजा बना देते हैं। ये वही सुग्रीव हैं जो लंका–विजय–अभियान में पूरी निष्ठा के साथ राम का सहयोग करते हैं और हनुमान, जो कभी सुग्रीव के सेनापति हुआ करते थे, वे तो राम के अपूर्व भक्त हो ही जाते हैं। तो यह हैं राम, अपनत्व के प्रतीक, जो भी उनके करीब आया, उनका हो गया। यहाँ विभीषण का उल्लेख करना भी आवश्यक है। राम पूरी आत्मीयता और सहृदयता से विभीषण का साथ देते हैं और लंका–विजय के बाद उन्हें लंका का राजा बना देते हैं।

पूरे निर्वासन के दौरान हुए संघर्षों से पायी हुई कोई भी चीज राम अयोध्या नहीं ले आते। सब वहीं छोड़ देते हैं। चाहे लंका का सन्दर्भ हो, चाहे बालि के राज्य का, दोनों राज्यों को राम स्वतंत्र छोड़ देते हैं, उन्हें पराधीन नहीं बनाते। कुल मिलाकर अयोध्या में नहीं मिलाते, जैसा कि साम्राज्यवादी ताकतें किया करती हैं। राम ऐसा नहीं करते। जाहिर होता है कि राम पराधीनता के दर्द को जानते थे, सो वे लंका और सुग्रीव के राज्य को स्वतंत्र ही रहने देते हैं, उन्हें अयोध्या में विलीन नहीं कराते, तो यह है राम के कृत्रित्व की मानवीय समीपता, राम दूसरे राजाओं से जिस मैत्रीपूर्ण रिश्ते का निर्वहन करते हैं और जिस तौर तरीके से करते हैं उसे कम से कम उन देशों को नकल करने की आवश्यकता है जो राज्यों को हड़पना अपना कर्तव्य मानते व जानते हैं पर क्या ऐसा हो सकेगा? राम के वनगमन के कथानक की स्वीकार्यता का सवाल पूरी सभ्यता के स्वीकार्यता से जुड़ा हुआ है। शबरी के जूठे बेर खाने वाला कथानक तो अपने आप में एक अपूर्व उदाहरण है, जिससे सम्भावना बनती है कि राम और शबरी से निश्चित रूप से कोई विशेष लगाव या बन्धन रहा होगा नहीं तो सामान्यतया कोई किसी का जूठा नहीं खाता। बन्धन और लगाव के सन्दर्भ में यह प्रसंग विचारणीय है। रामकथा या केवल राम को आदिवासियों की स्वीकार्यता से परखने का प्रयास करना मानवीयता के दायरों की सीमाओं का अतिक्रमण करना होगा। हम जानते हैं कि वाल्मीकि रामायण के सृजन की कथा ही क्रौंच-वध से शुरू होती है। क्रौंच का वध करने वाला एक निषाद था। राम का वनगमन और वन-प्रवास का कथन तक ही आदिवासियों के लिए प्रिय बन जाता है। आदिवासियों के लिए भी राम की कथा एक पवित्र कथा है। उनके यहाँ दूसरी 'करमा' आदि कथाओं की तरह, फिर भी यह सच है कि आदिवासी समूहों में वनवासी राम ही अधिक प्रिय हैं; अयोध्या के राम नहीं।

जनजातियों की लोक-कथाओं में रामकथा

ओमप्रकाश त्रिपाठी

कबीर, रहीम, रसखान आदि ने अपने दोहों एवं रचनाओं से भारत की आत्मा व श्रृंगार के रूप में वहाँ के मूल मानव के हृदय पर जो कवच पहनाया है वह औरों के लिए भी प्रेरणा का स्रोत है। इन जातियों की स्वच्छन्दता एवं लोकगाथा विस्तार में रहीम के दोहे–**''कह रहीम कैसे निभै बेर केर के संग, वे डोलत रस आपने उनके काटत अंग।''** ने आधुनिकता को दूर रखने के संकेत दिये हैं।

''चरन कमल रज कहुं सबु कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई।।''

पुनः कहा–

''छुअत शिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई।।
तरनि मुनि घरिनी होइ जाई। बस परइ मोरि नाव उड़ाई।।''

यह भावना उसके मन में अपने छोटे से उद्यम की विनष्टता का महाकाल समझ में आ रही थी। दुख के बाद भी भगवान की सहायता चाहकर भी न करना उसके अपनी जीवन चर्चा के लिए एक चुनौती बना जो जनजातियों की वीरता और पौरुषेय का सफल उदाहरण है।

केवट ने पुनः कहा–

''एहिं प्रतिपालउँ सबु परिवारु। नहिं जानउँ कछु अउर कबारू।।
जौ प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू।।''

ये बातें केवट की अपने उद्योग के प्रति लगाव के क्रम में बार-बार पद्म चरण को प्रच्छालन के लिए ही विवश किया जाना प्रकट करती हैं। यहाँ तक कि केवट भगवान श्री राम को विश्वास दिलाता है कि पद कमल धोने की कोई मजदूरी उसे नहीं चाहिए किन्तु सब के बाद भी वह पद प्रच्छालन के बिना किसी भी दशा में नाव पर बैठा नहीं सकता।

केवट के ऐसे वचन सुनकर करुणानिधान श्रीराम माता जानकी की ओर देखकर मुस्कुराने लगते हैं और अपने पद-प्रच्छालन की अनुमति केवट को देते हैं। केवट ने अत्यधिक प्रसन्नता की अनुभूति कर सुमन वृष्टि किए। केवट प्रसन्नता के साथ चरण पखार कर उस चरणामृत को पाकर अत्यधिक पुलकित हुआ। उद्यमशील केवट अपनी मजदूरी भगवान श्रीराम के चरणामृत को ही मानता हुआ कहता है–**''नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिक दावा।। बहुत काम मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह बिधि बनि भसि भूरी।।''**

भगवान् स्वयं संकुचित हैं कि गरीब को कुछ नहीं दिया। माता जानकी के इशारे पर मणियों से पुष्ट मुँदरी को केवट को देना चाहे किन्तु लोक रहित केवट अपनी गरीबी में भी इस कीमती मुँदरी को लेने से इन्कार कर दिया, यह भारतीय चरित्र की अप्रतिम मिसाल है। यहाँ का अत्यन्त गरीब व्यक्ति भी अपने हृदय में आदर प्यार एवं सेवाभाव समेटे हुए है। केवट, श्रीराम को विश्वास दिलाता है कि जब वे

अपने लक्ष्य को पूर्ण कर प्रत्यावर्तित होंगे तो जो भी प्रसाद स्वरूप उसे प्राप्त होगा वद सादर स्वीकार करेगा। इस प्रकार यहाँ की जनजातियाँ अपने को विशाल आदर, प्रेम, सेवाभाव, अतिथि सत्कार की भावना से परिपूर्ण सिद्ध करने में दक्ष हैं।

एक ओर भगवान के चरणामृत की आकांक्षा, दूसरी ओर भगवान को मानव रूप में घोर संकट ग्रस्तता दोनों एक दूसरे के प्रतिपक्षी होते हुए अपने-अपने दायित्वों एवं उद्यमों का आदर्श यहाँ के चरित्र का प्रतिबिम्ब है। एक ओर करुणा के सागर भगवान श्रीराम दूसरी ओर अंकिचन केवट, दोनों के आदर्श चरित्र भारत की आत्मा स्वरूप हैं।

यद्यपि केवट को एक अच्छा माध्यम अपने समस्त जीवन यापन का प्राप्त हो गया था फिर भी उसे अपने दैनिक चर्चा में ही कन्द मूल फल पर आश्रित रहकर अभावग्रस्त जीवनयापन में ही अनोखा सुख प्राप्त हो रहा था। जनजातियों में नर-नारियाँ आपस में मिलकर अनेक उत्सवों में सहभागिता दिखाते हुए अनेकता में एकता का प्रदर्शन करते हैं। इनके गीतों में नाचना, ठुमकना, सहयोग व हाथ में हाथ मिलाकर गीत गाना, देवी-देवताओं के पूजन-अर्चन में संगठित होकर मादल की थाप पर पैर में कड़े डालकर, इष्ट देव को प्रसन्न करने का पूरा प्रयास सराहनीय रहा है। नारियों में भी सेवाभाव व अतिथि देवो भव की भावना इनके हृदय में सदैव विराजमान रहती है।

अरण्यकाण्ड में गोस्वामी तुलसीदास ने भील की शबरी की भक्ति भावना एवं श्यामल और गौर वर्ण की सुन्दर जोड़ी राम और लक्ष्मण को अपनी झोंपडी में पाकर अतीव हर्षातिरेक का अनुभव करती है और दोनों भाइयों के चरणों में लिपट कर मुँह से कुछ बोलती नहीं बल्कि बार-बार उनके कमलवत् चरमों में अपना शीश झुकाती हुई जल लेकर बड़े आदर के साथ आकर चरणों को धोकर अपनी समझ से सबसे सुन्दर आसन पर बैठाती है। इस भारतीय संस्कृति का अप्रतिम उदाहरण जनजातियों, काननवासियों में भी है जिसे गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में वर्णित करते हुए लिखा है-

''स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई।।
प्रेम गमन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा।।
सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे।।''

आतिथ्य में भारत का सामान्य जन भी अपने पास उपस्थित सर्वश्रेष्ठ खाद्य वस्तु को भोग हेतु अर्पण करता है वहीं गिरिवासियों की सम्पत्ति तो वन के कन्दमूल फल, सरस रसीले फल, जड़ी-बूटियाँ ही हैं वही सम्पत्ति शबरी ने प्रभु श्रीराम को बड़े प्रेम से अर्पित करते हुए अपने को अधम जाति की होते हुए भी मीठे बेर व कन्दमूल फल अर्पित कर गौरवान्वित एवं सफल मानती है। प्रभु ने भी अपने ऐसे भक्त के वशीभूत होकर बड़े प्रेम से उस दिव्य फल को बार-बार बखान करके खाया। वह संयोग दीनों के हृदय में ही विराजमान रहता है। बड़े-बड़े धनवान के पास यदि फटे-चीथड़े में भगवान भी पहुँच जायँ तो वे उन्हें दुतकार कर बाहर निकाल देते हैं जो इस बात का प्रमाण है कि ईश्वर का वास कंगालों में उसकी कंगाली हाल में रहता है वहीं दूसरी ओर कंगालों, लोक मंगल, लोक जीवन तथा प्रकृति के संसर्ग में रहने वाले गरीबों में ही वास्तविक श्रद्धा व भक्ति विराजमान रहती है।

पौराणिक कथाओं तथा सतयुग, द्वापर, त्रेता युगों में दैवी शक्तियों की महत्ता तथा भारतीय पुराणों, वेदों में ऐसे तथ्य दिये हुए हैं जो भारतीय दर्शन एवं जीवन मूल्यों के विकास में मानवीय मूल्यों को स्थापित करने में ठोस कारक के रूप में प्रयोग किये जा सकते हैं। भारतीय संस्कृति, चरित्र और संस्कार ने विश्व के क्षितिज पर जो आदर्श स्थापित किया है वह युग-युगान्तर तक प्रेरणा का स्रोत रहेगा।

आदिकाल का मानव प्रकृति-प्रेमी, अपनी ही कलाओं के प्रदर्शन में दक्ष, प्रकृति के कण-कण में ईश्वरानुभूति का भाव समेटे हुए बड़ा साहसी और पुरुषार्थी रहा है। सिन्धुघाटी-सभ्यता एवं प्राचीन युग, पाषाण युग, अपनी एक अलग कहानी कहते हैं। यहाँ का धार्मिक विश्वास सतयुग, द्वापरयुग, त्रेतायुग और वर्तमान में कलियुग की विभिन्न परिवर्तनशील परिस्थितियों में रहा है। ऐसा माना जाता है कि भारत-धरा पर दो प्रकार के जन्म हुए हैं—एक तो निमित्त जन्म, दूसरा नित्य जन्म। जन्म संकट और विपत्ति से जीव-जन्तु एवं मानवों की रक्षा के लिए हुए हैं। जैसे—द्वापर में श्रीकृष्ण का जन्म कंसादि के नाश के लिए, त्रेता में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का जन्म लंकाधिपति रावणादि के विनाशार्थ, नृसिंह का अवतार हिरण्यकश्यप जैसे कुमार्गी के नाश के लिए हुआ था; किन्तु नित्य जन्म में महात्मा, ऋषि-मुनि, विद्वान, भारतीय संस्कृति व धर्म के रक्षक व पोषक मनीषीगण आते हैं, जिनका जन्म पतनोन्मुख समाज व राष्ट्र को विकासोन्मुख बनाने हेतु हुआ है।

हमारे वेद, पुराण, शास्त्र, सभी मानव-धर्म एवं मानवीय मूल्यों की अभिरक्षा हेतु अनेक सूत्रों एवं नीति श्लोकों के कोष हैं, जो समयानुसार अपने अमृतमय कोष के बिन्दुओं को छिटकाकर उष्णता को कम करते हुए उनमें जीवन का संचार करते हैं। उड़ीसा, उत्तराखण्ड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, बिहार एवं उत्तर प्रदेश आदि राज्यों में आदिवासियों का मूल जमावड़ा है जिसमें निवास करने वाली जनजातियों—चेरो, बइगा, गोंड, पठारी, अगरिया, पनिका, भुइया, धाँगर, धरकार, खरवार, कोल, कोरवा, मझवार, घसिया आदि अपनी विशिष्ट जीवनचर्या, लोककला, संस्कृति एवं परम्पराओं द्वारा न केवल भारत, वरन विश्व के क्षितिज पर अपनी पहचान वीरता, अदम्य साहस, दैवी शक्तियों के आराधक, भौतिकवादी दृष्टिकोण से अछूते, मानवीय मूल्यों की मूल तथा भारतीय परम्पराओं के रक्षक के रूप में ऐतिहासिक पटल पर चिह्नित हैं। इन वीर जातियों के पर्व एवं लोकनृत्य—करमा, कोलदहकी, धरकहरी, मुसहरी, डोमकच, नटुआ, अगरही, खटिकही, झूमर आदि हैं। इन लोकनृत्यों में प्रकृति-प्रेम, मानवदशा, स्वभाव, विभिन्नताएँ, शौर्य, पुरुषार्थ, सहयोग, दया, करुणा, मैत्री जैसे गुणों की खान हैं जो भारत के गौरव व उसकी शान के पर्याय हैं। ये जातियाँ बीहड़ों, घनघोर वनारण्यों, गुफाओं, नदी घाटी के अंचलों में निवास करने वाली तथा प्रकृति की ऐसी उपजों एवं उत्पादों पर आश्रित हैं जिनके लिए न तो वैज्ञानिक खोजों पर अवलम्बित होने की आवश्यकता है और न भौतिक सुख-समृद्धि के ठिकानों पर रास्ता देखना है। हाँ, इतना अवश्य है कि इनकी स्वतन्त्रता पर भौतिकता ने अपनी नाशक लता का प्रक्षेपण कर इनके मूल को ही समाप्त करने के लिए पुआल डालने का कुचक्र रचा है।

जनजातियों के प्रमुख नृत्य एवं प्रभावकारी प्रदर्शन का माध्यम 'करमा' अपने आप में प्रकृति के प्रति अनन्य स्नेह, आदर एवं आपसी सद्भाव तथा प्रसन्न मुद्रा का असरदार कैटलिस्ट है। जिस देश भारत ने प्रत्येक जीव में ईश्वर की विद्यमानता का दर्शन किया है, वहाँ आज के आधुनिक उद्योगों तथा विकास की धाराओं ने इसके मूल में लिपटी हुई सुगन्ध की माटी को धोकर उसकी जड़ को निर्बल और तत्वहीन करने का एक नाटक रच दिया है, जो देश के अस्तित्व पर मँडराता हुआ महाकाल है।

ये जातियाँ अपने छोटे-छोटे उद्यमों पर विश्वास रखने वाली होती थीं। इनमें लालच नहीं थी। ये दूरदर्शी और ईश्वर की शक्ति में दृढ़ विश्वास करनेवाले होते थे। इनमें शिव व राम में अटूट श्रद्धा, लगन व विश्वास था। जब भगवान श्रीराम का वनगमन हुआ, अयोध्यावासियों ने बड़े दुःख के साथ अपने राजाराम को विदा किया। उस समय रास्ते में कण-कण, तृण-तृण, पशु-पक्षी सभी शोकाकुल थे। मार्ग में सुरसरि को पार करना, राजमहल के सुख का उपभोग करने वाले श्रीराम, लखन व सीता के लिए अत्यन्त कठिन था। ऐसी विपत्ति की घड़ी में नाव का ही एक मात्र सहारा दिखाई दे रहा था। श्रीराम ने

केवट से नाव की याचना की। केवट दुःख के बाद भी श्रीराम के चमत्कारी गुणों को प्रकट करने के लिए विवश था। उसने कहा–

करमा नृत्य में रामकथा का चित्रांकन देखें–

तो रावण अति गरबी हो, आवत है कि नाता फँसिहै...
ई का करिहँइ अगिन बाण, का करिहँइ सोना बाण, कि नाता फँसिहै...
जब राम सीता वन जात रहनऽ त...
ई मारइ के धनुष बाण, भउरइ के अगिन बाण
मोहइ के तीन बसुरी हो.....
ऐ लिजा लिजा से तोर पनकी पुरान हो
ए कड़िया बसइ रे.....
ए कड़िया कऽ राजा रानी चललइँ पराय हो....
कड़िया कऽ राजा रानी चललइँ पराय हो...

× × ×

आगे आगे राजा रानी पीछे से कहाँर
भागल जात रहँइ....
घटि जब गइलइँ तब्बइ रानी क ऊँचारा छुट गइल।
आदमी हँसइ लगवऽ.....
तब रानी पुछलिन कि का देखि क हँसलऽ हहाय हो
त ऊ कहलस - सबकर विपति देखि हँसली हहाय हो।।

करमा का एक अन्य गीत देखें–

केकर भइया गइया रे चरावइँ मधुरि बनवाँ हो
अच्छा कइरान मधुरी बनवाँ हो
केन के हँथवा में का के गुलेल हो,
मधुरी बान खेलले हो......
हँथवा माटी क गुलेल मधुरि बान खेललें हो
रामलेले तीर धनुष, लक्ष्मिन लेले गोटी क गुलेल हो
मधुर बान खेललें हो...
केन मारि देहलें लवरे तितिरिया हो, मधुर बान खेललें हो
चलऽ खेलि आवइँ राजा खेलवाड़े मधुर बान खेललें हो
चलऽ चलीं मरद मरद खेलवाड़े मधुर बान खेललें हो।
अच्छा राम मारि देहलें लवरी तितिरिया,
लक्ष्मिन मारि देहलें खेलवार हो
मधुर बान खेललें हो........।।

लोककथा में राम

एक समय अयोध्या में एक राजा रहत रहनऽ। एक दिन ऊ शिकार बदे गइलँ, वापस न अइलें। राजा क एक बेटा रहल। जब ऊ बड़ा भइल त ओकर माँ पढ़इ बदे नाम लिखउलस। राजकुमार क साथी ओके

गारी गुम्फर देवें और ताना बोलइ लागनऽ कि तूँ बाप-विहीन दोगली सन्तान हउअऽ।

राजकुमार के काफी दुख भइल। घरे लौट के ऊ बिस्तर पर सोइ गयल। ओकर माई जब खाना काये बदे कहलस त ऊ इनकार कइ देहलस। ओकर माँ पुछलस-तू बीमार हउअऽ कि थकल हउअऽ।

राजकुमार कहलस-"न हम थकल हई, न हम बीमार हई। हम दुखी ए बदे हई कि लइकन हमें पिता-विहीन दोगली सन्तान कहत हयँऽ। एसे हे माता तू बतावऽ कि हमार पिता कहाँ बायँ।

माँ कहलेसि-"केवल एतनऽ जानइ बदे तूँ चारपाई पर पड़ल हउऊऽ। हम तोरा के सब कुछ बता देब, पहिले तू भोजन करऽ।"

लड़िका कहलस-"नाहीं, जब तक तूँ न बतइबू तब तक हम न खाब न पियब।"

माँ कहलेसि-"ठीक बा सुनऽ-जब तूँ छ महीना क रहलऽ त तोहार पिता जंगल में शिकार पर गइलँऽ जहवाँ कोई ओनकर हत्या कइ दिहलस। बाद में ओनकर हड्डी मिलल जउने के जलाइ देहल गइल।"

एतना सुनतइ लड़िका क्रोध से आग बबूला होइ गयल और कहलस-"हम न खाबू न पीयब पहले अपने पिता के शत्रु के खोजब।"

तीर-धनुष लेकर ऊ घर बार छोड़िके निकल गयल। वह जंगल-जंगल, नदी-नदी, घाटी, गाँव-पुरवा, मोहल्ला सब जगह ढूँढ़लस लेकिन कउनव फल नाहीं निकलल। पाँच-छः महीना बाद वह दूसरे राजा के रजधानी में गयल। ऊ भूख-प्यास से तड़पत रहल। ई देखि क कि लड़का आपन हत्या करत हौ ओकरे सामने भगवान राम परगट भइलें। पुछलन-"बेटा तूँ कहबाँ जात हवऽ।"

बच्चा पुछलस-"आप के हवऽ और हमार का मदद कइ सकलऽ।"

भगवान कहलन-"हम तोहार सब मदद अवश्य करब।" तब लड़का सब कहानी बतउलस।

भगवान कहलन-"बेटा! तू अभी छोटा हउवऽ, अभी बदला नाहीं ले सकतऽ।" बच्चा गम्भीरता से उत्तर दिहलस-"हम अपने पिता के हत्यारे के बिना मारे घर न लौटब।"

भगवान सलाह देलन-"ठीक बा। अपने धनुष से तीर छोड़ के हमें देखावऽ कि तूँ अच्छी लड़ाई लड़ि सकलऽ।"

बच्चा आपन तीर छोड़लस जउन आकाश में गयल। कउनउ दुश्मन नाहीं मिललनऽ तब तीर भगवान के पैर पर आकर गिरल। तब भगवान ओसे कहलन-"तूँ जरूर विजयी होबऽ काहे से कि तूँ अच्छा निशानेबाज बायऽ। किन्तु सुनऽ-तोहार शत्रु जंगल हौ जवन तोहरे पिता क हत्या कइलस। सामने देखऽ जंगल देखात बा। ई उहइ जंगल ह जउन तोहरे पिता क हत्या कइलस। जब ऊ जंगल में गयल तब एक पेड़ के टक्कर मरलस ऊ तुरन्त गिर गयलऽ। भगवान ओके पेड़ के पास ले गइनऽ और जंगल देखउलन। यह खयर के पेंड़ क ठूँठा रहल। भगवान कहलन-'इहइ तोहरे पिता के जान लेलहस। तूँ एकै काट सकलऽ, एकर छाल निकाल सकल, तूँ एकरे में से खून निकाल सकलऽ। एके घर ले जा और कउनो मिट्टी के बर्तन में एके उबाल डालऽ। जब गाढ़ा होइ जाय तब जमीन पर गिराय दऽ। तब ई मक्खन के जइसन होइ जाई और कड़ा होइ जाई, एकर नाम कत्था होई। लोग एके पान-सुपारी के साथे खइहैं। ई भगवान के भी चढ़ी। तोहार नात, हित, रिश्तेदार एही से आपन रोजी रोटी कमइहइँ। तोहार पिता योद्धा रहनऽ। अपने तीर-धनुष क उपयोग चतुराई से करइ जानत रहनऽ। तोहार पिता तीर से पेड़ पर निशाना सधलन जउने से खून बहल। येह प्रकार से कत्था अपने रूप से तोहरे पिता क ऋणी हौ। एही खयर और कत्था के कारण तोहार जाति खरवार या खैरवार नाम से जानल जाई।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोककथाओं में रामकथा शीर्ष पर है और जनजातियाँ, राम (भगवान),

शिव, देवी, बड़ादेव की आराधना, पूजन–अर्चन में विशेष विश्वास रखती रही हैं। आज भी भौतिकवादी युग एवं अर्थयुग में भी उन्हें प्रकृति की अनेक चीजों में दैवीशक्ति का एहसास है और वे देवी–देवताओं को प्रसन्न करने के लिए अनेक जादू, टोने, टोटका आदि का प्रयोग करते हैं। उनके नाचने, ठुमकने और उनके हाव–भाव में प्राचीन संस्कृति का दर्शन निश्चित रूप से भारत की प्राचीन सभ्यता व संस्कृति की कहानी बताकर इसके अतीत को गौरवशाली एवं भारत की आत्मा तथा दरिद्र में भी नारायण का निवास होने के तथ्य को उजागर करती है। जनजातियाँ इष्ट की कृपा से अनेक असम्भव को भी सम्भव कर डालती रही हैं। असम्भव को सम्भव करने के पीछे श्रीराम–भक्ति ही है।

जनजातियाँ प्राय: नदी–नालों के किनारे दुर्गम स्थलों में अपनी कला, अपने तेवर व अपने ढंग से पुरुषार्थ के सहारे वनौषधियों और जंगलों में पाई जाने वाली कन्दमूल, जड़ी–बूटियों के ऊपर निर्भर रहकर प्रकृति के सीधे सम्पर्क में रहती रही हैं। उन्हें टोना, टोटका तथा पत्थरों, पेड़ों, नदी–नालों के प्रति देवतुल्य भाव था जिसके कारण उसी शक्ति से शक्तिमान होकर वे प्रतिकूल परिस्थितियों का भी सामना करने में हिचकिचाहट का लेशमात्र भी अनुभव नहीं करती थीं। प्राय: यह देखा गया है कि वे अपने गीतों, वाद्ययंत्रों से झंकृत आमोद–प्रमोद द्वारा अपना जीवन–यापन प्रसन्नतापूर्ण वातावरण में बिताती थीं। उनके पास पाषाणों के द्वारा निर्मित हथियार होते थे जिसका प्रयोग अपने रक्षार्थ या अपने पेट भरने के क्रम में करते थे। सम्भवत: उनकी ऐसी जीवन–शैली व उनकी शुचितापूर्ण जिन्दगी का प्रभाव ईश्वर को भी लुभानेवाला होता था क्योंकि उनके अन्दर किसी भी प्रकार का कलुष नहीं था वरन् वे जीवन का खेल बड़ी प्रसन्नता के वातावरण में ही खेलते थे। त्रेतायुग में जब मर्यादा पुरुषोत्तम राम को वनवास का आदेश अपनी प्रिय माता द्वारा प्राप्त हुआ तो दु:खी होने के स्थान पर उन्हें प्रसन्नता का एहसास हुआ जिसका प्रमाण रामचरितमानस की चौपाई–"पिता दीन्ह मोहि कानन राजू" ही है जो वनवासियों के प्रति उनके लगाव एवं आत्मीयता का द्योतक है।

अनेक ऐसे स्थल उनके वनवासकाल में उनके सहभागी बने जो जनजातियों के प्रति उनके लगाव तथा उन जातियों के मन में श्रीराम के आशीष की घनी छाया का एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है। वनवास काल में परमभागवत निषादराज गुह की कथा त्रेतायुग में भगवान श्रीराम के प्रति अनन्य श्रद्धा तथा आत्मीयता का दिग्दर्शन कराती है।

गुह दो शब्दों गुह्य और हनन के प्रथमाक्षरों का संयुक्त रूप है। गुह्य का अर्थ है–छिपाने योग्य और छिपाने वाला अर्थात् अन्धकार और अज्ञान तथा हनन का अर्थ है–नाश करना। इस प्रकार गुह का अर्थ है–अज्ञानान्धकार का नाश करने वाला। निषाद, नीषाद शब्द का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ है–नीर अर्थात् जल पर आसन देकर बैठाने वाला।

लाखों वर्ष पूर्व त्रेतायुग में निषादराज गुह का जन्म हुआ था किन्तु उनके नाम और तद्नुरूप उनके आदर्श चरित्र के विमल प्रकाश ने उनके यश: शरीर के ऊपर गुहपतम काल की अन्धता का आवरण नहीं पड़ने दिया। जिस प्रकार भगवान विष्णु जी के कला अवतारी, अपने भक्तों को भुक्ति, युक्ति और मुक्ति प्रदान करने वाले श्रीराम अखण्ड, अनंत, अप्रमेय, अनादि और अविनाशी हैं, उसी प्रकार उनके बाल सखा परम भागवत गुह का उज्ज्वल यश सत् अक्षुण्ण रहकर संसार के सामने सच्चे मित्रे के गुणों का आदर्श बनाकर आधुनिक सखा मित्रों का मार्गदर्शन करता रहेगा।

कथा के क्रम में आगे देखा–

गुह के पिता ने राजा दशरथ के आखेट में परिच्छद का कार्य दिया था जिससे महाराज दशरथ का उनसे निकट का परिचय था। जब श्रीराम किशोर हुए और वन में शिकार करने लगे तब राजा दशरथ के

आदेश से सम वय गुह भी श्रीराम के सखाओं में सम्मिलित हुए। गुह अपनी सेवा, तत्परता, सहनशीलता, सादगी, त्याग और शौर्य आदि गुणों के कारण श्रीराम के बहुत प्रिय हो गये जो उनके अन्य सखाओं को अच्छा न लगा।

मित्रों का यह मनोभाव श्रीराम से छिपा न रह सका। अत: भगवान राम ने गुह पर अपनी विशेष कृपादृष्टि का औचित्य स्पष्ट करने के लिए एक दिन सभी साथियों को बुलाकर कहा–"आज आखेट का कार्य केवल मैं ही करूँगा, यदि किसी दूसरे ने यह कार्य किया तो उसे प्राणदण्ड दिया जाएगा।" उसके बाद आखेट की लीला प्रारम्भ की। संयोग से उस दिन एक भयंकर सिंह निकलकर आक्रमण के लिए दहाड़ते हुए श्रीराम की ओर बढ़ने लगा। सब सखा यह देख रहे हैं कि हाथों में धनुषबाण होने के बाद भी श्रीराम तीर नहीं चला रहे हैं। अनिष्ट की आशंका के भय से किसी मित्र के पैर राम की सहायता के लिए आगे नहीं बढ़े। सिंह श्रीराम पर झपटने ही वाला था कि गुह से यह खूँखार दृश्य न देखा गया। सभी साथियों की आँखें भय के कारण बन्द हो गयीं किन्तु गुह ने बिना देर किये एक तीक्ष्ण बाण धनुष पर चढ़ाकर सिंह के हृदय में बेध दिया। सिंह भयंकर गर्जना करते हुए उछलकर श्रीराम जी के समक्ष ही मर गया। साथियों ने आँख खोलकर देखा कि गुह के धनुष की डोरी चढ़ी हुई है और सिंह मरा पड़ा है। श्रीरामजी कभी सिंह की ओर तो कभी गुह को देख रहे हैं। साथी एक साछ चिल्लाये–"राजा के आदेश का ऐसा उल्लंघन? गुह द्वारा ऐसी ढिठाई? गुह को प्राणदण्ड दिया जाना चाहिए।" श्रीराम ने गुह से पूछा, "गुह, आखेट से पहले मेरे आदेश को सुना था और आदेश की अवहेलना का परिणाम जानकर भी तुमने ऐसा कार्य क्यों किया?"

गुह ने सिर झुकाकर कहा, "प्रभु! मैंने आपके आदेश को सुना था और वह याद भी है। हमें आपके साथ रहने का अवसर और सौभाग्य इसलिए मिला है कि हम सब प्रकार से अपने प्राण प्रिय श्रीराम की रक्षा करें। मेरे प्राणधन की रक्षा हो गयी। ऐसा करने में आपके आदेश का पालन न हो सका तो परिणाम स्वरूप मुझे प्राणदण्ड दिया जाना चाहिए। मुझे इसकी चिन्ता और भय नहीं है, बल्कि अपने प्राणों का मूल्य देकर अपने हृदयधन के प्राणों की रक्षा करने में समर्थ होने के कारण धन्य मानकर परम प्रसन्नता की अनुभूति कर रहा हूँ।" गुह के ऐसे उत्तर से अन्य साथियों के सिर लज्जा से झुक गये। श्रीराम ने गुह को अभयदान देकर हृदय से लगा लिया और आत्मा के समान उन्हें प्रिय सखा कहा। अयोध्या लौटने पर श्रीराम ने यह समाचार महाराज दशरथ को सुनाया और गुह को शृंगवेरपुर का राजा बनाने का अनुरोध किया। राजा दशरथ ने शृंगवेरपुर नगर बसाकर गुह को वहाँ का राजा बनाकर सप्रेम विदा किया।

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम व्यक्ति के जाति–पाँति, कुल, धर्म आदि की दिव्यता को न देखकर उसके दिव्य मानवीय गुणों और प्रेम के नाते को ही महत्व देते थे कि एक सच्चा मनुष्य होने के नाते जिसे जैसा होना या करना चाहिए वह वैसा है, या करता है या नहीं करता। इसीलिए तो सोने की लंका का स्वामी महाज्ञानी होते हुए भी पराई स्त्री पर कुदृष्टि रखने वाले आतताई रावण का वध उन्होंने सामने से युद्ध करके किया, वहीं जटायु की भाँति शवभोजन करने वाले नीच पक्षी का अन्तिम संस्कार अपने पिता के समान किया। ऊँचे कुल में जन्म लेने से कोई ऊँचा नहीं हो सकता बल्कि उसके काम ऊँचे होने चाहिए। विचार, कर्म, भावना और व्यवहार महान होने पर ही व्यक्ति महान बनता है।

श्रीराम के तीन मित्रों गुह, सुग्रीव, और विभीषण में से गुह के नि:स्वार्थ प्रेम समर्पण और मित्र के प्रति दैवीगुणों के प्रति आदरबुद्धि तथा आत्मत्याग की आन्तरिक भावना के कारण ही पहला स्थान उसे ही श्रीराम ने दिया था। सुग्रीव और विभीषण की मित्रता में कुछ स्वार्थ था किन्तु निषादराज का प्रेम अहैतुक था। सच्ची मित्रता का गुण इसी आदर्श आत्मीयता भाव से निकल कर आता है।

वन जाते समय श्रीराम के शृंगवेरपुर पहुँचने पर गुह ने आगवानी कर उनसे निवेदन किया, "प्रभो! आपकी सम्पूर्ण पृथ्वी हो, आप हम सबके राजा हैं, हम सब आपके दास हैं। आप हमारे राज्य सहित हम सब पर विधिपूर्वक शासन करिए।" गुह की आत्मीयता, समर्पण और प्रेमपूर्ण वचन सुनकर श्रीराम ने विह्वल होकर उसे अपने हृदय से लगा लिया। जब भरत पिता की मृत्यु और भाइयों के वियोग से व्याकुल होकर पूरी अयोध्या की प्रजा लेकर वन जा रहे थे, गुह को सन्देह हुआ कि कहीं अज्ञानता में भरत वन में जाकर श्रीराम व लक्ष्मण को मार न डालें तथा भरत को राजनीति का ज्ञान नहीं है और श्रीराम व लक्ष्मण से युद्ध कर अपने प्राण गँवा सकते हैं। ऐसी स्थिति का विचार कर गुह ने सेना को तैयार कर नावों को डुबा कर भरत व सेना को रोकने हेतु अपनी सेना को नगाड़े के साथ युद्ध के लिए ललकारा। एक वृद्ध के सुझाव पर गुह ने भरत के शील स्वभाव को परखने के उद्देश्य से लड़ाई से पूर्व उनसे मिलने का मन बनाया। जाते ही मुनि वसिष्ठ जी को दण्डवत प्रणाम कर अपना परिचय दिया। मुनि ने आशीर्वाद देकर भरत से राम सखा के रूप में निषादराज का परिचय दिया। भरत जी रथ छोड़कर प्रेमपूर्वक आगे बढ़े। निषादराज गुह ने अपना गाँव, जाति और नाम बता कर माथा टेककर प्रणाम किया। भरत जी ने अपनी छाती से उन्हें ऐसे चिपका लिया मानों स्वयं लक्ष्मण जी से भेंट हो गयी हो। इस प्रकार शृंगवेरपुर के अधिनायक निषादराज गुह के सद्गुणों, विनम्रता, विवेक, सावधानी, त्वरित निर्णय क्षमता आदि की छटा उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में पग-पग दिखाई देती है।

कहते हैं कि जब ब्रह्मा जी ने सृष्टि की रचना की तब क्रियाशील जीवों की तीन ही श्रेणियाँ देवता, दैत्य और मनुष्य हुए। मनुष्यों में उत्पन्न किसी व्यक्ति की सामाजिक पहचान उनका जन्मना जाति से और उसकी विशिष्ट पहचान उसके गुण कर्मणा वर्ण से होती है। मत्स्यवध पर आश्रित निम्नकुल में जन्म लेकर भी निषाद राज गुह ने अपने गुण कर्मणा वर्ण से इस सीमा तक श्रेष्ठता प्राप्त की। राम सखा के रूप में उनका नाम सदा के लिए अमर हो गया।

इसी प्रकार अनेक जनजातियों व निम्न जातियों के साथ राम, लक्ष्मण का जो स्नेह, लगाव, दृष्टिकोण देखने को मिलता है वह एक मानव का मानव के लिए प्यार व मित्रता का प्रगाढ़ सम्बन्ध परिलक्षित होता है। केवट के प्रति श्रीराम का भाव और दोनों के मध्य चतुराई और जीवन के सम्बन्ध तथा भीलनी शबरी का आतिथ्य तथा भगवान का अपने भक्त के प्रति करुणा, दया, ममता का अगाध भण्डार आदि बातें इस बात की गवाह हैं कि वनवासियों, जनजातियों के लिए श्रीराम और उनकी लोक करुणा व गाथा उनके जीवन की संजीवनी है और जड़ चेतना में सर्वत्र श्रीराम की विद्यमानता उनके मंगलकारी भविष्य की धरोहर हैं। मानव तन द्वारा मानव के लिए जो मानक निर्धारित दिखते हैं, सभी श्रीराम जी के प्रति जनजातियों तथा आदिवासियों के हृदय देश में प्रसुप्त अवस्था में विद्यमान हैं।

राम-सीता छत्तीसगढ़ के मंगल और आनन्द की अनुभूति से जुड़े हैं। वहाँ का आदिवासी इस श्रीराम नाम से ऊर्जा प्राप्त कर जीवन्तता अर्जित करता रहा है। वहाँ की लोकोक्तियों, पहेलियों, लोककथाओं और लोकगाथाओं में मानवीय रूप अवतीर्ण हुए हैं अतः जन-जन के सुख-दुख के ये साथी हैं, लोक इनसे कभी विलग नहीं हो सकता और वहाँ की परम्परा में भी सदैव जीवन्त रहेंगे। जनजातियों की दृष्टि में श्रीराम ही उनके प्रत्येक समस्याओं के समाधान की दिव्य ओषधि है।

आदिवासियों के रोम-रोम में राम का निवास होता था। आमोद-प्रमोद की बेला में भी वे गीतों के द्वारा भी राम-सीता-लक्ष्मण का स्मरण करते हुए सुखानुभूति प्राप्त करते थे। एक गीत देखें-

"हरे राम कऽ भजनियाँ सबइ कोइ भजि लेना
प्रेम से सबइ कोई भजीला होऽ......2"

इसी को बार–बार सस्वर गाते नाचते हैं।

''आलर बाँस कटाइ दा हो, आलर बेनिया बिनाइ दऽ,स
आलर बेनिया बयार नाहीं लागइ हो, लागइ हो वन कऽ बयरिया''

यह कोलदहिया तीन पदों की होती है।

''प्रेम कऽ भूखल अइनऽ भगवान शेबरी के घरवाँ,
कुश क चटाई हो, केशिया से झड़लस रहिया हो।
प्रेम कऽ भूखल अइनऽ.........''

ये पद जनजातियों के हृदय स्थल में राम, लखन, सीता के प्रति अनन्य प्रेम के द्योतक हैं।

''राम लखन दुनौ भइया हो, खोजइ वनवा में सीता मइया हो
पूछैं चिड़िया चुनमुन और बिरीछन से हलिया हो
राम लखन दुनौ भइया हो........''

पाण्डुलिपियों में बने रामकथा के प्रसंग चित्र

उदयशंकर दुबे

रामकथा के उद्भव के साथ ही उसके चित्रांकन का श्रीगणेश हुआ। संभवतः प्रारम्भ में लोक शैली में रामकथा उकेरी गयी; क्योंकि आज भी हमारे ग्राम्य-अंचलों में लड़कियाँ दीवाल, कपड़े और कागज पर रामकथा विषयक चित्र उरेहती हैं। मधुबनी में विवाह के अवसर पर वधू के लिए पहनने वाली साड़ी पर रामकथा के धनुषभंग और राम-सीता के विवाह का चित्रांकन किया जाता है। इसे कोहबर की साड़ी कहते हैं। अवध और भोजपुर क्षेत्र में प्रचलित एक लोकगीत में सीता के निर्वासन का कारण उनके द्वारा रावण के चित्र का उरेहना बताया गया है। प्राचीन मन्दिरों के शिलाखण्डों पर रामकथा के कुछ प्रसंग उत्कीर्ण हुए मिलते हैं। इनमें मध्य प्रदेश के नचना (सतना) तथा उत्तर प्रदेश के ललितपुर जिले में स्थित देवगढ़ के मन्दिरों में लगे प्रस्तरखण्डों पर रामकथा के कुछ प्रसंग उत्कीर्ण हैं। (द्रष्टव्यः पुरातत्त्वविद् प्रो. कृष्णदत्त वाजपेयी का दिनांक 22 अक्टूबर 1987 ई. का पत्र)। ये चित्र-फलक गुप्तकाल के माने गये हैं। शिलापट्टों, ईंटों, काष्ठ एवं वस्त्रों पर रामकथा के प्रसंगों का चित्रांकन प्रचलित रहा; किन्तु कालचक्र के प्रभाव से आज ऐसी प्राचीन सामग्री बहुत कम प्राप्त होती है।

महाकवि भवभूति द्वारा सातवीं शताब्दी में रचित 'उत्तर रामचरित' ग्रन्थ का प्रारम्भ ही चित्रदर्शन से होता है। लक्ष्मण, राम और सीता को चित्राकार द्वारा अभिलिखित रामचरित को दिखाने के लिए आलेख्य वीथिका में लिख जाते हैं। चित्र-दर्शन से ही सीता को वन-विहार तथा भागीरथी-दर्शन का दोहक उत्पन्न होता है। कवि भवभूति ने सीता की अग्निपरीक्षा तक की कथा के बने चित्रों का वर्णन किया है, इससे ज्ञात होता है कि भवभूति के समय में वीथिका में रामकथा के विविध प्रसंगों के भित्तिचित्र बने थे।

कागज के आविष्कार हो जाने पर कवि-पंडितों ने सभी विषयों के ग्रन्थों को कागज पर लिखना प्रारम्भ किया। इसी के साथ रामकथा के 'वाल्मीकि रामायण' तथा 'अध्यात्म रामायण' की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। सर्व प्रथम मुगल सम्राट् अकबर ने वाल्मीकि रामायण का फारसी अनुवाद कराकर उसे अपने शाही चित्रकारों से चित्रांकित कराया। इसे हम रामायण की प्रथम सचित्र पाण्डुलिपि कह सकते हैं जिसमें रामकथा के प्रसंगानुसार चित्र उरेहे गये हैं। यह प्रति पाँच वर्ष में (सन् 1574-1579 ई.) तैयार हुई थी। कविवर रहीम ने इसी के आधार पर वाल्मीकि रामायण की एक प्रति अपने पढ़ने के लिए तैयार कराई थी जो 'फ्रीयर आई गेलरी'-वाशिंगटन में सुरक्षित है। इस पाण्डुलिपि के अधिकांश पृष्ठों पर रामकथा-लेखन के साथ भावानुरूप चित्र बने हैं। इस प्रति की माइक्रोफिल्म भारतीय मनीषी सूत्रम्-दारागंज, प्रयाग में आरक्षित है। बादशाह जहाँगीर के शासनकाल में पानीपत मसीही ने वाल्मीकि रामायण का फारसी अनुवाद किया। यह 'मसीही रामायण' के नाम से जानी जाती है। इसकी एक सचित्र प्रति पाण्डुलिपि पुस्तकालय-इलाहाबाद में वर्तमान है। पंडित सुमेरचन्द द्वारा फारसी में सन् 1715 ई. में अनूदित पाण्डुलिपि राज लाइब्रेरी-रामपुर में है। वाल्मीकि रामायण की इस प्रति में

बहुत से नयनाभिराम चित्र बने हैं। मुगलकालीन फारसी किताबों के अनुकरण पर यह प्रति उच्चकोटि की रंगीन सजावट से भरी हुई है। अभी हाल में इसका तीन भागों में प्रकाशन हुआ है।[1]

अकबर के ही शासनकाल में गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' की रचना की। भाषा में रचित होने के कारण जनसाधारण ने मानस को बहुत अधिक पसंद किया साथ ही चित्रकारों ने रामचरितमानस की कथा को चित्रांकित करना आरम्भ किया। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य देश के विभिन्न अंचलों के चितेरों ने अपनी-अपनी शैली में रामचरित मानस कथा-प्रसंगों के भावानुरूप चित्रांकित करने का दुष्कर कार्य किया। यही कारण है कि विभिन्न संग्रहालयों, ग्रन्थागारों और व्यक्तिगत संग्रहों में रामचरितमानस की सचित्र पूर्ण-अपूर्ण पाण्डुलिपियाँ देखने को मिल जाती हैं। यहाँ पर हम रामचरितमानस की कुछ विशिष्ट पाण्डुलिपियों की चर्चा करना उचित समझते हैं।

आशुतोष भारतीय कला संग्रहालय, कलकत्ता विश्वविद्यालय में सुरक्षित रामचरितमानस की सचित्र पाण्डुलिपि : यह प्रति सन् 1766-1775 ई. के मध्य बंगाल के महिषादल परगना के ग्राम कमलपुर में श्रीमती रानी जानकी देवी के पठनार्थ तैयार की गयी थी। रामचरितमानस की सचित्र पाण्डुलिपियों के इतिहास में यह अपने ढंग की बेजोड़ प्रति है। ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय में महिषादल एक प्रतिष्ठित रियासत थी। रानी जानकी श्री आनन्दलाल उपाध्याय की विधवा थीं। अभिलेखों से ज्ञात होता है कि रानी जानकी ने सन् 1765 ई. से लेकर सन् 1804 ई. तक कुशलतापूर्वक शासन किया। उनके आराध्य मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम थे। कला और साहित्य के प्रति उनकी विशेष अभिरुचि थी। इसका प्रमाण है रामचरितमानस की सचित्र प्रति।

इस प्रति के लिपिकार पंडित ईक्षाराम मिश्र थे। उन्होंने कमलपुर ग्राम में रहकर रानी के पढ़ने के लिए मानस की प्रतिलिपि की थी। लंकाकांड की पुष्पिका में इसका उल्लेख हुआ है। यह प्रति मिल के बने कागज पर चमकदार काली स्याही से लिखी हुई है। विराम चिह्नों और पुष्पिका के लिए लाल स्याही भी प्रयुक्त है। प्रति में कुल 686 पृष्ठ हैं जिसमें 153 पृष्ठों पर रामकथा के भावानुरूप रंगीन चित्र बने हैं, प्रत्येक पृष्ठ कलात्मक रंगीन बार्डर से युक्त है। प्रति में बने रामकथा के चित्रों की शैली को लेकर विद्वानों में मतैक्य का अभाव है। श्री डी.पी. घोष के कथनानुसार मिदनापुर के ही किसी चित्रकार ने इनका निर्माण किया होगा। किन्हीं-किन्हीं चित्रों पर उत्कल कला का भी प्रभाव देखने को मिलता है। चित्रों में लाल, पीला, नीला-श्वेत व हरा रंग का प्रयोग हुआ है। प्रत्येक काण्ड के कथाक्रम में रामकथा के भावानुरूप चित्र बने हैं। कुछ पृष्ठों पर लेखन और चित्र एक साथ बने हैं। कला की दृष्टि से यह प्रति अपने ढंग की निराली प्राचीन प्रति है।[2]

काशिराज ईश्वरी नारायण सिंह द्वारा तैयार कराई गयी रामचरितमानस की सचित्र प्रति : रामचरित्मानस की यह सचित्र पूर्ण पाण्डुलिपि विद्यामन्दिर संग्रहालय, रामनगर में सुरक्षित है। मानस की ज्ञात सचित्र पाण्डुलिपियों में यह सबसे कीमती प्रति है। इस प्रति के कुछ चित्र सर्वप्रथम डॉ. श्यामसुन्दर द्वारा सम्पादित और सन् 1903 ई. में इंडियन प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित रामचरितमानस में प्रकाशित हुए थे। यह संस्करण अब दुर्लभ हो गया है। इस प्रति के पत्र अलग-अलग हैं। पूरी प्रति में कुल 535 चित्र बने हैं। यह प्रति पाँच वर्ष में तैयार हुई थी। इस प्रति के लेखन और चित्रांकन में कुल 1,60,000 (एक लाख साठ हजार रुपये) व्यय हुए थे। इसे काशी के कुशल चित्रकारों ने सजाया-संवारा था।[3] रामचरितमानस की यह पाण्डुलिपि संवत् 1889 वि. (सन् 1832 ई.) में तैयार हो गयी थी। इस प्रति के चित्रों पर राजपूत, मुगल और कम्पनी शैली का प्रभाव पड़ा है। इस प्रति का लेखन और चित्र नयनाभिराम है।

राजा पटनीमल के लिए तैयार की गयी रामचरितमानस की पाण्डुलिपि[4] : भारत कला मर्मज्ञ और 'भारत कला भवन' के संस्थापक रायकृष्ण दास के पूर्वज राजा पटनीमल ने सन् 1835

और सन् 1840 ई. के मध्य स्वपठनार्थ रामचरितमानस की सचित्र पाण्डुलिपि तैयार करायी थी। यह वह समय था, जब काशी में सुलेखक हाथ से मानस की प्रतियाँ तैयार कर बड़े-बड़े रईसों को भेंट कर पर्याप्त धनराशि प्राप्त करते थे तथा लीथो प्रेस से मानस की सचित्र पाण्डुलिपियाँ निरन्तर प्रकाशित हो रही थीं। राजा पटनीमल के लिये तैयार की गयी पाण्डुलिपि के मात्र बालकांड के 154 पत्रों (फोलियो) पर बने चित्र भारतकला भवन-वाराणसी में सुरक्षित हैं। शेष काण्डों के पत्रों के विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती। स्वयं रायकृष्ण दास ने मानस की चर्चा के दौरान बताया था कि उन्हें इस प्रति के 154 चित्र ही प्राप्त हो सके थे। उस समय राय साहब, श्री सुधाकर पाण्डेय द्वारा सम्पादित 'मानस अनुशीलन' की भूमिका लिखने में संलग्न थे। राजा पटनीमल द्वारा तैयार कराई गयी मानस की पाण्डुलिपि (अपूर्ण) के सभी चित्र अलग-अलग हैं। प्रति काली स्याही से बड़े-बड़े अक्षरों में लिखी हुई है। विराम चिह्नों के लिए लाल मसि का भी प्रयोग है। चित्र काशी के चित्रकारों द्वारा बनाये गये हैं। इन चित्रों में वह आकर्षण नहीं है जो काशिराज की पाण्डुलिपि में है।

पाण्डुलिपि पुस्तकालय, इलाहाबाद (उ.प्र.) में सुरक्षित मानस की प्रति : संवत् 1851 वि. (सन् 1794 ई.) में तैयार की गयी रामचरितमानस की यह प्रति अपूर्ण है। प्रारम्भ के बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड अनुपलब्ध हैं। शेष पाँच काण्ड पूर्ण हैं। इन पाँचों काण्डों में कथा प्रसंगानुसार भावानुरूप चार सौ चित्र बने हैं। सभी चित्र अवधी शैली के हैं। यह पाण्डुलिपि हाथ के बने देशी कागज पर काली स्याही से कैथी लिपि में लिखी हुई है। विराम चिह्नों, छन्द अलगाव तथा चित्र बनाने हेतु भाव-निर्देश के लिये लाल स्याही प्रयुक्त है। पाण्डुलिपि का आकार 11 इंच लम्बाई और 9½ इंच चौड़ाई है। इस प्रति को मौजा साहपुर के मालिक लाला जेठमल (आत्मज लाला हेमराज) ने अपने पढ़ने के लिए लिखवाया था। उत्तरकाण्ड की पुष्पिका से यह ज्ञात होत है। (उत्तरकाण्ड, पत्र संख्या-71)। इस प्रति में बालकाण्ड से लेकर उत्तरकाण्ड तक कुल 772 पत्र (1544 पृष्ठ) होने थे; किन्तु वर्तमान में केवल 315 पत्र (630 पृष्ठ) शेष बचे हैं। पाण्डुलिपि के लिपिकर्ता राम सहाय नामक कोई सज्जन थे।

इस पाण्डुलिपि में क्षेपक कथाओं की बाहुल्यता है। इसमें लेखन कार्य के बाद चित्रांकन हुआ है। रामचरितमानस की यह पहली प्रति है जिसमें चित्र बनाने के लिए पृष्ठों पर स्थान रिक्त रखे गये हैं और लिपिकार के कथा-लेखन के साथ रिक्त स्थान के ऊपर भावानुरूप चित्र बनाने का निर्देश दिया है। उदाहरण के लिये अरण्यकांड की प्रारम्भिक चार पंक्तियों को लिखने के उपरान्त लिपिकर्ता चित्र बनाने का भाव गद्य में लिखा है–

''पुरजन भरत प्रीति मैं गाई। मति अनुरूप अनूप सोहाई।।
अब प्रभु चरित सुनहु अति पावनि। करत चरित सुर नर मुनि भावनि।।
एक बार चुनि कुसुम सोहाए। जिन कर भूषन राम बनाए।।
सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर।।''

''राम जी जानकी को कुसुमी सारी पहिराए, फटिक सिला पर बैठे हैं सो बनेगा।'' इस वाक्य के नीचे चित्रकार ने निर्देशित भाव के अनुरूप चित्र बनाया है।

इसी प्रकार लंकाकांड अन्तर्गत लक्ष्मण-शक्ति का प्रसंग द्रष्टव्य है–

''इहां राम लछुमनहि निहारी। बोले वचन मनुज अनुहारी।।
उठहु लखन भएल भीनुसारा। होत प्रात तन छुटै तुम्हारा।।
अर्ध रात्रि गै कपि नहि आए। राम उठाए अनुज उर लाए।।''

''आधा रात्रि गत हुआ, हनुमान जी नहीं आए, राम जी लछुमन जी को उठाए कै हृदय मो गाए के

रोदन करत हैं सो बनेगा।"

पाँचों कांडों में जहाँ-जहाँ चित्र बनाने की आवश्यकता थी, वहाँ-वहाँ स्थान रिक्त छोड़ने के साथ प्रसंगानुसार गद्य में भावों को लिख दिया गया है। यह इस पाण्डुलिपि की प्रमुख विशेषता है। सभी चित्र अवधी लोक शैली के हैं। चित्रों में विविध रंगों का प्रयोग हुआ है। पाण्डुलिपि में उरेहे गये चित्र छोटे आकार के हैं; किन्तु भाषाभिव्यक्ति में सक्षम हैं। प्रति में चित्रकार का नामोल्लेख नहीं है। अवधी शैली में चित्र रामचरितमानस की ज्ञात यह पाण्डुलिपि की पहली प्रति है।

बिहार में तैयार की गयी रामचरितमानस की कुछ सचित्र पाण्डुलिपियाँ : अवध क्षेत्र की ही भाँति बिहार के भोजपुर क्षेत्र में भी रामचरितमानस की सचित्र पाण्डुलिपियाँ तैयार की गयी थीं। यहाँ पर हम बिहार से ज्ञात मानस की सचित्र पाण्डुलिपियों का विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं–

1. संवत् 1878 वि. (सन् 1821 ई.) की प्रति : रामचरितमानस की चित्रमय यह प्रति हाथ के बने देशी कागज पर काली स्याही से लिखी गयी है। कथाओं को अलग करने के लिए लाल स्याही का उपयोग हुआ है। यह प्रति खंडित अवस्था में है। अरण्यकाण्ड, किष्किंधाकाण्ड, सुंदरकाण्ड और उत्तरकाण्ड के कुल मिलाकर मात्र 67 पत्र (74 पृष्ठ) ही प्राप्त हैं। यह पाण्डुलिपि छपरा जिले में स्थित रतनपुरा गाँव में लिपिबद्ध हुई थी। इसमें बने सभी चित्र भोजपुरी शैली के हैं, जिनमें भोजपुर में प्रचलित वेशभूषा, रीति-रिवाज का पूरा प्रभाव है। रामकथा के अन्य कथा-प्रसंगों के चित्रण के साथ चित्रकार ने प्रकृति का बड़ा मनोहारी चित्रण किया है। किष्किंधाकाण्ड के वर्षा ऋतु प्रसंग को चित्रकार ने बड़ी कुशलतापूर्वक दर्शाया है। नाले का जल सिमट-सिमट कर तालाब को भर रहा है, तालाब के भर जाने पर उसका जल नदी की ओर जा रहा है और नदी का जल समुद्र में समाहित हो रहा है। तालाब के जल में रंग-बिरंगी मछलियाँ तैर रही हैं। किनारे पर हरे-भरे वृक्ष हैं जिन पर पक्षी विहार कर रहे हैं। साधारण देशी रंगों के सहारे कलाकार ने चित्रों को सँजोया है।

2. संवत् 1815 वि. (सन् 1858 ई.) की चित्रित पाण्डुलिपि : यह प्रति संवत् 1915 वि. में भोजपुर के समीप स्थित मौजा बसाव कला में तैयार की गयी थी। यह भोजपुरी शैली में चित्रांकित है। इस प्रति के उपलब्ध पाँच काण्डों में उनतालीस चित्र बने हैं। किसी-किसी पृष्ठ पर प्रतिलिपिकर्ता ने मानस के मूल पाठ के साथ स्वामी रामचरण दास की मानस की टीका के महत्वपूर्ण अंश को भी लिख दिया है। इसके लिपिकार जगन्नाथ नाम के कोई सज्जन थे जिन्होंने परगना भोजपुर, मौजा-बसाव कला, जिला-शाहाबाद के श्री रामानुज दास के पठनार्थ पाण्डुलिपि तैयार की थी। (अरण्यकाण्ड की पुष्पिका, पत्र संख्या-68)।

इसमें बने रामकथा के प्रसंगानुसार चित्र शुद्ध भोजपुरी शैली के हैं। राम-अत्रि ऋषि मिलन दिखाते हुए चित्रकार ने एक चित्र में अत्रि ऋषि के सामने राम-लक्ष्मण को खड़े दिखाया है। अत्रि मुनि की वेश-भूषा से ही उनकी पहचान हो जाती है। वे उपदेश देने की मुद्रा में हैं। इसी पृष्ठ पर दायीं ओर अनसूया-जानकी मिलन का प्रसंग है। जानकी की वेशभूषा राजकुमारियों जैसी है। सभी चित्रों में देशी रंगों का प्रयोग हुआ है।[5]

3. संवत् 1906 वि. (सन् 1849 ई.) की रामचरितमानस की सचित्र पाण्डुलिपि[6] : रामचरितमानस की यह सचित्र हस्तलिखित प्रति शारदा पुस्तकालय लालगंज, वैशाली (बिहार) में सुरक्षित है। यह प्रति बसहा (बाँस) कागज पर काली स्याही से लिखी हुई है। प्रति का आकार 14 इंच लम्बाई और 10 इंच चौड़ाई है। प्रति में कुल 772 पृष्ठ हैं जिनमें 153 बहुरंगी चित्र बने हैं। चित्रों में परम्परागत देशी रंगों का प्रयोग हुआ है। इसमें बने चित्रों पर कम्पनी शैली का पूर्ण प्रभाव है। कुछ

चित्रों में आधुनिक वेशभूषा देखने को मिलती है। उदाहरणार्थ–राजा दशरथ राजकुमारों सहित प्राचीन भारतीय वेशभूषा में दिखाये गये हैं तो अयोध्या की कचहरी के चित्रांकन में चित्रकार ने आधुनिकता को अपनाया है। न्यायालय में दर्शाये गये व्यक्तियों के शिर टोप है जो आंग्ल प्रभाव है। इस प्रति का वजन चार किलो है।

इसी प्रकार देश के विभिन्न अंचलों–यथा राजपूताना, गुजरात, बुन्देलखण्ड, छत्तीसगढ़, उत्तराखंड आदि क्षेत्रों में रामकथा विषयक ग्रन्थों के चित्रांकन का कार्य हुआ है। यही कारण है कि राजस्थानी, कांगड़ा, बसोइली, मधुबनी, बुन्देली शैली में रामकथा ग्रन्थों के चित्र मिलते हैं। ओरछा (बुन्देलखण्ड) की रानी गणेश डे द्वारा संवत् 1631 वि. रामनवमी के शुभ पर्व पर रामराजा की मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा के साथ रामकथा के चित्रांकन का कार्य शुरू हुआ। राम राजा के मन्दिर की दीवालों पर बने विभिन्न प्रसंगों के चित्र इसके प्रमाण हैं। दतिया राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित संवत् 1824 वि. की रामचरितमानस की पाण्डुलिपि के प्रत्येक काण्ड के प्रारम्भ में एक-एक चित्र बने हैं। सभी पाण्डुलिपियों का विवरण प्रस्तुत करना दुष्कर कार्य है।

रामकथा के ग्रन्थों की सचित्र पाण्डुलिपियाँ कला की दृष्टि से आत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं तथा सांस्कृतिक धरोहर हैं।

सन्दर्भ

1. उर्दू-हिन्दी कैटलाग–समाहर्त्ता–डॉ. वकारुल हसन सिद्दीकी, संख्या 53, पृष्ठ 29, रामपुर रजा लाइब्रेरी, रामपुर, सन् 2000 ई.।
2. कैटलाग ऑफ पेंटिंग ऑफ दि आशुतोष म्यूजियम मैन्युस्क्रिप्ट्स ऑफ दि रामचरितमानस, पृष्ठ 2-3, –निरंजन गोस्वामी, आशुतोष म्यूजियम ऑफ इंडियन आर्ट, यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, सन् 1981।
3. मानस अनुशीलन–श्री शंभु नारायण चौबे, पृष्ठ 9, सम्पादक–सुधाकर पाण्डेय, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी संवत् - 2024।
4. काशी से प्राप्त चित्रित पाण्डुलिपियाँ (रामचरितमानस) –डॉ. प्रेमकुमारी श्रीवास्तव, पृष्ठ 25-29, कला प्रकाशन, न्यू साकेत कालोनी, बी.एच.यू., वाराणसी-5, सन् 2008।
5. संवत् 1878 वि. और संवत् 1915 वि. पाण्डुलिपियों का विवरण एवं चित्र मुझे श्री सुरेशचन्द्र पाण्डेय–संचालक–भारत-भारती, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी से प्राप्त हुआ था। दुर्भाग्यवश श्री पाण्डेय जी अब इस संसार में नहीं हैं। मैं उनके प्रति हृदय से अभारी हूँ।
6. इस पाण्डुलिपि के संक्षिप्त विवरण के लिए हम आभारी हैं श्री शारदासदन पुस्तकालय, लालगंज, वैशाली (बिहार) के प्रधान सचिव श्री जगन्नाथ प्रसाद शाह के।

संलग्न चित्र

1. पुरातत्त्वविद् प्रो. कृष्णदत्त वाजपेयी का दिनांक 22 अक्टूबर 1987 ई. का पत्र।
2. रानी जानकी के पठनार्थ कमलपुर (बंगाल) में तैयार की गयी मानस की पाण्डुलिपि के चित्र-2, एक रंगीन, एक काला।
3. रतनपुर–छपरा (बिहार) में तैयार की गयी मानस की पाण्डुलिपि का एक पृष्ठ।
4. भोजपुर (बिहार) में तैयार की गयी मानस की पाण्डुलिपि के दो पृष्ठ।
5. वैशाली (बिहार) की पाण्डुलिपि का एक पृष्ठ।
6. गणेश यंत्रालय (शिलायंत्र) से प्रकाशित सचित्र मानस की पाण्डुलिपि का एक पृष्ठ।

निषाद को वर देते राम
(रानी जानकी देवी हेतु तैयार की गयी प्रति से)

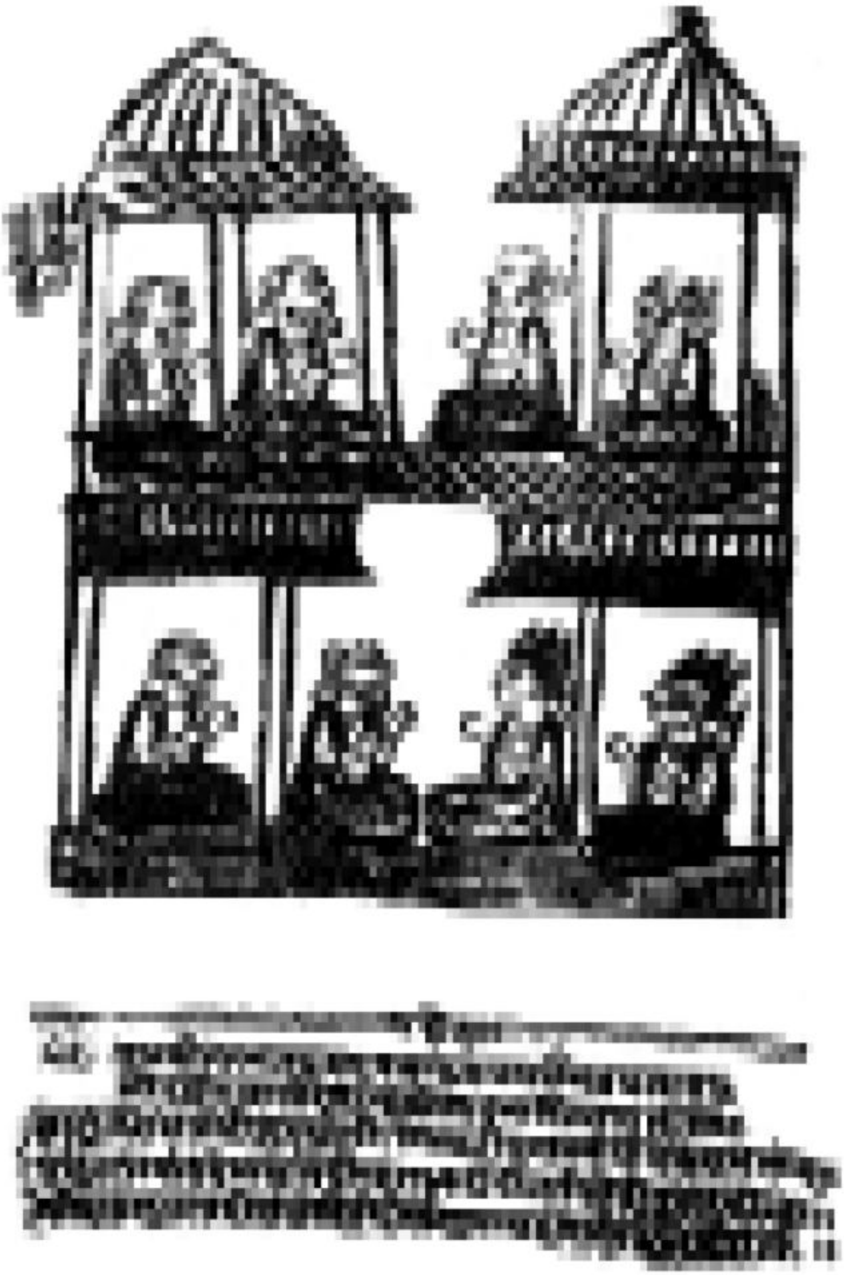

रहानपुर (बिहार) में लिखी गयी मानस की पाण्डुलिपि का एक पृष्ठ

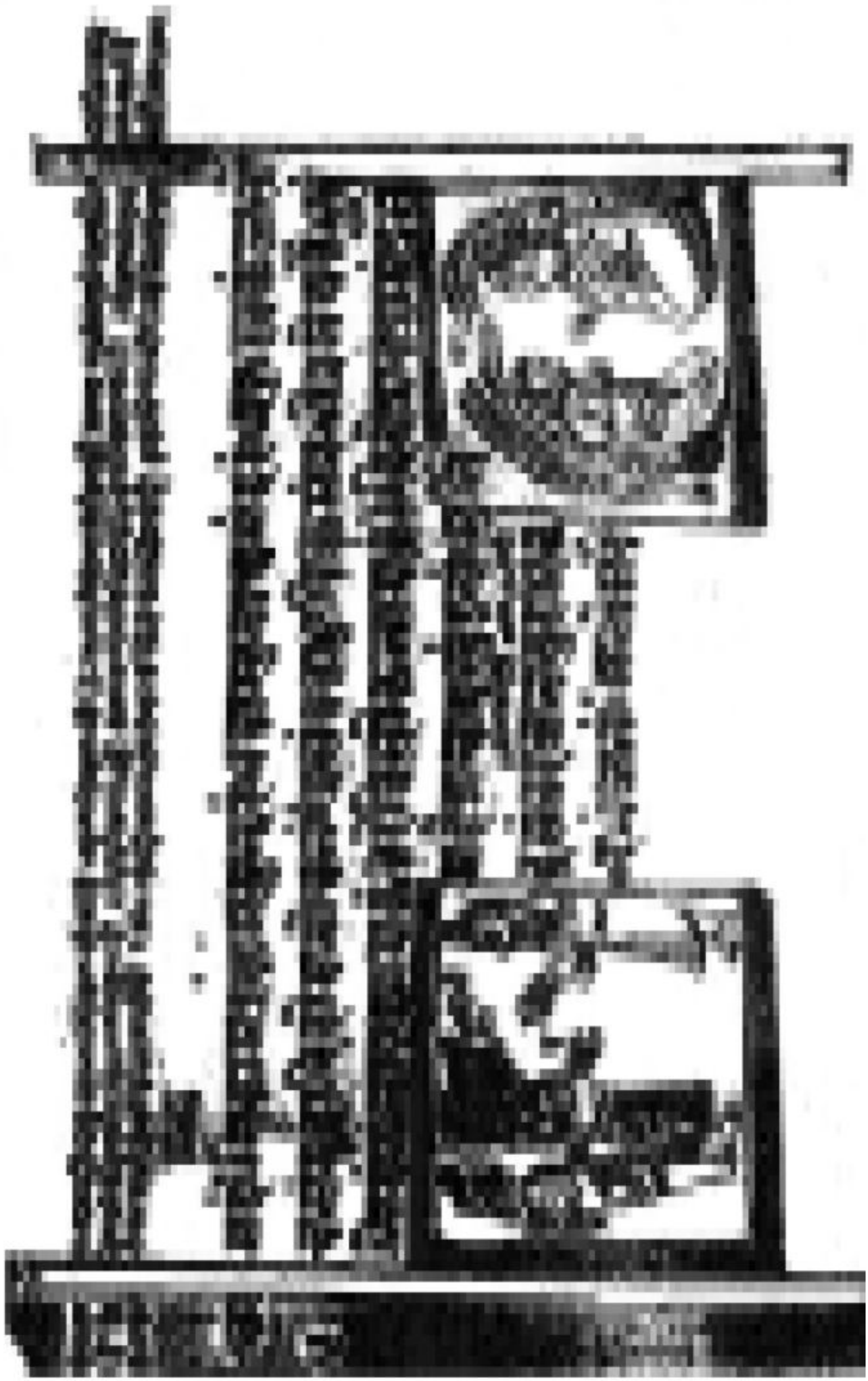

भोजपुर (बिहार) में तैयार की गयी मानस की प्रति का एक पृष्ठ

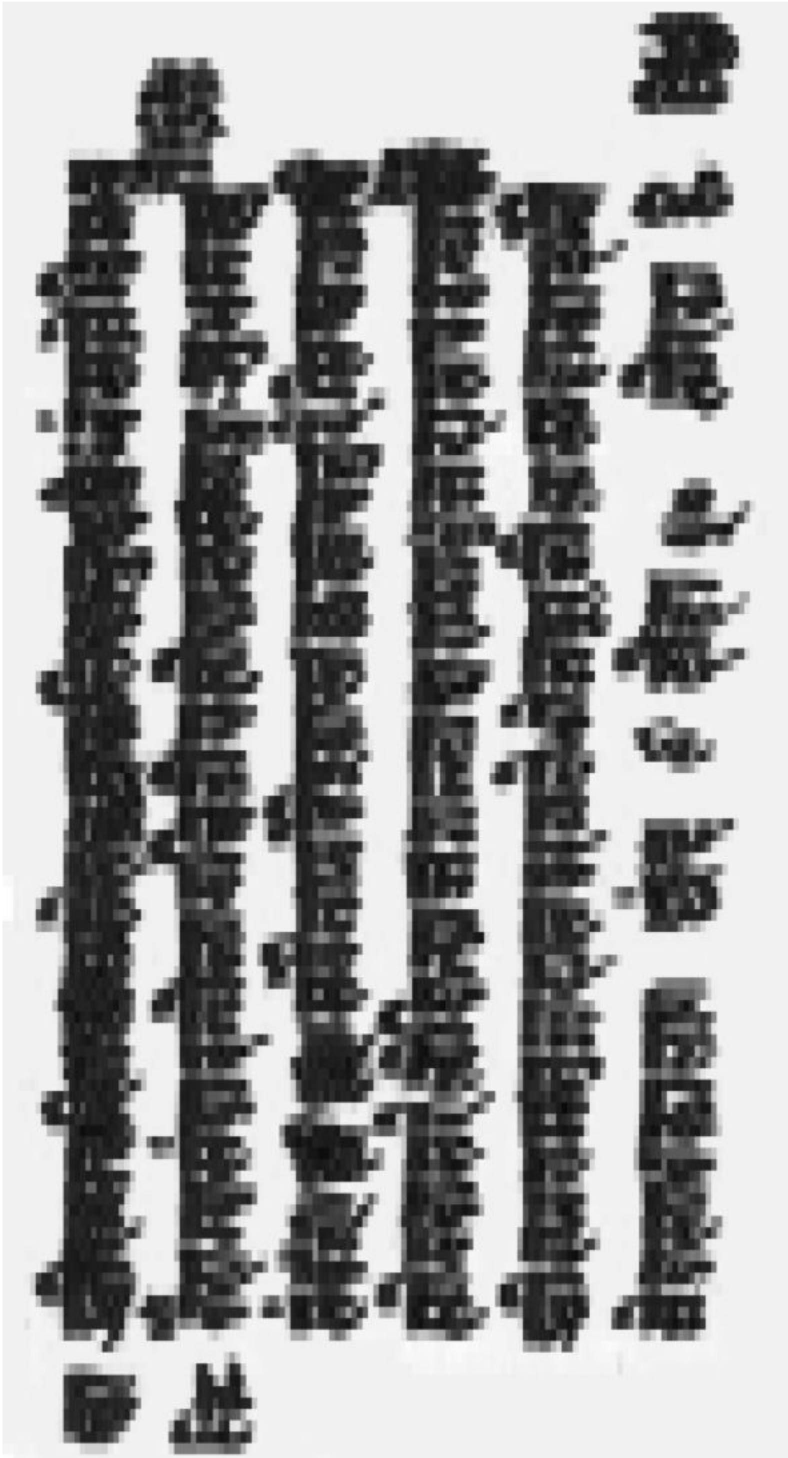

बसाव कलह ग्राम (भोजपुर) में तैयार की गयी रामचरितमानस का अन्तिम पृष्ठ

वैशाली (बिहार) में तैयार की गयी मानस की पाण्डुलिपि का एक पृष्ठ अयोध्या की कचहरी

काशी के गणेश शिल्प यंत्र से प्रकाशित प्रति

रामकथा की दो अप्रतिम काव्यकृतियाँ : पाण्डुलिपियाँ

डॉ. अर्जुनदास केसरी

रामकथा के अनेक हस्तलिखित काव्यग्रन्थ संग्रहालयों में पड़े हैं; अथवा दीमक का आहार बनकर नष्ट हो चुके हैं, बहुत कम प्रकाशित हुए हैं। इनपर देशस्तरीय व्यापक सर्वेक्षण की आवश्यकता है; जो केवल सरकारी तन्त्र से सम्भव नहीं है। उत्तर प्रदेश के सोनभद्र जनपद में इन पंक्तियों के लेखक ने अपना एक संग्रहालय बनाया है, जिसमें दुर्लभ वस्तुओं के साथ-साथ पाण्डुलिपियों का भी संग्रह किया गया है। उनमें दो रामकथा की हैं। प्रथम बाबा झामदास कृत 'रामार्णव' का प्रकाशन तीन खण्डों में अयोध्या शोध संस्था के सहयोग से लोकरुचि प्रकाशन, सोनभद्र (उ.प्र.) द्वारा किया गया है। उसका पुनर्लेखन-सम्पादन अर्जुनदास केसरी ने ही किया है। 'रामचरितमानस' से लगभग दो गुनी बड़ी इस कृति पर शोधकार्य हो रहा है। दूसरी है–तुलसी कृत 'रामायण' जिसका बालकाण्ड प्राप्त है और इसके आरम्भ में 94 पुस्त की सूर्यवंशियों की सूची दी हुई है। उसी जनपद के बनौरा ग्राम से श्री मुनीर बख़्श आलम के सहयोग से प्राप्त इस कृति में कुल 63 कथाओं की भी सूची दी हुई है। ये दोनों काव्य-कृतियाँ रामकथा की बड़ी उपलब्धियाँ हैं। यहाँ हम उन कृतियों का विवरण दे रहे हैं।

1. रामार्णव

श्रीराम-भक्त बाबा झामदास का जन्म सन् 1700 ई. के आसपास ठहरता है और अपने जन्मस्थान के बारे में उन्होंने स्वयं लिखा है–

''बरनवाल की ग्याति निज, वैश्य वरन कहवाउ।
सिख्य भयो श्री झामधर, इष्ट देव रघुराउ।।''

इससे स्पष्ट होता है कि बाबा का जन्म वर्नवान वैश्य वंश में हुआ था और उनके इष्टदेव श्रीराम थे। उनका जन्म उत्तर प्रदेश में ही भदोही में हुआ था। 'रामार्णव' की रचना उन्होंने उमादयाल की प्रेरणा से की थी। अयोध्याकाण्ड के प्रथम पृष्ठ पर उन्होंने संस्कृत में अपना परिचय लिखा है जिससे स्पष्ट है कि यह काव्य बाबा जी ने अपने पितानुज भवानी दयाल के लिए, उनके द्वारा मान्य और हस्ताक्षर किये जाने पर घनश्याम दास और उनके ज्येष्ठ भ्राता के पुत्र के निमित्त लिखी थी। उन्होंने रूपक-योजना के तहत उसका नाम 'रामार्णव' रखा और कहा कि यह रामनाम का अर्णव (समुद्र) है। तरंगें (प्रसंग) इसकी लहरें हैं, जिसमें सज्जन मज्जन करके अपने कलुष-भ्रम का नाश कर सकते हैं।

बाबा का बड़ा परिवार था। वे सात भाई थे और सभी एक साथ रहते थे। सभी प्रभु का यशगान करते थे। 'रामार्णव' का रचना-काल उन्हीं के अनुसार संवत् 1857 है, जिसमें वह पूर्ण हुआ था। उन्होंने इसे 1818 प्रजापति नाम संवत् में लिखना आरम्भ किया था। प्रत्येक काण्ड के अन्त में काण्ड के पूरा होने की तिथि भी लिखी हुई है। बाबा जी क्रमशः पंचमढ़ी (भदोही), मिर्जापुर के गंगातट (जहाँ उनका

आज भी बगीचा है), काशी, प्रयाग, राजा माण्डा के दरबार में और अन्त में अयोध्या रहे। यहीं इसकी पूर्णाहुति हुई। कहते हैं, इसे वे नित्य गाते थे और तमाम कथाप्रेमी उसे प्रेमपूर्वक सुनते थे। इनकी कथा में हनुमान जी किसी न किसी रूप में विराजमान रहते थे।

बाबाजी के हृदय में सभी प्राणियों के प्रति समान आदर का भाव था। वे सेवाभाव, प्रेम, स्नेह, दया, करुणा, सत्य, अहिंसा, समता, सद्भाव, सादा जीवन और उच्च विचार के समर्थक थे, जिसका परिचय इस काव्यकृति में सर्वत्र मिलता है। उन्होंने श्रीराम को ब्रह्म नहीं, आदर्श पुरुष माना है और उनके कार्यों को प्रत्येक के लिए अनुकरणीय माना है।

'रामार्णव' की भाषा मधुर, सम्प्रेषणीय, भावप्रणव, अलंकृत, सरस, सूत्रात्मक, मिर्जापुर-प्रयाग की अवधी है। रचना शान्त रस में है। दोहा, चौपाई, सोरठा, हरिगीतिका, भुजंगप्रयाति, तोमर छन्दों में अपने काव्य की उन्होंने रचना की है। हाँ, आपकी भाषा पर वाल्मीकि के 'रामायण' सहित सभी पुराणों के अध्ययन की छाप है जिनका उन्होंने अन्त में उल्लेख भी कर दिया है। रामकथा की यह अपनी तरह की अलग-थलग एक अति महत्त्वपूर्ण काव्यकृति है जिसकी रचना विशेष रूप से कथावाचन के लिए ही की गयी थी; ताकि समाज में समरसता का वातावरण सृजित हो। उन्होंने आरम्भ में ही लिख दिया–

बन्दौ गणपति पांय, मंगलादि अनिमादि प्रद।
अज्ञ तिमिर उर छाय, जासु ध्यान दिनमणि सुखद।।

उन्होंने प्रथमतः श्रीगणेश, फिर सज्जन-चरणों की, तब फिर राम की वन्दना की है–

"बंदौं प्रथमहिं सज्जन चरना। जासु गिरा गोपति तम हरना।
कृपासिंधु संतत सुखदाता। बिचरहिं राम विश्वहित दाता।
छमा छमा सम सगुण विलासी। विधु सम गिरा पियूष प्रकासी
सुरसरि सम सुभ चरित सुहाई। सन्मुख होत सरिस सुख पाई।।"

× × ×

"संत करिहि विधु वसु महिमाहीं। मधु सित सोम राम जनु नाहीं।
मंगल मूल जानि आनंदी। करौं कथा रघुपति पद बंदी।।
विन्ध्यक्षेत्र सुरसरि कै तीरा। करौं कथा भंजन भव भीरा।"

श्री उदयशंकर दुबे के अनुसार यह ग्रन्थ रीवां नरेश महाराज रघुराज सिंह के शासन-काल में लिखा गया था। (रामार्णव बालकाण्ड, पृ. 6) इनके गुरु का नाम ब्रह्मदेव था। (सु.का., पृ. 53)

इस हस्तलिखित ग्रन्थ में मात्र पाँच काण्ड हैं–बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किंधाकाण्ड और सुन्दरकाण्ड, जिनमें कुल 445 पन्ने हैं। वर्णन से लगता है कि जब ये कथा कहने लगते थे तो संत-महात्मा और रामकथा-प्रेमी एकत्र हो जाया करते थे, जैसा कि पन्ना आठ पर लिखा भी है–

"रामचरित अर्णव एहि नामा। सुनहिं संत पावहिं मनकामा।
सोइ हरि चरित करौ अवगाना। सुनहु श्रवण देइ संत सुजाना।।"

अपने गुरू की वन्दना बाबा ने इस प्रकार की है–

"बन्दौं गुरुपद कंज, हरण कुअंक विरंचिकृत।
जाकी कृपा मयंक, सदा उदित आसंकहर।"

यह तो बात हुई कृति और कृतिकार के बारे में। अब इस महाकाव्य के काया-विस्तार पर भी कुछ चर्चा होनी चाहिए। ज्ञातव्य है कि बालकाण्ड में 35, अयोध्याकाण्ड में 21, अरण्यकाण्ड में 9, किष्किंधाकाण्ड में 11 और सुन्दरकाण्ड में 10 तरंगों में अलग-अलग कथाप्रसंग वर्णित हैं जिनमें अनेक

अवतार-कथाएँ भी हैं, जो अन्यत्र नहीं मिलतीं। यहाँ उनकी सूची दिये बगैर बात अधूरी रह जायगी। वे प्रसंग हैं—क्रमशः सुमिरनी, भक्ति प्रदायक संवाद, ब्रह्मा-नारद संवाद, उमा-महेश्वर सम्वाद, शिवोमा-संवाद, राम-हृदय, सृष्टि-निरूपण, भुवन-विन्यास (भरतखण्ड-वर्णन), जम्बूद्वीप-वर्णन, षट्द्वीप-वर्णन, मनुधत-दानुकीर्तन, भानुवंश-वर्णन, भानुवंशानुकीर्तन, अस्य शृंगानयन, रामावतार निरूपण, बाललीला वर्णन, मलदकाठशरण्य प्रवेश, विश्वामित्र योग समाप्ति, सुरसरि-उत्तरण, अहल्या शापोद्धार, त्रिशंकु, अश्व-चाण्डाल-प्रयाण, विश्वामित्र उपाख्यान, धनुभंजन, दशरथ-प्रयाण, जनक-वंश-वर्णन, जनक-वंश-वर्णन (दो), सीताराम-विवाह-वर्णन, मैथिलपुर दशरथ-प्रयाण, परशुराम गहन तपस्या, अयोध्याभिनिवेश (बालकाण्ड)। रामराज्य सभामंत्रण, मंगलोपवास, कैकेयी का कोपभवन-प्रवेश, कैकेयी का वरदान माँगना, दशरथ-विलाप, कैकेयी-कुटिलता, राम-लक्ष्मण-संवाद, राम-जानकी-संवाद (सिखावन), राम का राजा के समीप वन गमनार्थ आगमन, राम-लक्ष्मण-जानकी का वनचीर-परिग्रहण, वनगमन, परित्याग, कौशल्या-सुमित्रा का शोक, परिजन-रुदन, शृंगवेरपुर वास, सुरसरि-दुस्तरण, भारद्वाज-मिलाप, चित्रकूट-दर्शन, वाल्मीकि-आश्रम-आगमन, सुमंत का अयोध्या प्रत्यागमन, दशरथ-शरीरान्त, भरत का अयोध्या आगमन, भरत-विलाप, दशरथ-अन्त्येष्टि, भरत-शपथ, दशरथ का दाह-संस्कार, भरत का राजा न होने का विरोध व राम के पास जाना, भरत-शत्रुघ्न का शृंगवेरपुर-प्रस्थान, गंगा-संतरण, भरत भारद्वाज आश्रम में, सानुज-ससैन्य भरत का चित्रकूट आगमन, चित्रकूट में राम-भरत का मिलन, राम द्वारा भरत को समझाया जाना, दशरथ-मरण सुनकर राम का विलाप करना, भरत को वापस करने का प्रयास, भरतोत्थापन-राजनीति धर्म, भरत का श्रीराम की पादुका लेकर वापस होना, भरत का अवध आकर नंदीग्राम वास करना (अयोध्याकाण्ड)। विराध-वध, सरभंग के धाम में; सुतीक्ष्ण के आश्रम में प्रयाण, ऋषि कुंभज के आश्रम में, सुरपणखा-खरदूषणादि-वध, मारीच-रावण-संवाद, मायामृग-सीता का अग्नि-प्रवेश, सीता-हरण, सीता-हरण (दो) जटायु-वध, सीता अशोक वाटिका में, राम का विलाप : सीता-हरण, जटायु-मिलन, मोक्षलाभ, श्रीराम द्वारा कवंध का भुजा काटना (अरण्यकाण्ड)। हनुमान-मिलन, राम-सुग्रीव का गुहागृहवास; तारा-प्रबोध, सुग्रीव को राजपद, श्रीराम का गुहावास; क्रियायोग उपदेश, श्रीराम-विलाप; दूत-प्रेषण, लक्ष्मण द्वारा किष्किंधापुर से सुग्रीव को लाया जाना, जोगिनी वर-प्रदान, बानरी सेना का सिंधुतट प्रयाण; गीधराज से मिलन, सम्पाति सम्पक्ष, समुद्र-लंघन-चिन्तन-प्रकरण, जामवंत का जन्मकर्म वर्णन (किष्किंधाकाण्ड)। स्तुति और हनुमान द्वारा समुद्र-संतरण, सीता-अन्वेषण, हनुमानाद्विलास, राक्षसी-तर्जन, अंगुलीयक समर्थन; सीता-हनुमान-वार्ता, अशोक वाटिका-भंग, हनुमान-बंधन, लंकादहन, मधुवन-विध्वंस, हनुमान द्वारा सीता को संदेश और अन्त में रचनाकाल एवं स्तुति।

ये सभी प्रसंग और प्रकरण बड़े मार्मिक, सम्प्रेषणीय और भाव-प्रवण हैं। प्रकृति-चित्रण, चित्रात्मकता, अलंकृत भाषा, सहजता के सर्वत्र दर्शन होते हैं। बालकाण्ड में अयोध्या का वर्णन देखिए कवि किस तन्मयता के साथ करता है—

''सुमन वाटिका वृन्द, द्वार-द्वार प्रति शोभियत।
निरखति अति आनंद, मनो सुषमा के आवरण।।
करहिं पिनाक नभग खग नाना। कपितहि मन आवत काना।।
तेन्हं तहं सुन्दर सरवर सोहे। जेन्हहिं विलोकि न केन्ह मन मोहे।
विगसे पंकज नाना रंगा। करहिं विहार जथा रुचि भृंगा।।
बोलहिं जल खग अनबनि बानी। भनत न बनत मोद मन जानी।।''

बाबा ने प्रामाणिकता के लिए प्रमाण भी बहुत दिये हैं, अर्थात् अपनी बात को अन्य पुराणों-शास्त्रों से प्रमाणित भी करते गये हैं जिससे लगता है कि उन्होंने रामकथा-सम्बन्धी प्रायः सभी ग्रन्थों का अनुशीलन किया था।

झामदास बाबा उस समय पैदा हुए थे, जब ब्राह्मण-धर्म का सर्वत्र वर्चस्व था और शूद्र-नारी को वेदाध्ययन की अनुमति भी न थी; तब भी बाबा ने समरस समाज की स्थापना के खयाल से इन बासी मान्यताओं को नकारा और 'ढोल गंवार शूद्र पसु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी।।' जैसी कोई बात कहीं नहीं लिखी; अपितु श्रीराम को सम्मान्य आदर्श महापुरुष मान कर उनसे पुरुषोचित आचरण करवाया। 'मानस' में गंगावतरण करते समय श्रीराम के समय केवट को अत्यन्त दीन-हीन, दया का पात्र दिखाया गया है, परन्तु 'रामार्णव' में केवट श्रीराम, जानकी और लक्ष्मण को सामान्य जन की तरह सादर, विनम्रतापूर्वक गंगापार करता है और उचित खेवाई भी ले लेता है।

'रामार्णव' के कतिपय प्रसंग तो अत्यन्त मार्मिक हैं। दशरथ की मृत्यु का समाचार कितना दुःखद है? रानियों की शोकजन्य पीड़ा का कितना कारुणिक और मार्मिक वर्णन कवि ने किया है, देखिए, विलाप का यह दृश्य–

''किमि अनाथ करि हमहिं बिहाई। महाराज केहि काज सिंधाई।।
नहिं पालन कर एहि छन रामा। केहि अवलम्ब तजेउ निज बामा।।
देस कोष पुर पालन कारी। सो एहि समय सुवन बनचारी।।
हमहिं सहित एहि सब लोका। किमि सहि सकिहि स्वामि बिन सोका।।
एहि भांतिन बहु विलपहि रानी। सो सुनि सकल पुरी अकुलानी।।''

(अयोध्याकाण्ड, पृ. 108 **)**

पूरे 'रामार्णव' में तुलसीदास का एक स्थान पर नाम आया है। ऐसा प्रतीत होता है कि बाबा तुलसी से बहुत प्रभावित नहीं थे और वह सर्वमान्य, समाजसुखाय, जनहिताय, सर्वथा अलग रामकथा का प्रणयन करना चाहते थे। यह और बात है कि अभी 'रामार्णव' के बारे में बहुत कम लोगों को जानकारी है। 'मानस' को लोकप्रिय होने में 500 वर्ष का समय लग गया और तब ही छिद्रान्वेषण प्रारम्भ हो गया। क्या पता कुछ दशक बाद यह 'रामार्णव' अधिक लोकप्रिय हो जाय।

'रामार्णव' में जीवन मूल्य उभर कर सामने आये हैं। स्नेह, दया, करुणा, प्रेम, सदाचार, सामाजिक जीवन की समरसता, पारिवारिक जीवन का माधुर्य, देशभक्ति, सत्य, अहिंसा, गो-बाल-ब्राह्मण-स्त्री रक्षा, अपाहिजों, अन्त्यजों, दबे-कुचले, दलित लोगों के प्रति आदर भाव आदि सब कुछ है। (तृ. खण्ड, भूमिका, पृ. 6)

'रामार्णव' का सुन्दरकाण्ड सर्वोत्तम माना जाता है। यह कथा दस तरंगों में वर्णित है। कथा भी 'रामचरितमानस' के सुन्दरकाण्ड से अधिक लम्बी (लगभग तीन गुनी) है। समुद्रोल्लंघन के उपरान्त हनुमान की मनःस्थिति का चित्रण एक छन्द में देखिए–

''गत वेगि सागर पार मरुत, कुमार कूल निहारेऊ।
नाना नभग बहु रंग रव करु, कर्ण करत सुखारेऊ।
बहुवृक्ष फूलित फलित बहुधा, करु बिहार मृगांगना।
करि झामराम सुकाम कपि अवलोकि सुखपूरित मना।''

(वही; पृष्ठ 275 **)**

फलागम के बाद प्रसन्न मन का होना स्वाभाविक है और जब पूर्ण फल प्राप्ति हो जाय तो फिर

क्या कहना। इसी कारण तो हनुमान सर्वोपरि हो गये और बाबा को भी कहना पड़ा–

''नहि गाइ जाइ अपार कविकुल, को न जवन सकै कहा।
जेहि पदन तुलसी दलन पूजत, पाउं पावर पद महा।
सोइ राम पूरन काम सोइ-सोइ, मिलत भाव अमान को।
अरु भाग्यमान सुजान अति, हनुमान सम जग आन को।।''

(वही; पृ. 214 **)**

इसीलिए तो राम ने हनुमान को अपनी अमोघ भक्ति दे दी और हनुमान जी भी दण्डवत कर उनके चरणों में अपने को समपर्ति कर सदा के लिए निहाल और अमर हो गये। देखिए, राम कहते हैं–

''देंउ तोहि निज भक्ति पुनीता। करत जासु निगमागम गीता।।
सो सुनि पवन तनय अनुरागे। परेउं दण्ड जिमि पुनि प्रभु आगे।।
सजल नयन रघुपति उर लाये।। उमा प्रेम सोइ जात न गाये।।''

(वही; पृ. 214 **)**

तात्पर्य यह कि 250 वर्ष पूर्व रचित बाबा झामदास की यह रामकथा-कृति 'रामार्णव' अब तक के समस्त रामकथा-काव्यों में अप्रतिम, अनोखी, सामाजिक समरसता की दृष्टि से प्रासंगिक है। इसपर शोध और अध्ययन की अनेक सम्भावनाएँ हैं।

2. रामायण

रामायण का तात्पर्य सामान्यतया 'रामचरितमानस' से ही लगाया जाता है। रामायण का अर्थ है राम का चरित्र या यशगायन। तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' नाम 'वाल्मीकीय रामायण' से पृथकत्व जाहिर करने के लिए दिया होगा।

प्रस्तुत रामचरितमानस का बालकाण्ड काशी प्रसाद ग्राम-बनौरा, तहसील राबर्ट्सगंज, जनपद सोनभद्र (उ.प्र.) से इन पंक्तियों के लेखक को लगभग अस्सी के दशक में प्राप्त हुआ था, जिसका मंथन नहीं हो पाया था। रामकथा-विशेषज्ञ और हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद के पाण्डुलिपि विशेषज्ञ श्री उदयशंकर दुबे से जब इसकी चर्चा हुई और उन्होंने जब इसका अवलोकन किया तो प्रथमतः 'अमर उजाला' के माध्यम से इसकी उपादेयता और विशिष्टता समझ में आयी।

यह अब तक प्राप्त सभी रामकथा कृतियों में अलग हस्तिलिखित कृति है, जिसके आरम्भ में ही 94 पीढ़ी की सूर्य वंशावली दी हुई है। मैं यहाँ उसे यथावत देना उचित समझ रहा हूँ। इसका शीर्षक लिखा है–'अथ वंशाउरी सूर्ज बंसीयों के।' कालीस्याही से खाना बनाकर 'नाम राजाओं के' 'नाम रानियों के' दिया हुआ है, जो इस प्रकार है–क्रमांक 1 से 5 तक राजाओं के ही नाम दिये गये हैं, रानियों के नहीं–(1) निरंकार वेम्पकार, (2) वोंकार, (3) तोये, (4) कमलासन, (5) ब्रह्म, (6) मनिच-प्रेमजा रानी, फिर राजा-रानियों के नाम साथ-साथ यथा, (7) कस्य-अदिति, दिति, कहुसुरसा, विन्ता, पदावती, सुरोब्रती, मनवती, अमोधा, (कस्य के पार्श्व में 'नसरेषा' लिखा है।), (8) सुर्ज-छायाप्रना, (9) अखनिकुमार-महाव्रति, (10) मनु-सुचिरेषा लिखा है, (11) इछाक-सुप्लातीहि, (12) वीचक-नृमल, (13) विडर-दामा, (14) द्रिगपाल-देवमती, (15) सुतंजये-सुर्जमुषी, (16) पुतंजपेदेव-दानमती, (17) जवेवछ-चेदा, (18) वीरभानु-कुमुदुनी, (19) महारानी-मानमती, (20) अतेस कुमार-धनमती, (21) निसंक-सुसर्ष, (22) त्रिशंकु-सुशीला, (23) धर्मध्वज-नमा, (24) भुमेस्वर-ख़ामा, (25) पृथु-देवजानी, (26) श्रीकदत्त-विष्पाता, (27) इन्द्र-परमा,

(28) सुमुज–नासो, (29) कनीफट–नुपावती, (30) जुवानाथ–पुष्पावती, (31) मध्याता–सुभागी, (32) सयम्भु–ग्यानमती, (33) प्रध्यन्या–तेजमती, (34) त्रिजरेतु–नागेश्वरी, (35) त्रिसानुज–चन्द्रमा, (36) हरिचंद–मदनावती, (37) हरदास–चंद्रावती, (38) रूपमगन–मंगला, (39) धरमगत–सुगधी, (40) मयुर्धुज–पींग्ला, (41) तामध्वज–सुभावती, (42) सुचछ–सोनमती, (43) विजसुदानी–जप्रेमती, (44) सुविक–बालमती,(45) नरिन्द्र–ललंग, (46) सगर–केसीप्द्रुम, (47) अजमंजस वगैरह–कीरमती, (48) किरमनी–अस्वमान–आसमती (60001), (49) दलीप–सुकंठ, (50) भागिरथी–सुवासी, (51) कुकन्य–सिसिम, (52) नभंगा–कपुरा, (53) धुंधर–चंपामुख, (54) हरितासुपावलधा–सुवरना, (55) अंवरीक–रितुपानी, (56) सुदास–सुषमनी,(57) कमल–गंजमती, (58) नरनायक–देवमती, (59) असमंका–ठीका, (60) मूल–सुलाची, (61) वरिवड़ा–रमला, (62) कलच–नेत, (63) दासर्थ–मुगा, (64) अनुगा–सहजमती, (65) इसबिला–मैनसीरा, (66) ...(अज्ञात)–सौलमईजीरा, (67) सुवस–हेमकुंवरि, (68) रितुपालक–सुफाली, (69) खड्ग–भाममती, (70) श्रीदलिप–कृष्नावती आदि, (71) रघु–कमलकुंवरि, (72) अज–इंदुमती, (73) श्री दशरथ–कौशिल्या आदि (360), (74) श्रीरामंद्रादि-(4)–जानकीजी, (75) लव–चिभौजा, (76) निषादा–सुरपती, (77) नभग–अनुमावती, (78) पुंडरीक–सुचि सुषना, (79) देवनीक–लालमती, (80) अहिनाग–सुखसेनी, (81) पारिपत्र–तोरा, (82) जमुना–कुंदनी, (83) वर्जनाभ–शंषकीमातुहै, (84) शंख–ब्रिजा, (85) सुदरसन–ललिता, (86) पुहपराऊ–सषसेट, (87) मुर–....(अज्ञात), (88) सुन्न–(अज्ञात), (89) बृहदवल–किसोरी, (90) वीरसनि–कुसुमा, (91) सुभमरती–बलसुंदरी, (92) रामरेनु–गोविंदी, (93) देवदत्त–वीरकुअरी, (94) हरिदंत–उमा। इसके अन्त में एक दोहा लिखा है–

अष्टाधिक सुत भूप ये, दये अंस बलवान।
आगे मानुष होयंगे, सुनिये कृपा-निधान।।

तात्पर्य यह है कि राजा के आठ से अधिक पुत्र पैदा हुए, जो बलवान थे, इसके बाद सन्देश है कि इसके उपरांत मनुष्य होंगे (देव नहीं) हे कृपानिधान! ऐसा मेरा अभिमत है–ऐसा कवि का मानना है। राजाओं के 73वें क्रम में दशरथ का और 74वें क्रम में श्रीराम का नाम आया है।

इसी पाण्डुलिपि में कथाओं की भी सूची दी गयी है, किन्तु उसमें पृष्ठों का क्रम व्यतिक्रम है। मैं उसे यथावत् दे देना उचित समझता हूँ। वे कथाक्रम हैं–

मानस–(1) चतुर्जगे कथा (11), जग विध्वंस राजा जछ कै (19), जन्म पारवती कै (23), प्रकास काम देववातोरुक बध (25), विवाह पारवती कै (23), पूर्वकथा पार्वती कै (29), प्रस्न पार्वती कै (36), कथा जालन्धर कै, नार्द कै मोह (38), राजा मनु का तप (48), राजा भानुपरताप कै (50), उत्पत्ति रावन कै (53), गधर्पप कै सार्पव्य कै (55), पंचकन्या का जन्म (59), हतारिकै जन्म लंका रावणलि;.......(60), वरनन चौरासी नर्क (63), रावन वो सम्पातीकाल डार (67), चौदहो मनू के (71), चाषुसुकिहा रावन गया (72), रावन छिरसागर गये (75), व्रोबाकेछु पुत्र कै नाम तप (75), मेघनाद इन्द्र कै लड़ाई (76), रावन राजा दलिप के परिछा लेन गये, रावन का अनिति वो बलि आदि साधे गयो (80), नल कुबल किरत्राप मुनि दकाउर (82), सीता जी का जन्म (83), रावन भ्रष्टाचारम् का रुदन (84), जामती को तप विवाह (86), वावन जीवलि छल्यो (88), बालि सुग्रीव का जन्म (92), अहिल्या का सयंवर (96), राजा दशरथ कै जन्म (98), रावन दशरथ सोउंमा (100), चंदमा वंसावरी (102), कौसिकै जन्म कै (105), पछासुर वध सुमंत मेघनाद का लड़ाई (108), घनाद

का लड़ाई (109), कोसलनृत फलदान (110), रावन सपन देखा (110), दशरथ-कौसिल्या विवाह (112), दशरथ-खरदूषण लड़ाई (115), दशरथ-केकई विवाह (119), दशरथ-सुमित्रा-विवाह (121), दशरथ-केकई विवाह (122), रघुराजा कै जन्म (124), रावन महादेव को दूर खड़ल्यायो (127), इन्द्रस्त्रो सती कै स्तुति (131), मेघनाद का तप (132), इंदुमती का तपस्या (139), दशरथ पुत्र हेतु ग्लानि स्रिंगी ऋषि आगमन (140), ऋषि आगमन (140), श्रीरामावतार (143), वंशारी राम जी कावदेकहा (145), बिस्सामित्र रामहेतु आये (150), अहिल्या का स्राप (152), रघुषक स्राप कै (153), भस्मासुर वध हनुमान जन्म (154), अंजनी तप विवाह (157), हनुमान जी कै जन्म (159), गंगाजी कै उत्पत्ती (160), राग-रागिनी नाद महादेव (166), रामचन्द्र जनकपुर चले (167), धनुष टूटा (173), परसुरामादि (178), धन्या जेहि प्रकार जनक पाया (180), दूत जनकपुर गया। (182), जनकपुर बराति आई (185)।

इस तरह कुल तिरसठ कथाएँ 194 पन्नों 288 पृष्ठों में काव्यबद्ध हैं। अन्त में चन्देल की वंशावली दी हुई है, किन्तु उस पन्ने का लगभग आधा भाग फटकर नष्ट हो गया है। उसमें तैंतालीस पुस्तों के नाम हैं। इनमें से भी कुछ दीमक चाट गये हैं, फिर भी जितना बचा है अथवा सायास पढ़ा जा सकता है, उसे यहाँ दे देना उचित और महत्त्वपूर्ण भी है। यह काव्यबद्ध है–

महामहो पथोरको, चंदरवंश कविंस।
चंदेले चौहान को, समर भयेव अवतंस।।
एतेकार्पी में सतत, जासु चनेरी नाम।
मदन ब्रह्म दियाल सनि ये सुखमा के धाम।।
कृत ब्रह्मा ताके भये, ताकर ही ब्रह्म।
सूर्ज ब्रह्म ताके भयो ताही पर्यालिक ब्रह्म।।
राइ ब्रह्म ताके भये, व्याहि लियो चौहान।
खर्गधार से जुही गे, त्रियिक ये मैदान।।
हुजो सुतपर माली कही, रहे ब्रह्म गोयंद।
सुरथ ब्रह्म ताक भयो, अरिन्हि हीन हुषहुह।।
जयति भाल ताके भयो, ताके माल कलीन।
भारह-पारह मल भये, हुइ सुत ताहि मलीन।।
गोरी हीन्ह मलीछ को, भैं ते भागे होउ।
आये प्राची ही शाको, तान्ह पुरसा मोव।।
उहां सगुन कुछ पाइके, लिये सगुनिया साथ।
नग्र अगोरी बसत भै, घाटै मनु पसनाथ।।
राम तते रह सैगनो, अवर तीनी पुनि सेर।
घाट मराजहि हनत में, बचे सोभय भउ।।
रुताके सुत में सहन मल, हेमदास मल तासु।
सूर जीत मल तासु में, प्रजनहीन सुख पाससु।।
रन हवन मल तासु में, सुवीधमन तेही के भयो।
इहातेप हवी केर, गये हस ही जके भये।।

कुंजरशाही भये ताही, गघ्रपशाही ताके भये।
अगंहसाही तेही आस.............................।।
चंद्रभान शाही ताके भये, खर्गसाही तेही कै।
सूर्जशाही ताके भयो, पालशाही के हीन हे।।
नैपालशाही ये तासु सुत, ताही बलीनन्ह मारी।
रानी ओउसेभगी, वोड़नशाही सुहानी।
जाह बेलवन में रही, सोइ रिनि लीन्ह बिवाही।
मेहुड़ी वाले तासु सुत, जानहिं सबै निवाही।
केरी वियाहहु सन भयो, गहरवान फल माह।।
हीयशाही ताके भयो, जगत सराहत ताही।
मदनशाही ताके भये, ताके भये सुजान।
लालशाही ताके तनै, जानत सकल जहान।।
अचलशाही ताके भये, कोनउलरी लीहे पाल।
सिंधरौली अमली वोन्हो, कोडशाही लीन्हो छीनी।
....।।
अचलशाही नहालड़ी, मरे घर सेहो ऐसी मोह।
फते बहादुर तासु तन, ताके शंकरशाही।।
ताकर सेम्भुशाही भे, राज करत हीदजाइ।
....।।
नेती नीपुन राजी सहाया, राजरिषी सम कर्म।
रन के साही बहादुर, तन के फामस रूप मह।
मकरंधुज ताके तने, वीरमहु अनरूप।
....।।
येक अगोरी छत्र ते, कीन्हों राजी ललामी।
वीजौपुरशाही प्रथम, भो गहरबार फल।
बन्हल गोत हूजो कियो, नग्र अमेठी माह।

शीलवान ह्रीदग्यान मे, बचन्ह में अति धीर।

बरम्हत भलउ साही 24 = 43 पुस्ती

इतमनुइछाक कछवान है, अनरनी प्रिथु अवत्रिशंकु।
धूमधाम जुत युवामानधा।[1] तासु संधी ध्रुवसंधी मरतान है।[2]

भगीरथी कथन धुरानह[3]
प्रवीष कलमाष नरनु संकन्ह केसु हरटसनहै अग्रीवननी
सीग्र नगीमरूसु कहा......

राती नीशा भोग अजहसर थकनिमजु भानुवंश वहोग
नाम वंस चालीस एह, वरनत हही जहास।

पाण्डुलिपिकार का नाम नहीं लिखा है। कहाँ लिखी गयी इसका भी जिक्र नहीं है।स्याही काली है। कागज हाथ का बना है। दोहा, सोरठा, चौपाई, छन्द और अर्द्ध-पूर्ण विराम के लिए लाल स्याही का प्रयोग किया गया है। पाण्डुलिपि का आकार 14'' 10'' है। शब्दों का संचयन लगातार है। पूरी पाई खींचकर अविरल लिखा गया है। अक्षर देखने में सुन्दर किन्तु सुपाठ्य नहीं है। र, त, ट, न में अन्तर करना कठिन है। हर पन्ने पर पृष्ठ संख्या लिखी है। कथाओं का शीर्षक भी लाल स्याही से दिया गया है। लेखक ने यह संकेत नहीं दिया है कि और भी काण्ड उसके द्वारा लिखे गये हैं, अथवा नहीं। लिखे गये होंगे तो उपलब्ध नहीं हैं। पोथी का आरंभ श्री गणेशाय नमः से किया गया है। उसके बाद श्री पोथी बाल काण्ड लिखकर 'नीलाम्बुजः श्यामलकोमलाङ्गः' से किया गया है। अंतिम चौराई इस प्रकार है–

करहे सदा लरिकन्ह पर छोहू। दरसन देत रहब मुनि मोहू।।
असकहि नाव सहित सुतरानी। परेउ चरन सुख आउन बानी।।

इस पाण्डुलिपि की महत्ता को 'अमर उजाला' ने महत्व के साथ प्रथम पृष्ठ के प्रथम समाचार के रूप में उजागर करते हुए लिखा है–"सोनांचल में तुलसीकृत 'रामचरितमानस' के बालकाण्ड की दुर्लभ पाण्डुलिपि मिली है। इस पाण्डुलिपि की मदद से अयोध्या के इतिहास और सूर्यवंशियों के अतीत पर नयी रोशनी डाली जा सकेगी।

पाण्डुलिपि के पहले दो पृष्ठों में दी गयी सूर्य वंशावली में प्रभु श्री रामचन्द्र के पहले के इन 73 राजवंशों का जिक्र है, जिनके बारे में अब तक पुराणों में भी अद्यतन जानकारी नहीं मिल सकी है। इसे राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन कार्यक्रम में शामिल किया जायगा। पाण्डुलिपि से सूर्यवंश की 94 पीढ़ियों राजाओं और उनकी रानियों-पटरानियों का पता चल सकेगा। इस वंश के पहले पाँच राजाओं में निरंकारवें प्रकार, वोकार तोम, कमलासन और ब्रह्म की रानियों का पता नहीं है। चौंकाने और मनन करने वाली बात यह है कि इस पाण्डुलिपि में जिन राजा-रानियों के नाम हैं, वे गरुड़ पुराण, मत्स्य, वाराह और ब्रह्माण्ड पुराण में भी खंगाले से नहीं मिल रहे हैं। हिन्दुस्तानी एकेडेमी की ओर से 1932 में प्रकाशित और लालाराम बी.ए. द्वारा लिखित अयोध्या के इतिहास और वंशावली से उसे काफी भिन्न और महत्त्वपूर्ण माना जा रहा है। उसमें तो राजा मनु से लेकर सुमति तक सिर्फ 36 राजाओं का ही जिक्र है। श्री उदयशंकर दुबे के अनुसार यह पाण्डुलिपि 19वीं शताब्दी की लगती है और इस पर नयी बहस छिड़ सकती है। अयोध्या के इतिहास और सूर्यवंश के अनछुए पहलुओं पर प्रकाश पड़ेगा। इसके हर पृष्ठ पर 13 पंक्तियाँ हैं और हर पंक्ति में 52 शब्द। यह कैथीलिपि में है, परन्तु काल-खण्ड का पता नहीं चलता।"

तात्पर्य कि रामकथा की यह काव्यकृति अपनी तरह की बिल्कुल अलग है। सूर्यवंश की वंशावली की दृष्टि से तो यह अप्रतिम है ही। आज जरूरत है इस पर अलग से शोधकर्म करने की ताकि कुछ नये तथ्य उद्घाटित हो सकें।

इसमें अगोरी, सिंगरौली, बड़हर के राजाओं-स्थानों का जिक्र है–

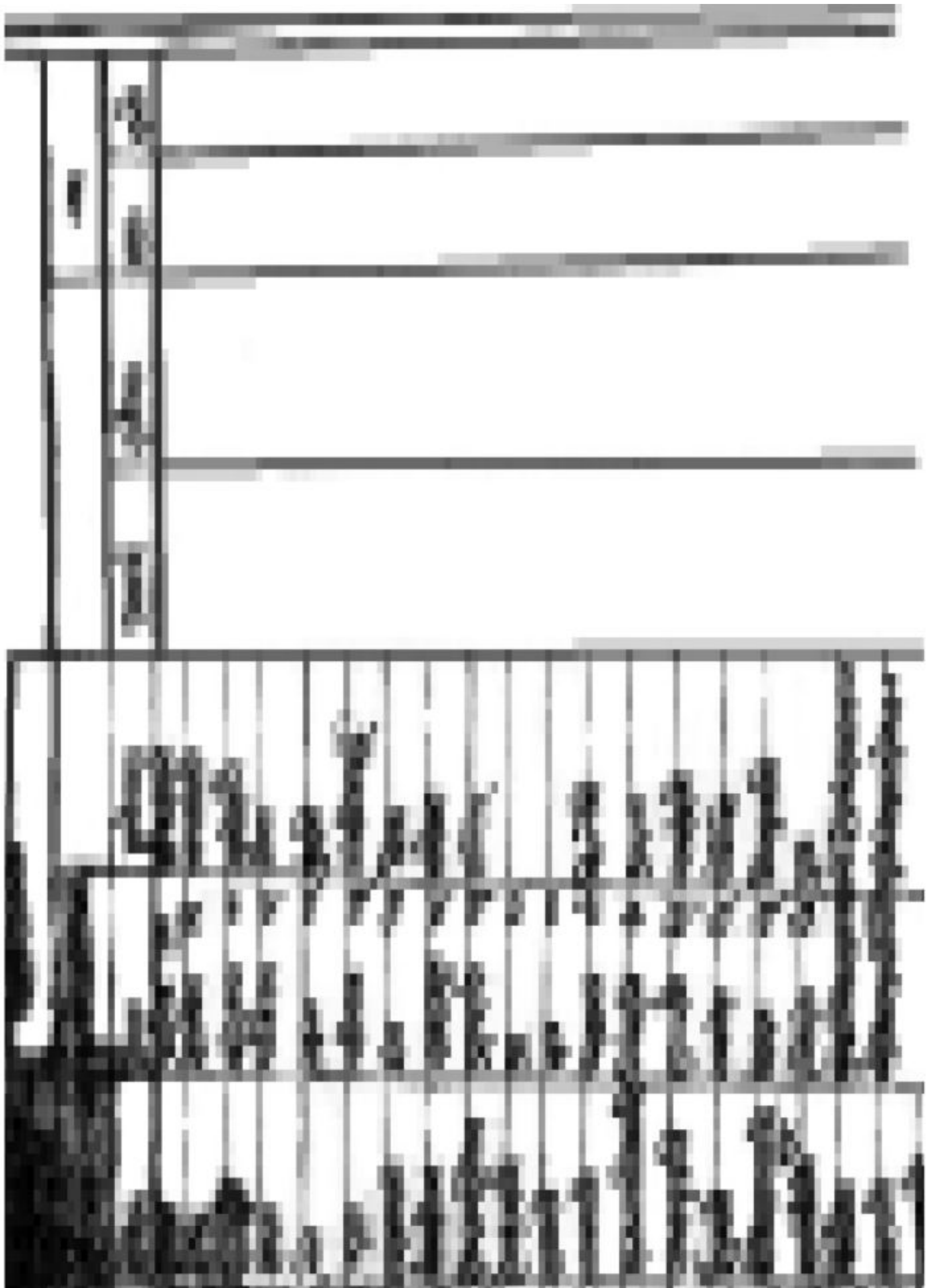

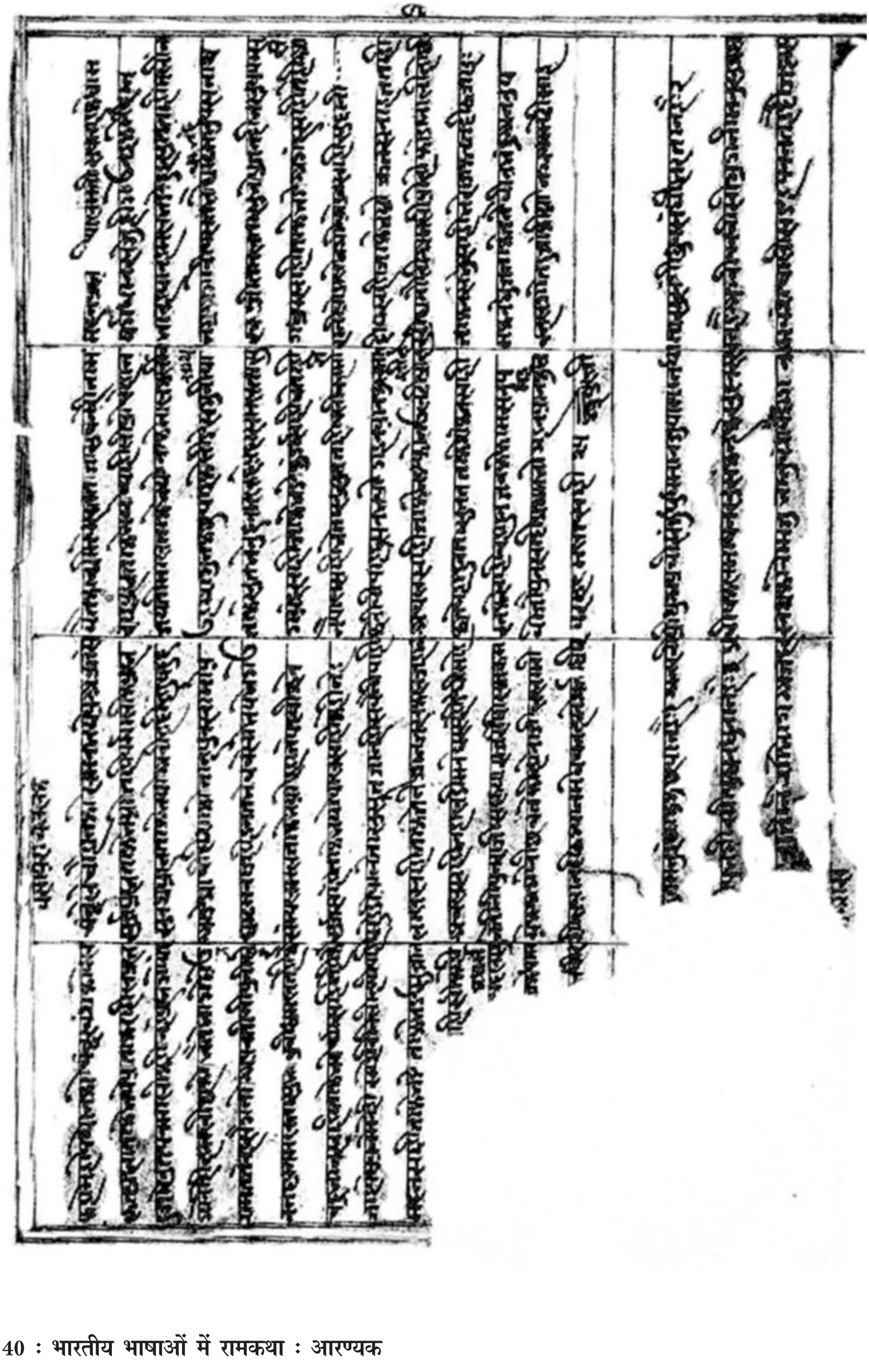

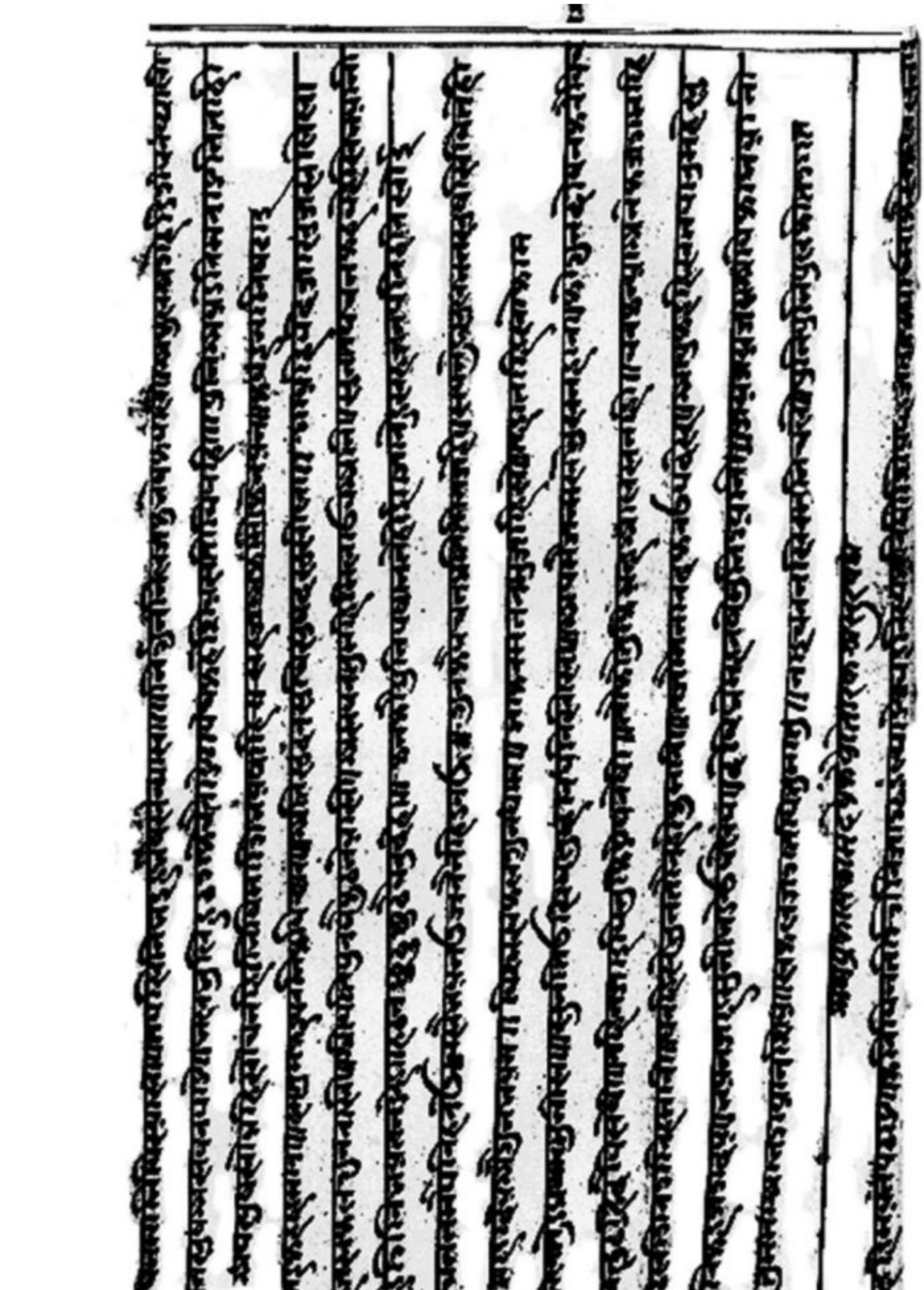

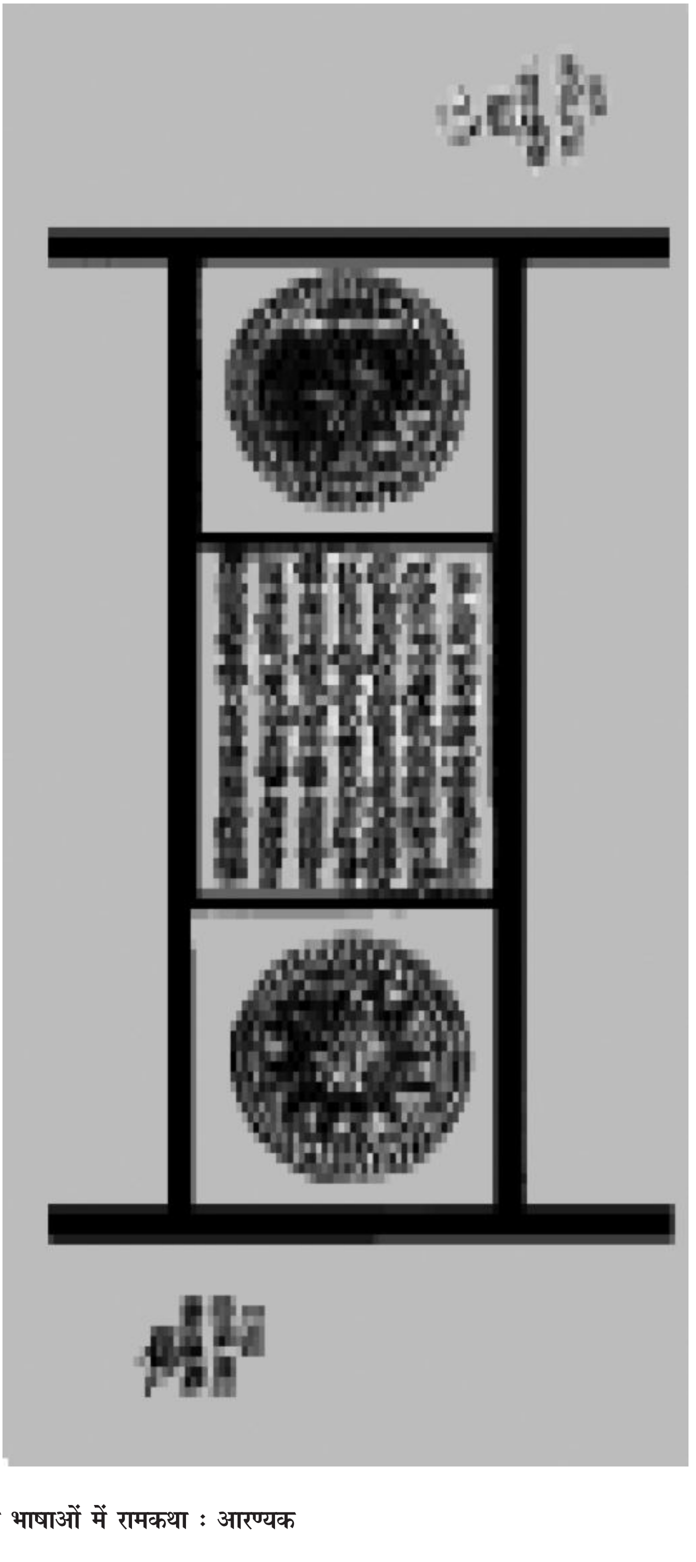

अवधी संस्कार गीतों में रामकथा

डॉ. अनुज प्रताप सिंह

अवधी का मुख्य वर्ण्य विषय रामकथा है। अवध की सबसे बड़ी उपलब्धि है–रामजन्मभूमि होने की। राम की यश–कीर्ति के साथ–साथ अवध और अवधी की कीर्ति भी बढ़ती रही है। रामकथा को स्पर्श कर भाषा और रचनाकार अमर हो गये हैं। राम और कृष्ण की कथाएँ सभी प्रकार से भारत–भूमि को जोड़ती हैं। ये अखण्डता और एकता प्रदान करती हैं। रामकथा उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों को जोड़ती है, तो कृष्णकथा पूर्वी और पश्चिमी ध्रुवों को। उक्त दोनों कथाएँ यहाँ के जन–जन, कण–कण, जल, वायु और आकाश में समायी हुई हैं। रस और गन्ध तथा प्रकृति और पुरुष में ये मिली हुई हैं। इनके स्मरण के लिए आज विश्व भर में तीर्थ बने हुए हैं। यह गर्व की बात है कि हमारी भक्ति वैश्विक रूप को धारण कर चुकी है। सीता स्वयंवर, राम–रावण–युद्ध और महाभारत में भारतेतर लोग भी सम्मिलित थे। कार्य सम्पन्न होने के उपरान्त अवशेष विभूतियों ने राम–कृष्ण की भक्ति का प्रचार–प्रसार अपने–अपने देशों में किया।

इसके साथ लोकजीवन में ये कथाएँ समायी हुई हैं। पीढ़ी–दर–पीढ़ी ये बिना कागज–कलम के लिपि–आविष्कार के पूर्व से चलती आ रही हैं। हमारे संस्कारों में ये पंचतत्व (भू, जल, पावक, गगन और समीर) के समान समाहित हैं। आज गर्भ धारण से मृत्यु तक के संस्कार राम–कृष्ण की कथाओं से जुड़े हुए हैं। हमारे देश की हर माँ कौशल्या, यशोदा और देवकी है तथा हर बालक राम और कृष्ण है। हर पिता दशरथ, नन्द और वसुदेव है। सन्तान किसी के उत्पन्न हो, पर बधाई अवध और गोकुल में ही बजती है, उत्सव दशरथ और नन्द बाबा ही मनाते हैं। यथार्थ रूप से चाहे जो ब्याहने जाय, पर विवाह गीतों में राम और कृष्ण ही गाये जाते हैं। उन्हीं का विवाह भी होता है। यह अक्षय लोकप्रियता का प्रमाण है। ऐसा विश्व के किसी भूखण्ड में नहीं है।

अवधी के तीन स्वरूप मिलते हैं–(1) पूर्वी अवधी, (2) मध्यवर्ती या केन्द्रीय, (3) पश्चिमी अवधी

1. पूर्वी अवधी : पूर्वी अवधी के जनपद हैं–गोंडा, फैजाबाद, सुलतानपुर, अमेठी, प्रतापगढ़ तथा इलाहाबाद। इलाहाबाद तो पूर्वी अवधी लोकगीतों का केन्द्र है। इनके अतिरिक्त केराकत तहसील को छोड़कर शेष सम्पूर्ण जौनपुर जनपद, मिर्जापुर और सोनभद्र (कुछ भाग), बाँध (आधा), चित्रकूट धाम, बस्ती (हर्रैया तहसील) और संत रविदास नगर भदोही (ज्ञानपुर तहसील) भी पूर्वी अवधी की सीमा में आते हैं।

पूर्वी अवधी की अपनी विशेषताएँ हैं। इसी के क्षेत्र में अयोध्या, श्रावस्ती, प्रयाग, चित्रकूट आदि तीर्थ हैं। पर सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र, महाराज रघु, महापराक्रमी राजा दिलीप एवं दृढ़ प्रतिज्ञ राजा दशरथ अयोध्या के प्रसिद्ध राजा थे। राजा दशरथ के सुपुत्र रामचन्द्र को परब्रह्म परमात्मा का पद प्राप्त हुआ।

सरवन पाकर नामक स्थान पर अपने अन्धे माता-पिता को लेकर श्रवण कुमार ठहरे थे। यहाँ प्रतिवर्ष माघ अमावस्या को विशाल मेला लगता है। महाराज रामचन्द्र के पुत्र कुश के कोशल प्रदेश की राजधानी श्रावस्ती यहीं थी जो सम्प्रति 'सहेट-महेट' में खण्डहर के रूप में बिखरी पड़ी है। पूर्वी अवधी में अद्भुत अभिव्यंजना शक्ति भी है। इसके गीतों में अत्यन्त माधुर्य एवं भावोद्भाविनी रसमयता है। इसके अपने निजी छन्द, दोहा, सोरठा, चौपाई, बरवै आदि हैं।

2. **मध्यवर्ती या केन्द्रीय अवधी :** इसके जनपद हैं–रायबरेली, बाराबंकी तथा बहराइच।

3. **पश्चिमी अवधी :** इसके जनपद हैं–सीतापुर, लखनऊ, उन्नाव, फतेहपुर, हरदोई (शाहाबाद तहसील छोड़कर) तथा कानपुर (अकबरपुर तथा डेरापुर तहसीलें छोड़कर)।

ये सभी जनपद वर्तमान उत्तर प्रदेश में हैं। इनके अतिरिक्त यह छत्तीसगढ़ प्रदेश में भी व्यवहृत होती हैं। इनके वक्ताओं की संख्या चार करोड़ से ऊपर होगी। मध्यवर्ती अवधी को बैसवारी भी कहते हैं। यह रायबरेली जनपद की महाराजगंज तथा डलमऊ तहसीलों का अधिकांश भाग और उन्नाव का दक्षिणी-पूर्वी भाग बृहत बैसवारा का क्षेत्र है। इसका केन्द्र बैसवारा है–जिसमें वैस क्षत्रियों की बहुलता है। अतः यहाँ की बोली को बैसवारी या बैसवाड़ी कहा जाता है। बृहत् बैसवारा केन्द्रीय अवधी के रायबरेली तथा पश्चिमी अवधी के उन्नाव जनपद में अन्तर्भुक्त है, तथापि वैसवारी क्षेत्रीय बोली के रूप में अपनी स्वतन्त्र पहचान भी बनाती है। मार्मिकता को अभिव्यक्त करने की इसमें अगाध क्षमता है। इसके लिए अवधी गीतों के विविध संग्रहों को देखा जा सकता है। इन गीतों में ब्रजभाषा की कोमलता और माधुर्य है। अवधी के संस्कार सम्बन्धी लोकगीत हैं–

(क) सीमन्तोन्नयन संस्कार सम्बन्धी लोकगीत–देवीगीत, साध (दोहद), उठान आदि।

(ख) जातकर्म संस्कार सम्बन्धी लोकगीत–देवीगीत, सरिया, सोहर, रोचना, कठुला, झुनुझुन, बधाई आदि के गीत।

(ग) निष्क्रमण तथा नामकरण संस्कार–सम्बन्धी लोकगीत–देवीगीत, बरही, सोहद, उठान, ख्याल आदि।

(घ) चूड़ाकर्म तथा कर्णवेध संस्कार सम्बन्धी लोकगीत–देवीगीत, लफरी, झालर, सुजिया आदि के गीत।

(ङ) उपनयन संस्कार–सम्बन्धी लोकगीत–देवीगीत, साँझ न्यौता, मनछुआ-धनछुआ, तेलमैन, मॉड़व, जनेऊ, नाखुर आदि के गीत।

(च) विवाह-संस्कार-सम्बन्धी लोकगीत–देवीगीत, तिलक, मनछुआ-धनछुआ, साँझ न्यौतना, तेल-मैन, मॉड़व, नहछू आदि के गीत।

इनको क्रम से स्थापित करके रामकथा का अखण्ड रूप तैयार किया गया है। वाद्ययंत्रों पर इनका स्वर पाठ एवं नृत्य किया जा सकता है। मिथिला के रामायणी अभिनय के सात सस्वर गायन करते हैं। लोकगीतों में वर्णित रामकथा में भावनाओं की अविरल धारा है। इसमें कथावस्तु गौण और भावना प्रमुख है। लोकगीतों की रामकथा, लोकमानस के राम और उनकी राममयी कहानी है। लोकगीतों में लोकसंस्कार, सभ्यता, सामाजिक विकास एवं विविध भावनाएँ परिलक्षित हैं। रामभक्ति अवध के लोकजीवन का अंग है। विश्व में व्याप्त रामकथा की पृष्ठभूमि अवधी में मिलती है। लोकगीत जनमानस के पूँजीभूत उल्लास के प्रवाह हैं। इनमें लोकमानस की भावनाएँ, आशाएँ, अपेक्षाएँ और कामनाएँ मिलती हैं। संस्कृति के वे मूर्त रूप और जीवन के प्रवाह इनमें सहजता से मिल जाते हैं। रामकथाओं में इनको बालकाण्ड के भीतर रखा गया है। सभी के उदाहरण इस प्रकार हैं–

(क) सीमन्तोन्नयन संस्कार सम्बन्धी लोकगीत : विवाह के उपरान्त जब कुछ वर्षों तक सन्तानोत्पत्ति नहीं होती तो सारे परिवार में बन्ध्यत्व की आशंका से चिन्ता उत्पन्न हो जाती है। राजा दशरथ को जब किसी रानी से लम्बे काल तक कोई सन्तान नहीं हुई तो वे और उनकी तीनों रानियाँ चिन्तित रहने लगीं। इस गीत में उनकी चिन्ता बड़ी रानी कौशल्या से व्यक्त की गयी है जिसके निवारणार्थ राजा ने अपने कुलगुरु एवं पुरोहित वशिष्ठ से निवेदन किया। उनके प्रयत्न से तीनों रानियाँ गर्भवती हो गयीं। प्रस्तुत सोहर में इसी का उल्लेख किया गया है–

''मचिअइ बइठी कउसिल्या रानी, सुनऊ राजा दसरथ।
राजा! बिन रे सन्तति घर सून, मइं तपसिनि होबइ।।1।।
हंकरउ न नग्र के नउआ, तउ हाले बेगे आवउ हो।
नउआ! जाइ वसिष्ठ बोलावउ, रनिया समुझावइं हो।।2।।
हंकरउ न नग्र के लोनिया, तउ हाले बेगे आवउ हो।
लोनिया! खनि लावउ कन्द मुरइआ, कउसिल्या रानी ओखद।।3।।
अरे-अरे लउंड़ी अउ चेरिया त संग केरी सखिया।
बहिनी! रगि-रगि पिसउ मुरइया, कउसिल्या रानी ओखद।।4।।
एक घूँट घुँटइ कउसिल्या रानी, दुसर केकही रानी।
सिल धोइ पिअइं सुमित्रा रानी त तीनिउ गरभ से।।5।।''

–नसूरा (सुलतानपुर)

एक बार रानी कौशल्या मचिया पर बैठी हुई थीं। उन्होंने राजा दशरथ से निवेदन किया– हे राजन! बिना किसी सन्तान के घर सूना-सा लगता है, (ऐसी दशा में) मैं तपस्विनी हो जाऊँगी।।1।। राजा दशरथ ने यह सुनकर नगर के प्रसिद्ध नाई को कहलवाया–हे नगर के (प्रसिद्ध) नापित! तुम अति शीघ्र जाओ और जाकर पुरोहित मुनि वसिष्ठ को बुला लाओ; वे रानी को समझायें।।2।। वसिष्ठ जी ने नगर के प्रसिद्ध लोनिया को सन्देश भेजा–हे नगर के लोनिया! अति शीघ्र आओ और रानी कौशल्या हेतु कन्द-मूल ओषध खोदकर ले आओ।।3।। लोनिया ने कन्द-मूल लाकर दिया तो परिचारिका ने अपनी साथ की सखी सेविका से अनुरोध किया–हे बहिन! इस मूल (जड़) को धीरे-धीरे पीसो, जिससे भली-भाँति इसका रस निकल आये। यह रानी कौशल्या की ओषधि है।।4।। इसके बाद कौशल्या रानी ने एक घूँट घूँटा, दूसरा कैकेयी रानी ने और सुमित्रा रानी ने सिल धोकर पिया, जिससे तीनों रानियाँ गर्भवती हो गयीं।।5।।

(ख) जातकर्म संस्कार सम्बन्धी लोकगीत : इसमें देवीगीत को स्वतंत्र रूप से मंगल के लिए दिया गया है। इसके अतिरिक्त उठान, सरिया, सोहर, रोचना, कठुला, झुनझुन तथा बधाई के लोकगीत आते हैं।

जब गर्भ पूर्ण हो जाता है, तो शिशु के जन्म का समय निकट जानकर डोमिन/महरिन या दाई को बुलाया जाता है। वे बन–ठन कर अपने घर से निकलती हैं। फिर रघुवंशी राजाओं की डोमिन के साज–शृंगार का तो कहना ही क्या। यथा–

उठान

''रघुबंसिनि घर आई डोमिनियाँ।।टेक।।
झुमका, बीर, चांद भल सोहैं, गल तिलरी भल सोहैं डोमिनियाँ।

बाजूबन्द, टाँड़ भल सोहैं, ककना कै छवि न्यारी डोमिनियाँ।।1।।
लहँगा, चुंदरी, चोली सोहैं, करधन कै छवि न्यारी डोमिनियाँ।
कड़ा-छड़ा, पाजेब बिराजै, बिछुअन कै छबि न्यारी डोमिनियाँ।।2।।
कइके साज चली मदमाती, कवन सकै पहिचानी डोमिनियाँ।
राजा दसरथ देबि मनावैं, सुभ साइति ते आई डोमिनियाँ।।3।।''

–सेंदुरवा (सुलतानपुर)

राम का जन्म होने पर सारी अयोध्या में हर्षोल्लास छा गया। नारियाँ विविध उपहार देकर राजमहल में पहुँचने लगीं। उनकी भेंट में कई प्रकार की वस्तुएँ हैं। सोहर और विवाह संस्कारों के गीत सर्वाधिक हैं। कई गीत कुछ फेर-बदल के साथ अवधी के तीनों रूपों में प्राप्त होते हैं। यहाँ कुछ उद्धत हैं–

''चइत कै तिथि नउमी तै नउबति बाजइ हो।
एइ हो, बाजइ राज-दुआर, कउसिल्या रानी मन्दिर हो।।1।।
मिलहु न सखिया सहेलरि मिलि-जुलि चलतिउ हो।
सखिया, राजा के जनमे हैं राम, करी नेउछावरि हो।।2।।
केऊ नावै बाजूबन्दा, केऊ कजरावट हो।
एइ हो, केऊ दखिनवा के चीर, करै नेउछावरि हो।।3।।''

–पांडे का पुरवा (गोंडा)

चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को राजद्वार तथा कौशल्या रानी के महल में नौबत बज रही है।।1।। एक सखी दूसरी सखीजन से कह रही है कि हे सखियो! हम सब लोग मिल-जुलकर एक साथ चलतीं तो कितना अच्छा होता। राजा (दशरथ) के यहाँ राम ने जन्म लिया है, चलकर हम लोग न्यौछावर करें।।2।। फिर तो सभी राजमहलों में पहुँचती हैं एवं उनमें से कोई बाजूबन्द, कोई कटरौटा और कई दक्षिणी साड़ी न्यौछावर करती हैं।।3।। राम के जन्म पर सभी बहुत हर्ष-विभोर हो गयीं। राजा दशरथ और उनकी तीनों रानियों ने प्रभूत दान-दक्षिणा दी। इस सन्दर्भ में दूसरा सोहर उद्धरणीय है–

''चइतइ कै तिथि नउमी तौ नउबत बाजइ हो।
ये हो, राम लिहिन अवतार, अजोध्या के ठाकुर हो।।1।।
दसरथ पटना लुटावैं, कउसिल्या रानी अभरन हो।
ये हो, ककही रतन पदारथ, सुमित्रा रानी सुबरन हो।।2।।''

–उपाध्यायपुर (सुलतानपुर)

''चैतहि कै तिथि नवमी त नौबति बाजइ हो।
बाजै दसरथ राज दुवार कौसिल्ला रानी मन्दिर हो।।1।।
मिलहु न सखिया सहेलरि मिलि जुलि आवहु हो।
जहाँ राजा के जनमें हैं राम करिय नेवछावरि हो।।2।।
केउ नावै बाजूबन्द केऊ कजरावट हो।
केउ नावै दखिनवा कै चीर करहिं नेवछावरि हो।।3।।
भितरा से निकसीं कौसिल्ला अँगनवहिं ठाढ़ी भई हो।
रानी धइ-धइ हिरदै लगावै करै नेवछावरि हो।।4।।
राम के मथवा चननवा बहुत निकलागै हो।

राम नयन रतनारे कजर भल सोहै।
दीन्हों रचि रचि फूआ सुभद्रा तउ पतरी अँगुरियन।।5।।
राम के मथवा लुटुरिया बहुत निक लागै हो।
जैसे फूलन के बिच बिच कलियाँ बहुत निक लागै।।6।।
राम गोड़वा घुँघुरुवा बहुत निक लागै हो।
नान्हें गोड़वन चलत बकैयाँ देखत राजा दसरथ।।7।।''

यह पं. रामनरेश त्रिपाठी के 'कविता-कौमुदी' तीसरा भाग-ग्रामगीत, पृ. 201-202 से लिया गया है। कैसा स्वाभाविक वर्णन है। इस गीत में आँखों में काजल लगाने की कला की चर्चा है। राम की फूफी यद्यपि सुभद्रा नहीं थीं, पर गीतों में राम और कृष्ण का सारा परिवार एक कर लिया गया है। सुभद्रा के लिए गीत में कहा गया है कि उन्होंने अपनी पतली उँगली से राम की आँखों में बहुत सुन्दर काजल लगाया था। आजकल की स्त्रियों में इस कला का ह्रास होता जा रहा है। अब तो स्त्रियाँ भूत-प्रेत और नज़र-टोना ही के भय से अपने बच्चों की आँखों में काजल लगाती हैं, बल्कि लीपती हैं, पर वे स्वयं अपनी आँखों में भी अच्छी तरह रच-रचकर काजल लगावें तो उनका सौन्दर्य और अधिक मनमोहक हो सकता है।

राम के जन्म के समय से ही अनेक सम्भावनाएँ सामने आती हैं। स्त्रियाँ कहती हैं कि बालक असाधारण है। यही लंका फूँकेगा और अयोध्या को बसायेगा। गीतों से यह भी स्पष्ट होता है कि घर-घर में राग-द्वेष फैलाने में नौकरानियों का कितना हाथ होता है। रावण के आतंक का कुप्रभाव अयोध्या तक था, यह भी स्पष्ट होता है। गीतों में राम के जन्म होने और उनके दर्शन की प्रबल ललक है। अयोध्या राजपरिवार की अभूतपूर्व उपलब्धि बतायी गयी है। सब को दान-दक्षिणा से सन्तुष्ट किया गया था। गीतों में राम के साथ लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न की भी यत्र-तत्र चर्चा है। गीतों में पुनरुक्तियाँ पर्याप्त हैं। शिशु राम के सौन्दर्य का वर्णन सर्वाधिक है। उनका सहज सौन्दर्य आकर्षण का केन्द्र है। राम का जन्म असम्भव को सम्भव में बदल देने वाला है। राजा दशरथ और रानी कौशल्या के जीवन को ही नहीं; अयोध्या का सबसे बड़ा संकट राजा दशरथ का नि:सन्तान होना। इस लोकगीत से सम्पूर्ण वेदना प्रकट होती है-

''सोने के खरउवाँ राजा दशरथ हेलवा बोलावयँ हो।
हेलवा, बरहो बजन लइके आवउ सुनब, सुख सोहर हो।।
बइठि जगावइ हेलनिया, सुनहु राजा हेलवाउ हो।
हेलवा, देखा निरबसिया कै मुँहवा, दइउ केस करिहइँ हो।।
एतनी बचन सुनि राजा दसरथ, जियरा दुखित भयो हो।
राजा गोड़े-मुड़े ताने पिछउरा, सोवयँ धउराहर हो।
बइठि जगावइँ कउसिल्या रानी, उठहु राजा दसरथ हो।
राजा दुधवा कै सीझल रसोइया, करा उठि भोजन हो।
काउ कहउँ कउसिल्या रानी, कहत की लाज लागइ हो।
रानी, जतिया कै पतरी हेलिनिया, कहइ निखसियाउ हो।।
काउ कहउँ राजा दसरथ, कहत की लागइ हो।
राजा, नवयें महिनवा कै पेट, करा उठि भोजन हो।।

होत बिहान लोहा लागत, हरिलवा राम जनमइँ हो।
ए हो, बाजै लागे आनंद बधाव, गावइँ सखी सोहर हो।।''

(पूर्वी अवधी)

यहाँ सोहरों में भी राजा की वेदना और प्रसन्नता को विस्तार से कहा गया है। राजा के पास सभी वैभव हैं, पर सन्तान का दुःख सर्वोपरि है, जो रामजन्म से दूर होता है–

''धनि-धनि नगर अजोध्या, धनै राजा दसरथ-धनै राजा दसरथ हो।
धनि रे कउसिल्ला तोरी कोख, राम जनम लिहिन राम जनम लिहिन हो।
जौने दिन राम जनम लिहिन, पैसेन लुस भइन-रुपयन, लुस भइन हो।
पैसा के बाछे मोहर, रमइया चन्दन सोहै - रमइया चन्दन सोहै हो।।
जौने दिन राम जनम लिहिन, मुहरन लुस भइन मुहरन लुस भइन हो।
मुरहन के नाते पाँच बेसरी, कउसिल्या नाके सोहै-कउसिल्या नाके सोहै हो।।''

(पूर्वी अवधी)

पुत्रजन्म होने पर ग्रह, नक्षत्र, नाम, राशि और भविष्य-ज्ञान के लिए पुरोहित और ज्योतिषी आदि को बुलाया जाता है। राम का जन्म होने पर ज्योतिषी ने जन्माङ्क बनाकर उनके वन-गमन का भविष्य कथन किया, जिससे राजा दशरथ को बड़ी चिन्ता हुई। रानी कौशल्या ने उन्हें कान्ता-सम्मति दे चिन्ता-मुक्त करने का प्रयास किया। प्रस्तुत लोकगीत में इसका वर्णन मिलता है–

''जेहि दिन राम कै जनम भये, धरती अँनद भये हो।
सुर-पुर होइगा उजेर, कउसिल्या रानी मंडित हो।।1।।
हँकड़ो न नग्र के पण्डित, हाले-बेगे आवउ हो।
खोलि दिअउ पोथिया पुरान तौ साइति विचारउ हो।।2।।
भली घरी राम हैं, जनमें औ सुघरै नखत रहा हो।
मुल विआह के थोरेन पाछे ई बन का सिधरिहैं हो।।3।।
अतनी बचनिया सुनतै तौ राजा दुखित भये हो।
राजा गोड़े-मूड़े तानै चदरिया, सोवई धउराहर हो।।4।।
बइठि जगावइँ कउसिल्या रानी, सुनौ मोरे राजा हो।
राजा, छूट बँझिनिया कै नाउ भलेहिं बन जइहैं, लउटि फिरि अइहैं हौ।।5।।''

–चिलौली (रायबरेली)

भारतीय समाज में 'बन्ध्या' होना ठीक नहीं समझा जाता, क्योंकि नारी के जीवन की सार्थकता इसी में मानी जाती है कि वह सन्तानोत्पत्ति के द्वारा पितृऋण से उऋण कराती है। तीन प्रधान ऋण हैं–देवऋण, ऋषि ऋण, तथा पितृऋण। सन्ध्योपासना, यज्ञ एवं धार्मिक कार्य के द्वारा देवऋण से, अध्ययन-अध्यापन एवं सत्साहित्य के प्रचार द्वारा ऋषि-ऋण से तथा सन्तानोत्पत्ति के द्वारा पितृ-ऋण से मुक्ति मिलती है। धार्मिक विश्वास है कि पुत्र या पुत्री के होने पर ही 'पुन्' नामक नरक से त्राण मिलता है। कौशल्या को संतोष है कि राम के उत्पन्न हो जाने से अब लोग उन्हें 'बन्ध्या' तो नहीं कहेंगे। फिर यदि राम वन को जायेंगे तो विश्वास है कि वे लौट भी आयेंगे।

राजा दशरथ जब 50 वर्ष के ऊपर हो गये तो उन्हें पुत्र प्राप्त हुए। 25 वर्ष की अवस्था तक राम ने विधिवत् विद्या अध्ययन किया और वे जब गुरुकुल से राजमहल आ गये तो एक दिन ऋषि विश्वामित्र पधारे एवं राम लक्ष्मण को यज्ञ-रक्षार्थ अपने साथ ले गये। वहाँ उन्होंने इन क्षत्रिय कुमारों को वला

तथा अतिवला नाम की विद्या सिखायी और दो वर्षों तक अस्त्र-शस्त्रों का अभ्यास कराया। इस बीच राम-लक्ष्मण ने विघ्नकारी राक्षसों का विनाश कर विधिव यज्ञ सम्पन्न कराये।

सीता जन्म की गारी–

''एक समय कैलासपुरी में, गिरजा वचन उचारी जी।
सिया-जनम की कथा सुनन को इच्छा त्रिपुरारी जी।
संकर विहँसि उमा से बोले, सुनहु ध्यान धरि बानी जी।
सिया जनम की कथा सुनावउँ, जो है बहुत पुरानी जी।
सखन सहित सरजू तट ऊपर, रघुवर खेल रचाई जी।
विहँग रूप धरि रावन आयो, राम पै घात लगाई जी।।
जानि राम रावन कै माया, बिन फर बान चलायी जी।
बान लगत दसकठा उड़ा जौ, गिरा लंक मुरछाई जी।।
रामचन्द्र के बल हैं तपसी, रावन मन ठहराई जी।
कर लगाइ तपसिन पर दीन्हा, दूतन कहेउ बोलाई जी।
कंचन घट दूतन का दीन्हा, लावहु रकत भराई जी।
नभ बानी भै गगन गंभीरा, यह घट बंस नसाई जी।
नासि सुनत रावन बराना, जनक-नगर गड़वाई जी।
जब से घट मिथिलापुर आयो, जनकराय अकुलाई जी।।
सूखा चरा जनकपुर भारी, बरसा नेकु न पानी जी।
नर-नारी पसु-पंछी ब्याकुल, भूखन परे परानी जी।।
× × ×
राजा जनक पंडित बलवायो, साइत धरी बिचारी जी।
देस-देस के पंडित आये, भीरि भई तहं भारी जी।।
कंचन हर बनवावइं राजा जोतइं राजा-रानी जी।
सुवनर हर तेहि छन बनि आना, जोतइँ दुवहूँ परानी जी।।
हर लागे घट ऊपर आयो, बसन लाग्या पानी जी।
एहि घट से कन्या एक निकरी, सीता नाम धराई जी।।''[1]

इसी प्रकार सीता के पुत्रों के जन्म सम्बन्धी लोकगीत भी हैं–

सरिया छोटी

''दसरथ पुतवा के पूत भे हैं,
कौसिल्या देई नाती भै हैं रे।
सोहइया लाल जनकन धेरिया जुड़ानी,
तौ पितरा अनंद भै हैं, धरती सुखित भै है रे।।''[2]

मंगल : यह जन्मोत्सव गीत है। इसमें लोग शुभकामनाएँ करते हैं, बधाइयाँ देते हैं, गुणगान करते हुए आशीष देते हैं–

''नग्र बखाना अयोध्या, सेजरिया राजा दशरथ सेजरिया राजा दसरथ हो।
सखिया, कोखिया बखानी कउसिल्या रानी, जिनके राम जन्मे हैं हो।।''

लोग पूछते हैं कि हे रानी! आपने कौन से व्रत-नेम किये हैं कि राम जैसा पुत्र कोख में आया। कौशल्या उत्तर देती हैं–एकादशी को मैंने व्रत किया था, द्वादशी को पारन किया और भूखे बाभन को भोजन कराया था, माघ में मकर स्नान किया और आग नहीं तापा था।

आगे के मंगल में राजा दशरथ और रानी कौशल्या की भावनाएँ, उल्लास और दैवी आशीर्वाद की बातें हैं–

''सभवै बइठे राजा दशरथ, देउतै अरज करैं हो।
राजा केहिके भये नंदलाल, उठै घर सोहर हो।।
देउतै पइठे धधाय तौ रानी के महल गये हो।
रानी तुभदे भये नन्दलाला, हमैं कुछ चाही हो।।
देबै सोनै कै सिंहासन, रूपे कै सिंघासन हो।
देउता देबै अयोध्या कै राज, मुरति कइकै पूजब हो।।
देउतै देथै असीस, दूनउँ कर जोरे हो।
रानी, बाढ़ै दसरथ कै बेलि तौ नित उठि पाउब हो।
जो यह मंगल गावै, गाइ कै सुनावै हो।।''[3]

इस प्रकार के विविध मंगल हैं।

रोचन : पुत्रजन्म के उपलक्ष्य में सगे-सम्बन्धियों के पास शुभवस्तु के साथ मंगल सन्देश भेजा जाता है–

''बेरिया कि बेरिया हँकरौ नवा, बेगी चढ़ि आवहु रे।
ए हो, रचि-रचि पिसउ हरदिया, रोचन पहुँचावहु रे।
पहिला रोचन राजा दसरथ, दुसरा कउसिल्या रानी रे।
ए हो, तिसरा रोचन लछिमन देउरा, पपियवा न मानइ रे।।
दसरथ दीहिन घोड़वा, कउसिल्या रानी पटोखा रे।
ए हो, लछिमन दिहिन पाँचौ जोड़वा नउआ रहसि चलेउ रे।।
अतना पहिरि नउआ खड़ा भा असीसइ रे।
ए हो, जिअइ राजा तोर दुलरवा, जहाँ पायउँ इउ अतना।।''[4]

इसी आशय के कठुला, झुनझुन और बधाई आदि के संस्कारगीत हैं,पर सभी को एक लेख में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।

जातक की सेवा-शुश्रुषा, स्वास्थ्य-रक्षा, मनोरंजन आदि के निमित्त परिवार के सदस्यों में कार्य का विभाजन निर्धारित है। सास चेरुआ (ओषधि) तैयार करती है, जेठानी, पीपरि पीसकर पिलाती है, नन्द षष्ठी स्थापित करती है और देवर वंशी बजाता है। साधारणतया छठें दिन षष्ठी देवी की स्थापना की जाती है। उसी समय षष्ठी पूजन के साथ-साथ स्त्रियाँ देवी गीत, सोहर, ख्याल, उठान आदि भी गाती हैं। सभी को अपने-अपने कार्य सम्पादन के लिए नेग भी मिलता है।

(ग) निष्क्रमण तथा नामकरण संस्कार सम्बन्धी गीत : इसमें देवीगीत तो मंगल के लिए होता है। बरही, सोहर, उठान और खयाल आदि संस्कार गीतों में रामकथा मिलती है। शिशुजन्म के बारहवें दिन पहले-पहल सूतिका कक्ष से शिशु को बाहर निकाला जाता है, इसलिए उसको बरही, बरहों या निकासन कहा जाता है। इस अवसर पर बड़े उल्लास से बाजे बजते और सरिया, सोहर,

बरही, उठान तथा खयाल आदि गाये जाते हैं। कभी-कभी कोई उत्साही फूफू (बुआ) इसी दिन बधावा भी लेकर आती हैं। इन लोकगीतों में रामकथा के पर्याप्त स्रोत मिल जाते हैं। अवधी के एक सोहर गीत में कैकेयी की वर-याचना भी है। रानी कौशल्या बरही में आने के लिए सभी को निमंत्रण भेजती हैं, किन्तु वैर-विरोध के कारण कैकेयी को नहीं बुलातीं; इससे स्वाभिमानी कैकेयी रानी का सापत्न्य की ज्वाला भभक जाती है और वह कामासक्त राजा से राम के वनवास तथा भरत की राजगद्दी की याचना करती है–

''अरे-अरे कार भँवरवा, करिअइ तोरी जतिया हो।
भँवरा, आज मोरे राम कै बरहिया, नेवत दइ आवहु हो।।1।।
आइ गये अरगन-परगन रामा ननिआउर हो।
राजा एक नहीं आई केकही-केकही मोरी बैरिनि हो।।2।।
सोने के खरउआँ राजा दसरथ केकही के महल गये हो।
रानी, कवन बिरोग तोरे जिअरा, अँगन नाहीं आइउ हो।।3।।
एक मंगन मइँ माँगउँ, जउ बिधि पुरवइ हो।
राजा, राम का दिहेउ बनवास, भरथ राजगद्दी हो।।4।।''[5]

इसी सन्दर्भ में हरिणी की व्यथा और याचना का एक सोहर है–

''छापक पेड़ छिउलिया त पतवन घन बन हो।
ये हो, तेहि तर ठाढ़ि हरिनिया त मन अति अनमन हो।।1।।
चरतइ चरत हरिनवा तौ हरिनी ते पूछइ हो।
हरिनी, की तोरे चरहा झुराने कि पानी बिन मुरझिउ हो।।2।।
नाहीं मोरे चरहा झुराने, न पानी बिन मुरझिउँ हो।
ये हो, आज हवै राजा के बरहिया तुहइँ मारि डइहइँ हो।।3।।
मचियहि बइठी कउसिल्या त हरिनी अरज करइ हो।
रानी मँसवा तौ सिझइ रसोइयाँ, खलरिया हमैं देतिउ हो।।4।।
पेड़वा मं टंगबइ खलरिया, मनइ समझइबइ हो।
रानी, नित उठि दरसन करवइ मनउ हरिना जीतइ हो।।5।।
जाउ हरिनि घर अपने खलरिया नाहीं देबइ हो।
हरिनी खलरी कै खँजड़ी मढउबइ त राम मोरे खेलिहइं हो।।6।।
जब-जब बाजइ खंझड़िया, सबद सुनि अनकइ हो।
ये हो, ठाढ़ि ढेखुलिया के निचवा त हरिनी बिसूरइ मनहिं मन सोचइ हो।।7।।''[6]

प्रस्तुत लोकगीत में राज-परिवार के भोग-विलासमय जीवन तथा वैभव-प्रदर्शन का जीवन्त उदाहरण है। राजा दीन-हीन प्रजा को पशुवत् समझता है और अपने साधारण-से मनोरंजन के लिए प्रजा का सब कुछ नष्ट कर देता है। उसकी साधारण सी याचना (जिसका प्रजा के लिए बहुत महत्त्व है) को अपने तुच्छ स्वार्थ के पीछे ठुकरा देता है। हरिणी दयनीय प्रजा के प्रतीक रूप में है। यह लोकगीत संवाद शैली का अच्छा उदाहरण है। इसमें हरिणी तथा हरिण और रानी कौशल्या का वार्तालाप अति करुणाजनक है।

पहले शिशु-जन्म के दसवें दिन नामकरण संस्कार भी हो जाता था, किन्तु आजकल जैसे कई अन्य संस्कारों का लोप हो गया है या जैसे एक के साथ ही दूसरे को भी निपटाने की प्रवृत्ति हो गयी है, वैसे

ही अब निष्क्रमण संस्कार के साथ ही नाम भी रख दिया जाता है और नामकरण संस्कार की पूर्ति मान ली जाती है। शिशु के जन्म के छठे महीने अन्नप्राशन संस्कार होता है। इसको लोकभाषा में पसनी कहा जाता है। इस अवसर पर भात में दही, मधु तथा घी मिलाकर पहली बार शिशु को अन्न खिलाया जाता है। लोकगीतों में रामकथा से सम्बन्धित जन्मोत्सव की ही भाँति देवीगीत, सरिया और सोहर गाकर कार्य को सम्पन्न किया जाता है। इस अवसर पर राम तथा अन्य तीनों भाइयों को खीर खिलाने का विशेष वर्णन मिलता है। अब इसका महत्त्व कम होता जा रहा है।

(घ) चूड़ाकर्म तथा कर्णवेध संस्कार सम्बन्धी लोकगीत : अन्नप्राशन संस्कार के उपरान्त वर्षान्तर्गत या तीसरे वर्ष चूड़ाकर्म संस्कार होता है जिसे अवधी भाषा में मुँडन कहा जाता है, क्योंकि इसमें प्रथम बार शिशु के बाल मूँड़े जाते हैं। इस अवसर पर नापित अपने अस्तुरे से दशरथ के चारों बालकों के सिर के बाल साफ करता है। महिलाएँ इस अवसर पर देवीगीत, सरिया, सोहर, उठान, ख्याल और मूड़न तथा झालर गीत गाती हैं। राम के मुँडन संस्कार के गीत यत्र-तत्र मिलते हैं। वास्तव में जब शिशु गर्भ में आता है, तभी से उसपर माता-पिता के आचरण तथा परिवार के वातावरण का प्रभाव पड़ने लगता है, जो आगे चलकर उसके जीवन में अपना स्थान बना लेता है। घर की दीवारों पर देवी-देवताओं, अवतारों, महापुरुषों, भक्तों, साहित्यकारों, क्रांतिकारियों आदि के चित्र लगाने तथा उनकी मूर्तियाँ रखने से घरेलू वातावरण सौम्य बना रहता है। गीतों से पता चलता है कि अयोध्या के राजभवन में भी मांगलिक चित्र उरेहे गये थे। राम पर इनके पूर्वजों का प्रभाव भी दर्शाया गया है।

कर्णवेध को लोकभाषा अवधी में कनछेदन या छेदन कहा जाता है। यह शिशु-जन्म के तीसरे वर्ष चूड़ाकर्म के साथ या पाँचवें वर्ष किया जाता है। इसमें कुशल नाई से शिशु के दोनों कानों में छिद्र कराया जाता है, फिर उनमें सोने या चाँदी की बाली पहना दी जाती है। छेदन के समय देवीगीत, सोहर, उठान आदि गाये जाते हैं। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न की कर्ण-छेदन की चर्चा लोकगीतों में है।

(ङ) उपनयन संस्कार-सम्बन्धी लोकगीत : इस संस्कार में यज्ञोपवीत की प्रधानता होने के कारण इसे यज्ञोपवीत संस्कार भी कहा जाता है, जिसे अवधी में जनेऊ कहते हैं। यह संस्कार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है जिनका लोक और शास्त्रों में उत्तम विधान है। जिस दिन जन्म हुआ हो अथवा जिस दिन गर्भ रहा हो, उससे आठवें वर्ष में ब्राह्मण के, ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय के और बारहवें वर्ष में वैश्य के बालक का उपनयन होना चाहिए। इसके उपरान्त उपनयन करना पड़े तो ब्राह्मण का 16, क्षत्रिय का 22 तथा वैश्य का 24 वर्ष तक हो जाना चाहिए। मुख्य संस्कार के ही दिन पहले से विविध लोकाचार होने लगते हैं, किन्तु उनमें से चार दिन तो महत्त्वपूर्ण होते हैं। प्रथम दिवस–मनछुहा, धनछुहा, देवीगीत, भिनसरिया, चकिया, कँड़िया, साँझ मनाना। द्वितीय दिवस–तैल-पूजन, मण्डप व्यवस्था, मण्डप छाते समय, कलश रखते समय, पीठासन रखते समय, दीपाधार रखते समय, कोइलरि या पेरीगीत। तृतीय दिवस–मातृपूजन, कलश गोंठना, सिलपोहनी, देव-निमंत्रण, पितर निमंत्रण, बरजई। चतुर्थ दिवस–यज्ञोपवीत, बरुआ जेवाना, मातन की भीखी गीत, बरुआ नहान, यज्ञोपवीत धारण, जनेऊ गीत, मान-दान गीत, नाखुर या नहछू, काशी गमन। प्रातः के कार्य गीतों के अनुसार होते हैं। इनसे सम्बन्धित रामकथा बहुत पावन है। राम तथा उनके भाइयों का लोक और शास्त्र के अनुसार संस्कार हुआ था। कुछ उदाहरण दर्शनीय हैं–

> **''सोने के खड़ाऊँ राजा दशरथ ठाड़े पंडित पुकारइँ हो।**
> **अरे अरे पंडित बशिष्ठ जी मोरे अरज ओनाव।**

आठ बरिस के रमइया उन्हें देतेउ जनेउना।।1।।
इतना सुनिन हैं वशिष्ठ जी मलिआ बुलावइँ।
माली पानेन मड़वा छवावउ कलसा धरावउ।।2।।
आठ बरिस कै दुलरवा मड़ये तर ठाढ़े।
सिर वाके घाम लागैं पाँव भूँभुरि लागै हो।।3।।
अरे अरे माय कौसिल्ला रानी उठि भीख संठारउ।
आठ बरिस के रमइया चन्द्र मँड़ये तर ठाढ़े।।4।।

अनेक कार्यक्रम एक-एक गीत में हैं। गीतों से स्पष्ट है कि राम-लक्ष्मण के मन में यज्ञोपवीत लेने की अत्यन्त चाह थी। राम का जनेऊ बहुत उल्लास के साथ लोक और शास्त्रीय रीति से सम्पन्न हुआ था। सभी को दान-दक्षिणा भी पर्याप्त दी गयी थी। इसको व्रत-बन्ध भी कहा गया है।

नहछू जनेऊ के पूर्व गाया जाता है–

''घर-घर घुमहि नउनिया तौ गोतिनी बुलावै।
राम लक्षन कै नहछु सभै कोई आयो।।1।।
पाँच पाट के जाजिम झारि बिछाओ।
जेकरे जहाँ मनु होय तहाँ ते बैठौ।।2।।
केई दीना चुटकी मुँदरिया केई दीना सूप।
केई दीना रतन जड़ाऊत भरिगा ह सूप।।3।।
केकई ने चटकी मुँदरिया कौसिल्या रानी सूप।
सुमित्रा रानी रतन जड़ाऊ तौ भरिगा ह सूप।।4।।
पातर पातर अँगुली तौ नाउनि गोरी।
करत राम जीव कै नहाछू तौ घूँघुट खोली।।5।।
नौआ जे झगरै नउनिया से यह सब थोर।
राम लछन जी कै नहछू लेबौं मैं घोड़।।6।।
जनि झगरौ नौआ रे जनि अगरौ यह सब थोर।
राम व्याहि घर लौटैं तौ देव्यौं मैं घोड़।।7।।''[7]

इसी को नाखुर भी कहा जाता है। बरुआ (जिसका जनेऊ होता है) को नहलाने का गीत आदि लोकप्रिय है।

''के तौ सगरा खनावा औ घाट बँधाना,
केकर भरयँ कहार, बरआ नहुवावयँ।
राजा दसरथ सगरा बनावा औ घाट बँधावा,
केकही के भरयँ कहार, बरआ नहुवाययँ।
केन डावयँ चुटकी मुँदरिया, केन डावयँ सूप;
केन डावयँ रतन पदारथ, भरिगा है सूप।
कउसिल्या डावयँ चुटकी मुँदरिया, सुमित्रा डावयँ सूप,
केकही डावयँ रतन पदारथ, भरिगा है सूप।''

वरुआ सबसे भीख माँगता है। उसको भीख रूप में सगे सम्बन्धी यथाशक्ति दान देते हैं। राम भी भीख माँगते हैं। ऐसे अवसर पर भीखी लोकगीत गाया जाता है।

(च) विवाह संस्कार सम्बन्धी लोकगीत : विवाह संस्कार में तिलक, विवाह, बारात, गौना आदि से सम्बन्धित गीत गाये जाते हैं। ऐसे अवसरों पर विशेष रूप में देवीगीत, तिलक, मनछुआ, धनछुआ, साँझ न्यौतना, तेल, मैन, माँड़व, नहछू आदि गीत गाये जाते हैं।

तिलक (वर)

''यक दिन सीता क जनकन देखा, अब बेटी भई है सँजोग।
उत्तर ढूँढ्यो दक्खिन, ढूढ़ेउँ सब गुजरात।
यह नाहीं ढूँढ्यो मैं नग्र अयोध्या, जिन घर राम कुँवार।।
नउवा ने जाय जोहारा दसरथ जिअ, तिलकन सइत विचार।
माचेयन बइठी है रानी कउसिल्या, सुनौ राजा बात हमारि।
आये तिलक कोऊ नहिं फेरइ, सुनि लिअउ बात हमारी।।''[8]

तिलक (लगन) कन्या के घर से वर के घर को जाते समय–

''कहवाँ केरे बरुआ बाभन त कहँवाँ लगन लिहे जाई जी।
रूपे के थार, सोने के कटवा, नरिअर-पान-जनेऊ जी।
बाहर से राजा भितर हसिगे, रानी से मत लइ आई जी।।
कहउ तउ रानी तिलक चढ़ाई, नाहीं फिरि घर जाई जी।
काहे क राजा, फिरि घर जइहै, राम कइ तिलक चढ़ाई जी।।''[9]

दोनों पक्षों से तिलक के गीत पर्याप्त हैं। कुछ पंक्तियों को छोड़कर प्राय: गीतों में एक बात ही है। रायबरेली क्षेत्र में गाया जाने वाला तिलक-गीत विशेष भिन्नता रखता है–

''राम जिउ कहैं चलौ भइया लक्ष्मिन।
चलौ भइया चली ससुरारी
मोरे रघुवंसी हो बरना।।टेक।।
जाय कै पहुँचे, जनक फुलवरिया-2
सीता रखावैं फुलवारी, मोरे...।।1।।
कोहि की अहिउ तुम, बारी दुलारी-2
कोहि कै रखावौ फुलवारी, मोरे...।।2।।
राजा जनक की हम, बारी दुलारी-2
सिउ कै रखावौं फुलवारी, मोरे...।।3।।
जौ तुम अहिउ राजा, जनक कुँआरी-2
बइठौ न बगल हमारी, मोरे...।।4।।
कइसे बइठौं, बगल तुमाही-2
अबहीं तौ बारी कुँआरी, मोरे...।।5।।
हमरे बबइया के, अजब धनुख है-2
टुटिहै तौ होइहै बियाह, मोरे...।।6।।
राम कहैं जौ, चलौ भइया लछिमन-2
चलिकै धनुख उठावौ, मोरे...।।7।।
जौ हम भइया, धनुख उठउबै-2
तुम भइया रहिहौं कुँआर, मोरे...।।8।।

धनुख तूरि राम, खंड किहिन है-2
सीतै बेहि लै जायँ, मोरे...।।9।।''[10]

इन गीतों से क्षेत्रीय चरित्र और संस्कार का भी पता चल जाता है। इनसे बननेवाले बिम्ब अतीत को सर्व समक्ष कर देते हैं।

परम्परागत रूप से तिलक के अवसर पर कन्या-पक्ष से लोग आते हैं, जो अपने साथ फल, मिष्ठान्नादि लाते हैं। कन्या का भाई या उसके अभाव में घर का कोई अन्य व्यक्ति वर का तिलक करता है। उसके उपरान्त विवाह सुनिश्चित हो जाता है। तिलक के समय नारियाँ तत्सम्बन्धी गीत गाती हैं।

विवाह-तिलक के उपरान्त विवाह की तिथि (लगन) निश्चित हो जाती है। विवाहगीत दो पक्ष के हैं-(क) वरपक्ष (ख) कन्यापक्ष।

वेशभूषा (वरपक्ष)-बँदरा (बन्ना)

''खेलैं-खेलैं कउसिल्या की गोद, रामचन्द्र दुलहा बने।।टेक।।
दुलहा के माथे ओ चन्दन सोहैं, तेरे टीका पै नाचै मोर।।रामचन्द्र...।।
दुलहा के काने कुण्डल सोहै, बाली पै नाचै मोर।।रामचन्द्र...।।
दुलहा के अंगे ओ जामा सोहै, तेरी जमदारी पै नाचै मोर।।रामचन्द्र...।।
दुलहा के पायें जो मोजा सोहै, तेरे चप्पल पै नाचै मोर।।रामचन्द्र...।।''

× × ×

''रामहि चले हैं वियाहन, रिमझिम बाजन;
अरे आली, उपरा सुगन मेड़राइँ हमहूँ चलबै बिअहन।।''

× × ×

''रंग भीना बना रघुनाथ बना।।टेक।।
राजा जनक के द्वार पै, भारी लागी भीर।
संभु पिनाक न उठै उठाये, हारे सबै रनधीर।।
धनु तोरा ओंहीं रघुनाथ बना।।1।।
राजा जनक के द्वार पै, चौपड़ बनी सतरंग।
जनकराज ने बाजी हारी, हारे सीता के संग।।
सीता व्याहा ओंही रघुनाथ बना।।2।।''

विश्वामित्र को चिट्ठी मिली; सीता स्वयंवर की। वे राम-लक्ष्मण को लेकर मिथिला जाते हैं। एक लम्बे विरहा पे सीता स्वयंवर का वर्णन है। बन्ना गीतों पर मुगल सभ्यता जामा पहनावा का प्रभाव है।

बड़ी सम्पन्नता उल्लास के साथ अयोध्या से जनकपुर के लिए बारात जाती है। राम-गारी में इसका उल्लेख है। राम जनकपुर के आकर्षण के केन्द्र बन जाते हैं। उनका अभूतपूर्व सम्मान होता है-

''जेहि दिन राम जनकपुर आयेन, देखन धाई सारी दुनिया, सीताराम से बनी
चन्दन की पिढ़ई बनि आई; बइठे उइ चारिउ भइया, सीताराम से बनी।
खाँड़ चिरउँजी औ भोजन आये, देत्थींसखी सब गारी, सीताराम से बनी।
हम तौ अही लखयतिया के ठाकुर हमैं देउ केस गारी, सीताराम से बनी।
जौ तु अह्या लखपतिया के ठाकुर, काहैं क आया ससुरारी, सीताराम से बनी।''

सीता–राम–लक्ष्मण के फुलवारी में मिलने के गीत बहुत हैं। राम–सीता के आकर्षण की बातें भी हैं।

विवाह (कन्या पक्ष)

कन्या के विवाह का प्रारम्भ वर खोजने से चलता है। सीता के अद्‌भुत गुण, बल और सौन्दर्य को देखकर उनको चिन्ता होती कि इसके योग्य मैं वर कहाँ पाऊँगा? सीता जी बायें हाथ में शिव का धनुष लेकर दाहिने हाथ से चउपारि लीप देती हैं–

''राजा जनक की बारी चउपरिया, सीता लिपहिं चउपारि।
जब-जब देखइँ ओहि चउपरिया, को रे लिपा चउपरिया।
राजा राजकुँआरी बोलाइनि, लिहिनि जाँघ बइठाइ।
कइसे मेरी बेटी धनुख उठायउ, कइसे लिपेउ चउपरिया।
सुरही गइया कै गोबरा मँगायउँ अउर गंगा जुड़ पानि।
बायें हाथ मोरे बाबा धनुख उठायउँ, दहिनी लिपेउ चउपारि।
अइसनि धीया रे नउजी कोखी जनमइ, मोरे जिया भवा बिरोग।
छोट हेरउँ तौ धरम नसावउँ, बड़ नहिं डीठि संमाय।।''

लड़कियाँ शिव–पार्वती से वर–याचना करती हैं। सीता जी भी फुलवारी के शिव जी से श्रीराम को वर रूप में माँगती हैं–

''देउ न मोरी माई बाँसे क डेलैया फुलवा लोढ़न हम जाब।
फुलवा लोढ़त भइली खड़ी दुपहरिया हरवा गछत भइली साँझ रे।।1।।
घुमरि घुमरि सीता फुलवा चढ़ावैं शिव बाबा देलेन असीस।
जौन माँगन तुहुँ माँगौ सीतल देई उहै माँगन हम देब।।2।।
अन धन चाहैं जो दिहा शिव बाबा स्वामी दिहा सिरी राम।
पार लगावैं जे मोरि नवरिया जेहि देखे हिअरा जुड़ाइ।।3।।''

राम को पाने की उनमें उत्कट अभिलाषा है। उनकी प्राप्ति पर वही नहीं, उनकी सखियाँ भी सीता के भाग्य और तप की सराहना करती हैं।

विवाह में भी नहछू या नाखुर के गीत कन्या और वर के नख काटते समय गाये जाते हैं। नाखुर गीत पर्याप्त संख्या में हैं, सीता का विवाह शास्त्र और लोकरीति से सम्पन्न होता है। धनुष टूटने पर जयमाल से हुआ था। इस अवसर का फगुआ–धमार गीत दर्शनीय है–

''सिया डारौ राम गले जै माल।।टेक।।''

तदनन्तर शास्त्रीय और लोकरीति से मण्डप में हुआ। विवाह में सिन्दूरदान या सिन्दूर बहोरने का बहुत महत्त्व होता है। इस प्रसंग का एक गीत दर्शनीय है–

''परदा का ओट करा मोरे बाबा,
सीता कै सेंदुरा बहोर रे।
सेंदुरा बहोरी जब लौटी गौरा देई,
रामा हँसे मुसुकाय।
सीता-गौरा एकै कोखी जनमी,
गौरा सँवरि, सीता गोरि।।

देवरी के भीतर से बोली गौरा देई,
रामा हँसे मुसुकाय।
रामा-लक्षिमन एकै कोखी जनमें,
रामा सँवर, लछिमन गोर।।

सतभँवरी या सप्तपदी का भी वर्णन है। माँड़व में गाँठ जोड़कर वर-वधू अग्नि-वेदी की परिक्रमा करते हैं। छह चक्र के उपरान्त सातवें चक्र में कन्या परायी या ससुराल की हो जाती है। विधिवत विवाह के उपरान्त प्रात: या बड़हार के संस्कार होते हैं। राम कलेवा करते हैं; उसकी गाली गाई जाती है–

''राजा जनक घर कन्या जौ उपजी, सीता है बारी कुँबारी जी।
हँकरौ न नग्र के तुम नउआ-बरिया, सीता जोग वर ढूँढ़उ जी।
पुरबा में ढूँढ़ेउँ पछुआ मैं ढूँढ़ेउ, ढूँढ़ेउँ मैं दिल्ली गुजरात जी।''

आगे की पंक्तियों का आशय है कि लाख प्रयत्न के उपरान्त राम वर के रूप में मिले, पर ये भी सीता के योग्य वर नहीं हैं। सोल्लास विवाह के सभी संस्कार होते हैं। गजमोती से चौक पुराया जाता है। सखियों के बीच सीता मण्डप में लायी जाती हैं। गंगा-स्नान भी कराया जाता है। जेवनार का गीतों में भव्य वर्णन है। लोग आश्चर्य करते हैं कि सीता का बनाया भोजन इतना अच्छा है, तो सीता कितनी सुन्दर होंगी। सीता का गुणगान किया जाता है। इसके उपरान्त व्याहाभात के समय की रामगारी है–

''राम लखन दूनौं व्याहन आये, भरिभा है जनक दुआर कि हाँ जी।
गंगा जी से जल भरि लावौ, पाँव पखारैं नउआ बारी कि हाँ जी।।
चन्दन की पिढ़ई बनि आई, पाँतिनि-पाँति बिछाई कि हाँ जी।
पानन की पतनी बनि आई, लेउँगन डोम डोमी कि हाँ जी।।
झिनवा कै भात जतन से रींध्यो, मुँगवा कै दालि बघारी कि हाँ जी।
मइदा की रोटी जतन ते सेक्यो, घिअना मँ दिह्यो चभोरी कि हाँ जी।।
अमवा औ भँटवा, खरिका-रसाजै, परवर की तरकारी कि हाँ जी।
निहुरे-निहुरे परसै जनक जी, धोतिया धुमिल ह्वै जाय कि हाँ जी।।
जेवन बइठे हैं राम और लक्षिमन, देति सखियाँ सब गारी कि हाँ जी।
अइसे ललन का गारी नही ना, एक बाप तीनि महतारी कि हाँ जी।।
ई गारी कै माख न मान्यो, गारी मिलै बड़ी भागि कि हाँ जी।
माख कै कउनिउ बात नहीं सखि, गारी लगैं अति प्यारी कि हाँ जी।।''[11]

विवाह के उपरान्त सीता जी की विदाई होती है, सखियाँ रोती-बिलखती हैं, पुन: मिलने की सम्भावना से उदास होती हैं।

विवाह के उपरान्त गौना होता है–

''लेन गवनवा, आये दूनो बालक।।टेक।।
हँसि-हँसि पूछै सखिया सहेलरी।
कउन है देवरा; कउन सजनवा।। आये।।
दै आचर सीता मुस्क्यानी,
गोरे हैं देवरा, संवरे सजनवा।। आये।।

रोय कै सीता चढ़ी हैं पालकी,
अब के गये कब होइहैं मिलनवा।। आये।।''

परछन के गीत मिलते हैं।

सीता जी के परित्याग और लव-कुश के जन्म के साथ भी संस्कार गीत हैं। इसी अवधि में राम याज्ञिक कर्म करते हैं। लोग परामर्श देते हैं कि बिना धर्मपत्नी सीता के यज्ञ करना उचित नहीं है–

''चइतइ कइ तिथि नउमी, राम जग्गि रोपा हो।
रामा, बिन सीता जगि सून, सितइ लइ आवहुँ हो।''

वसिष्ठ और लक्ष्मन जी उनको लेने जाते हैं। सीता-परित्याग की घटना का स्मरण होता है। वे स्नान करके झरोखे से देखती हैं कि गुरुजी और देवर लक्ष्मण आ रहे हैं। शीतल जल से वे वसिष्ठ जी के चरण पखार कर माथे लगाती हैं। बुद्धिमती सीता परित्याग का स्मरण दिलाकर न जाने की विवशता व्यक्त करती हैं। वसिष्ठ जी उनसे अयोध्या वापस चलने के लिए कहते हैं। अतीत की घटना (परित्याग) को भूल जाने के लिए वे कहते हैं। सीता जी अद्‌भुत उत्तर देती हैं। इससे उनके पावन संस्कार की अभिव्यक्ति होती है–

''तुम्हार कहा गुरु मनबइ, परग पाँच चलबइ हो।
गुरु जी, उलटि हियउँ चली अउबै, अजोध्यइ न जाइब हो।।''[12]

इसके उपरान्त उनके हृदय में अयोध्या, कौशल्या, लक्ष्मण, राम, सरयू और दशरथ आदि के प्रति पावन भाव हैं। वे माँगन में इन्हीं को पुनः पाने की कामना करती हैं। एक सोहर गीत में उनके उच्च संस्कार व्यक्त हैं–

''पहिला मँगन सीता माँगइँ जौ विधि पुरवै,
जौ विधि पुरवइ हो।
सीता माँगइ कउसिल्या ऐसी सासु, ससुर राजा दसरथ
ससुर राजा दसरथ हो।
दुसरा मँगन सीता माँगइ, जौ विधि पुरवइ
जौ विधि पुरव हो।
सीता माँगइ अयोध्या कै राज, सरजू असनान
सरजू असनानइँ हो।
तिसरा मँगन सीता माँगइ, जौ विधि पुरवै
जौ विधि पुरवइ हो।
सीता माँगइँ लछन अस देउरा, पुरुख राजा रामचन्द
पुरुख राजा रामचन्द हो।।''[13]

सन्दर्भ

1. 10/1. कविता-कौमुदी - ग्रामगीत : सं. रामनरेश त्रिपाठी, पृ. 138-139, 140, 141, 142
2. 12/1. पूर्वी अवधी
3. 13/1. रायबरेली

4. 13/2 रायबरेली
5. 14/1. रायबरेली
6. 15/1. पीढ़ी किरतनिया (सुलतानपुर)
7. 16/1. दुबेपुर (सुलतानपुर)
8. 19/1. एटा
9. 20/1. पश्चिमी अवधी, लखनऊ
10. 21/1. पश्चिमी अवधी
11. 22/1. रायबरेली
12. 26/1. रायबरेली
13. 27/1. रायबरेली

ब्रज-लोकवार्ता में श्रीराम कथा-प्रसंग

डॉ. मालती शर्मा

मेरे शोध–आलेख के क्षेत्र में, भाषायी ब्रज के राजस्थान के कुछ सीमावर्ती शहर–भरतपुर, धौलपुर और ग्वालियर संभाग आता है। यहाँ पहले लोकगीत की अवधारणा और संरचना स्पष्ट करना चाहूँगी; ताकि लोक–रामायण की पृष्ठभूमि और व्याप्ति सुसंगत हो सके। किसी भी भाषा–बोली का लोकगीत, इसमें लोकगीतों के सभी प्रकार और रूप शामिल हैं, लोक रचित गीत, लोकप्रिय गीत और लोक–प्रचलित गीतों का सम्मिश्रण होता है। वह किसी व्यक्ति विशेष का रचा, उसकी छाप लिए भी उसका ही गीत नहीं रह जाता। वाचिक परम्परा में उसका निर्वैयक्तीकरण की प्रक्रिया में गीत में कुछ शब्द, एक दो कड़ी तक जुड़ते–छूटते चलते हैं। सूर, तुलसी, मीरा के पद, कबीर, रहीम की साखियाँ छाप के बावजूद भी उनकी नहीं रह जातीं। लोककवि इनकी छाप उड़ा कर गीत में परिवर्तन कर लेते हैं और कभी–कभी इनकी छाप अपनी रचनाओं को दे देते हैं। अपने शोध में मुझे किन्हीं अज्ञात तुलसीदास की फुटकर पदों में लिखी रामायण के करीब 40 पद मिले हैं। पर इनके जीवनवृत्त का पता नहीं लगा। इनके साथ तुलसीदास की 'गीतावली' के भी कुछ पद हैं, जिन्हें पहचानना कठिन नहीं है।

अनादिकाल से राम और कृष्ण हमारे भारतीय जीवनमूल्यों के प्रकाश–स्तम्भ रहे हैं। ये दोनों महान लोकनायक जैसे भारतीय लोकजीवन के सूर्य–चन्द्र हैं। इनकी जीवनगाथा में मानवमन की समस्त मूलभूत भावनाओं के, मनोवृत्तियों के कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष समाहित हैं। इन जीवन–कहानियों में मनुष्य की जीवनयात्रा का, प्रकृति का, ऋतु–सापेक्ष सत्य और प्रकृति विरोधी अनृत का असत्य मनुष्यता के सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् से सुसज्जित हो जीवन के असूर्य को भी रूपाकार देता चला आ रहा है और शब्दों में, अक्षरों में ही नहीं, समस्त ललित कलाओं में राम तो जीवन के आदि और अन्त हैं। पूरे जीवन में रमे हैं। आज तो पूरा विश्व रामायणमय हो चला है।

यह तनिक आश्चर्यजनक है कि ब्रजभाषी लोकजीवन में जो कृष्ण की जन्मभूमि, लीलाभूमि है, कृष्णायन कम, रामायण अधिक है। तुलसीदास जी ने राम के विभिन्न अवतारों की, रामायणों की गणना करने की कोशिश की थी और उन्होंने लिखा "रामायण सत कोटि" अर्थात् सौ करोड़ हैं रामायण पर तुरन्त उन्हें अपनी भूल ज्ञात हुई कि अरे! मैं यह क्या लिख गया रामायण सिर्फ सौ करोड़ कैसे? और तुरन्त उन्होंने "अपारा" शब्द जोड़ा। अपार रामायणों में ब्रजभाषी लोक में रामायण उक्ति है। हर व्यक्ति की जीवन कहानी है–

"अब कहा सुनामे तुम्हें अपनी रामायन",
"बु तो अपनी रामायन ले बैठी"

ब्रजभाषा के लोकगीतों में रामायण का प्रत्येक पात्र लोकजीवन की धड़कनें लिए, भावनाएँ लिए साधारणीकृत है, कामनाएँ, आवृत्ति है ही, मनौती और आकांक्षा भी है। प्रत्येक गृहस्थ का घर राम का,

दशरथ का महल है। गृहस्वामी दशरथ, गृहस्वामिनी कौशल्या, भाभी सीता, देवर छोटे लछिमन से और भरत भरत हैं। ननद छोटी भगिनी सी हैं। भाई भरत है वह दाहिनी बाँह सा हर दूल्हा राम है, दुल्हन सीता है, कन्या का पिता जनक है, वर का पिता दशरथ है। हर विवाह का द्वारचार राम और चारों भाइयों के विवाह का द्वारचार है।

प्रजनन की देवी विधाता की शक्ति ''बै'' से शिशु जन्म होने पर ब्रज का प्रत्येक घर 'राम के महलों में' आने की प्रार्थना करता है। दशरथ और कौशल्या से घर का फाटक खोल दूध से पाँव धोकर विधिमाता को भीतर लेने का आदेश देता है।

मंगल उत्सव में घर में बधावा गानेवालियाँ राम के परिवार की बधाई गाती हैं फिर चाहे किसी का भी हो–

''धनि धनि कौसल्या की कूख, माँग सुहाग भरी।
आँचर दूब हरी इन्ने जाये एँ राम जी से पूत, रोपिन अटल धुनी।''

राम यहाँ कृषक-पुत्र धान रोपने में अटल धैर्यवान, धुन के पक्के बन जाते हैं। पर वे राम हैं।

ब्रजभाषा के लोकगीतों में लोक-प्रचलित लोकगीतों के जितने भी प्रकार और रूप हैं–सोहर, मंगल, बधायें, बन्ना-बन्नी, कात, घोड़ी, गारी, ढोला, लाँगुरिया, खेल के और ऋतुगीत हिंडोला, नवरात्रि गीत, सभी गीत रूपों में लिखी हुई रामायण की घटनाएँ और प्रसंग हैं। लोकमानस को जिस प्रसंग के लिए लोकगीत का जो रूप और प्रकार उपयुक्त लगा, उसने वही रचना के लिए चुन लिया।

एक ओर यह ब्रजभाषी लोक सावन में झूले पर झूलता एक हिंडोला गीत बारहमासी में पूरी रामायण गा लेता है। वही लोक इन चंद पंक्तियों में कथा सुनाने की दक्षिणा से मुकरने वाले कंजूस सेठ और बच्चों को पूरी रामायण सुना देता है–

''एक रामहवे एक रावन्ना
एक छली हवे एक बामन्ना
वाने वाली नारि हरी
वाने वाली नाँढ़ि करी
बात को बनि गयौ बातन्ना
तुलसी भरि दियो पोथन्ना''

यद्यपि अपनी अब तक की शोध से प्राप्त ब्रजभाषा के लोकगीतों से यहाँ सिलसिलेवार क्रम से पूरी रामायण लिख कर प्रस्तुत की जा सकती है और यदि 'ऐक्य भारती' चाहें तो वह प्रकाशित भी हो सकती है; किन्तु मैं रामायण की अतिमहत्त्वपूर्ण घटनाएँ–राम-जनम, विवाह, वनवास, सीता-वनवास और लवकुश-जन्म के प्रचलित इतिहास और पुराणों से भिन्न लोकमानस की अपनी अस्मिता लिए लोकतत्त्व से युक्त प्रसंग ही यहाँ प्रस्तुत करूँगी।

ब्रजभाषा के लोकगीतों में राम का जन्म न तो पुत्रेष्टि यज्ञ की खीर खाकर होता है न उसका भवसार उतारने का बड़ा उद्देश्य ही है। वह तो लोक जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप दशरथ की रानियों का बाँझपन मिटाने को होता है। इस प्रसंग पर प्राप्त सोहर गीतों में कथातत्त्व की दृष्टि से तीन प्रमुख हैं। पहली सोहर है–राजा दशरथ सिंहासन पर बैठे हैं, कौशल्या पीढ़े पर। संतान न होने से दुखी। विचार-विमर्श के बाद दोनों बैमाता की खोज में निकलते हैं। एक वन, दो वन पार करने पर तीसरे वन में बै मइया मिलती हैं। कौशल्या के चरण पकड़ने पर बैमाता कहती हैं–''जाओ रानी अपने महलों में जाओ, नौ माह पीछे तुम्हारे पुत्र होगा।'' और पुत्र होता भी है ''तबल निसान'' बजते हैं।

दूसरी ओर सोहर में कौशल्या दशरथ से कहती हैं–"हे पिया! हमें संतति की बड़ी साध है। तुम जंगल पहाड़ जाकर जड़ी–बूटी खोद लाओ। दशरथ लाते हैं। तीसरे सोहर में अयोध्या के माली को ही बुला कर उससे जनमबूटी दे जाने को कहा जाता है। बूटी आई, सिल पर पीसी जाती है। कौशल्या और सुमित्रा उसे पी लेती हैं। बेचारी कैकेयी सिल धोकर पी लेती हैं। सपत्नी ईर्ष्या जो ठहरी। जड़ी के प्रभाव से कौशल्या के राम, सुमित्रा के लक्ष्मण और कैकेयी के चरत भरत दो पुत्र पैदा हुए। लोकगीतों में शत्रुघ्न का नाम नहीं आता। चरत में सम्भवतः रूपान्तरण है। कुछ गीत राम और लक्ष्मण दोनों को कौशल्या का पुत्र चरत भरत को कैकेयी का पुत्र बताते हैं।

''दशरथ के चारयौ लाल, दिन दिन नीके अधिक नीके लगें।
कैकेयी कहिएँ चरत भरत, कौसिल्या के लछिमन राम।''

रामजन्म का कारण बताती इन तीनों सोहरों के साथ अनेक सोहर–गीतों में रामजन्म पर हुए लोकाचार चरुआ, साँतिए, छटी आदि के नेगचारों का वर्णन है। राजा दशरथ की पुत्रजन्म की प्रसन्नता में अनोखी दानशीलता की चर्चा है–

''अए जन्मे राम अवध चलो सजनी
राजा दसरथ ने मोती मूँगा बकसे
रहा मोती एक कौसल्या जी की नथ में
जन्मे राम मोती ही नहीं
राजा की घुड़साल में एक घोड़ा हथसाल में हाथी गौशाला में।''

एक गाय और तो और एक भाग साड़ी कौशल्या के तन पर वस्त्रदान करने के बाद शेष रह जाती है। अनेक सोहर लोकगीतों में ये ही मूलभाव भिन्न शब्दावली और भिन्न टेक और उगैरों के साथ आते हैं।

ऐसा नहीं कि लोकमानस राम के पुत्रेष्टि–यज्ञ की खीर खाकर जन्म लेने के तथ्य से परिचित न हो। तथ्य की जानकारी उसे है और राम के विवाह के गारी गीतों में स्त्रियाँ कहती हैं कि ऐसी अनोखी रीति लला कहीं देखी सुनी नहीं गई कि अवधपुरी की स्त्रियाँ खीर खाकर पुत्र जन्मती हैं। वे दशरथ की अक्षमता पर व्यंग्य कर गाली देती गारी गीत गाती हैं। राम की कुलरीति बखानती हैं। धनुषयज्ञ और रामविवाह के कथाप्रसंग बन्ना–बन्नी गीतों में उपनयन के लोकगीतों में आते हैं। वेदाध्ययन समाप्त कर दूल्हा बना हर ब्रह्मचारी राम है, जिसे धनुष तोड़कर जानकी ब्याहनी है। हर दूल्हा कौशल्या की गोद में बैठा राम है। किन्तु धनुष यज्ञ और धनुष तोड़ने की कहानी रामसीता के मिलन की स्थितियाँ लोकगीतों में थोड़ी भिन्न और रोचक हैं। कुछ नये पक्ष लिए हैं। ये कथाप्रसंग विवाह के विस्तृत गीत मंगल और ब्याहुलों में आते हैं। इन्हें खंडकाव्य या एकार्थकाव्य कहा जा सकता है। तुलसीदास जी की ऐसी प्रारंभिक रचनाएँ 'रामलला नहछू' 'जानकी मंगल' 'पार्वती मंगल' हैं। पर उनकी रामायण जनजन का कंठहार बनी इन रचनाओं को लोक ने नहीं अपनाया, किसी भी रूप में। उल्टे तुलसी की रचनाएँ लोक से प्रभावित हैं।

मुझे अपनी खोज में तीन सीता के मंगल गीत मिले हैं। ये गीत विवाह में भाँवरें पड़ते समय गाये जाते हैं। उच्च वर्णों और निम्न वर्णों के सीता का मंगल अलग है। तीसरा सीता का मंगल किसी प्रभुदास का रचा हुआ है।

उच्च और निम्नवर्ण के दोनों मंगलों में धनुष–भंग, सीता–विवाह की शर्त होने का कारण एक ही है। घटना यों है कि राजा जनक घर क्वाँरी सी कन्या सात बरस की कन्या घर लीपते समय कोने रखे धनुष को एक हाथ से उठाकर एक तरफ रख चारों कोने लीप देती है।

निम्न वर्ण के मंगल में वह बान उठाती है–

''राजा अपने नाम जनकपुर ग्राम बसायौ
चारयौ कौम भमन के लीपे चौका दियो संभार
इतते बानु उठाय कुमरि ने धरयो एकई हाथ
अन्तरनु वंयी आये''

दोपहर में जनक भोजन के लिए आये सीता की माँ से पूछते हैं–''अरे यह बान किसने उठायौ?'' माँ कहती है–''सीता ने घर लीपा है, उन्हीं ने उठाया है।'' जनक सोच में पड़ जाते हैं, इस बेटी को कौन ब्याहेगा जिसने एक हाथ से बान उठा लिया। उन्हें तुरन्त उपाय सूझता है कि यह सीता जो गुन की आगरी है, भरी पूरी ब्याह योग्य हो गई, इस धनुष के बहाने में सातों द्वीपों के राजाओं को बुला लूँगा जो धनुष तोड़ देगा, उसी से सीता को ब्याह दूँगा। सीता की माँ कहती हैं–''तुम सब राजाओं को बुलाना, पर उस रावण को मत बुलाना, वह बान उठा कर मेरी सीता को ब्याह ले जायेगा।''

उच्चवर्णों में सीता का मंगल स्वयंवर का उल्लेख करता है–

''देस देस पाती भिजवाई सुयंवरू दियो रचाय
देस देस के भूप जुटेएँ रामहूँ देखन जायँ।''

इस मंगल-गीत में राम को स्वयंवर का निमंत्रण नहीं भेजा जाता। किन्तु उच्च और निम्नवर्ण के दोनों के मंगल-गीतों में राम-सीता का मिलन पुष्पवाटिका में नहीं होता। प्रसंग यों है–राम शिकार खेलने निकलते हैं तो लक्ष्मण साथ हो लेते हैं। एक वन, दो वन जाकर तीसरे वन में उन्हें प्यास लगती है। राम कहते हैं–यहाँ पानी कहाँ? तब राम एक पेड़ पर चढ़ते हैं और देखते हैं कि एक तरफ एक तालाब है, जौ का खेत है और एक लड़की उस खेत की रखवाली कर रही है। निम्नवर्ण के ब्याहुले में लड़की भाट की बिटरिया यानी बेटी बताई जाती है। उच्चवर्ण के ब्याहुले में राम तालाब पर जाकर उससे पूछते हैं–''तुम किसकी बेटी हो, यह किस राजा का देश है और किस राजा का खेत है।'' फिर सीता कहती है–''हम राजा जनक की लाड़ली हैं। देश बलि राजा का है।'' फिर सीता राम से पूछती है–''तुम किस के नाती, किसके पुत्र हो, क्या तुम्हारा नाम है।'' राम से कहते हैं, ''प्यास लगी हो तो पानी पियो, भूख लगी हो तो जौ की बालें चबाओ।'' राम कहते हैं, ''न हमें भूख है न प्यास, हम तो तुम्हारा रूप निरख रहे हैं। यह तो बताओ कि तुम कुमारी हो कि विवाहिता या तुम्हारा विवाह कहीं तय हो गया है।'' सीता कहती हैं–''न हम ब्याही हैं न ब्याह ही तय हुआ है।'' इतना कह सीता अपने घर दौड़ जाती हैं और अपने पिता से कहती हैं कि मेरे लिए जैसा वर चाहिए, वह आपके तालाब पर आया है। इधर दशरथ जनक को पत्र भेजते हैं कि मेरे घर राम कुँवारे हैं, तुम्हारे घर जानकी। उत्तर में जनक पत्र भेजते हैं–''हम तो भार भिखारी हैं, तुम राजा महाराज हो, हमारी तुम्हारी सजनई कैसे हो सकती है।'' दशरथ ने कहा, ''बातचीत से सम्बन्ध जुड़ेंगे, बेटी देकर स्नेह।''

इसके उपरान्त उच्चवर्ण का 'सीता का मंगल' लग्न लिखने से लेकर बेटी-विदा तक के समस्त नेगचार, बरात आगमन, मंडल छाना, कन्यादान, परिछन, लाजाहोम आदि का वर्णन करता है। निम्नवर्णों का 'सीता मंगल' राम के पाताल जाने और परशुराम-संवाद-विवाद की कहानी भी कहता है।

स्फुट गीतों में राजा दशरथ का बरात सजाना, द्वारचार और ज्यौनार गीतों में राजा जनक की ज्यौनार का वर्णन है। राम घनश्याम को जनकपुर की स्त्रियाँ गारीगीत सुनाती हैं–''**तुम सुनो राम घनस्याम हमारी गारी**'' प्रेमभरी कंकन खोलने की लोकरीति पर एक ग्वालियर से प्राप्त गीत में वे राम को चुनौती देती हैं कि यह कोई धनुष का तोड़ना नहीं, कंकन की गाँठ खोलना है। अपने मन की सारी गाँठें खोल तुम्हें यहाँ ललीसे चित्त जोड़ना पड़ेगा–

''जन होबै धनस को टोरबो
कठिन कंकन गाँठ छोरबो''

ब्रज के लोकगीतों में राम वनवास देस–निकाला है। दशरथ लिख कर आदेश देते हैं। राम–लक्ष्मण शिकार खेलकर आते हैं। लक्ष्मण चिट्ठी देखते हैं और दोनों भाई वन को चल देते हैं, यह सपत्नी ईर्ष्यावश दिया, सीधा–सीधा देश निकाला है।

फुटकर गीतों में गुँथी लक्ष्मण में शक्ति और वनवास की अवधि में सीताहरण लोकसाहित्यिक है। रावण सीता से भीख नहीं माँगता, पानी की याचना करता है और अपनी झोली में सीता को डालकर लंका ले आता है। राम को सीताहरण का आभास कुटी पर उड़–उड़ कर बुरी आवाज में बोलने वाले कौओं से होता है **''सिया जानें काग ने हरी रे लछिमन''** लोक में कौओं का बोलना अपशकुन है।

''उड़ि उड़ि काग कुटी पै बैठें, बोलत भाँस बुरी रे लछिमन''

ब्रजभाषा के लोकगीतों में सर्वाधिक करुण प्रसंग है–सीता–वनवास और लवकुश–जन्म का। यहाँ सीता–परित्याग का कारण लोकापवाद नहीं है, लोकमत की प्रतिष्ठा नहीं ननद भावज का द्वेष है। सीता की ननद सीता से रावण का चित्र बनवा कर राम को दिखाती है–

''राजे ननद भावज दोऊ बैठिए
भाभी कैसी सूरति देख्यो रामनु खेंचि देखाइए''

क्रोधित राम लक्ष्मण को सीता को वन में छोड़ आने की आज्ञा देते हैं। ग्वालियर से मिले लाँगुरिया गीत में यह दृश्य है–

''सूरज की मुरकि गई कोर लाँगुरिया,
को जारथुला बैठिए को जहाँ वन हार।
सीता माता रथुला बैठी,
लक्ष्मिन हाँकन हार लाँगुरिया।।''

अपने वंश में देख सूर्य ने भी मुँह फेर लिया, लक्ष्मण वन सीता ले गये सीता को वन में प्यास लगी। उन्होंने लक्ष्मण से पानी लाने को कहा। सीता थकी थीं सो एक पेड़ के नीचे बैठीं, आँख लग गयी। लक्ष्मण पानी पेड़ पर टाँग दिये और चले गये। पानी की बूँद सीता के मुख पर पड़ी। जग कर अपने को अकेली देख वे रोने लगीं। उधर से एक बाबा जी निकले। उन्होंने पुत्र जन्म कराने का आश्वासन दिया।

एक दूसरे गीत में रोती हुई सीता को उड़कर आयी एक चिड़िया सांत्वना देती है और कहती है कि इस वन में एक बाल जती की मढ़ी (कुटिया) है, तुम वहाँ जाओ। सीता मढ़ी में घुस गयीं। शिशुओं के क्रन्दन से जती की समाधि टूटी। सीता ने कहा–मेरे वन में पुत्र हुए हैं। इनके शकुन के नेगचार कौन करे? चरुआ साँतिए कौन रखे? छठी कौन पुजाये। बाल जती ने जो भी कहो वे नेगचार कराने का आश्वासन दिया–

''कहै घर बाऊँ साँतिए कहै तो मंगल चार
कै नीसान पुराऊँ बेटी तपसी के दरबार?''

किन्तु महाराष्ट्र से इस विषय में करुण स्थिति पर मिली ओबी शायद पराकाष्ठा है। चिड़िया तो सजीव है, बाल जती साधू है, पर मराठी की इस ओबी में काँटों भरी बेरिया और बयूरिया रोती हुई सीता को सांत्वना देती हैं–

''भई न वना भधी सीता रहती ऐका
तिला समजाव यासी बोरी बाभकी बायका''

बेरिया और बयूरिया की सहानुभूति की यह ओबी लोक साहित्य में बेजोड़ है। सीता के राजमहल में पुत्र न होने के दु:ख और पश्चात्ताप के गीत आज भी ब्रजक्षेत्र में सिनेमा की धुनों पर गाये जाते हैं।

अन्तिम प्रसंग सीता के धरती में समाने का

अपनी कुटी के पास वन में रूप-सरूप रानी के दोनों बच्चे (कुश लव नाम नहीं) खेल रहे हैं। उन्होंने कोई खेल बनाया कि राम-लक्ष्मण आ गये। बच्चे लोटा माँज-धोकर पानी लाये और पीने का आग्रह किया। राम ने कहा–पानी तभी पिएँगे जब अपने माँ-बाप का नाम बताओ।

बच्चों ने कहा–"हम राजा जनक के पोते, लक्ष्मण के भतीजे हैं, बाप का नाम नहीं जानते, सीता के दुलारे पुत्र हैं।"

राम कहते हैं–"कहाँ है तुम्हारी माता, चलो देखें तो।" कदम्ब के वृक्ष के नीचे सीता अपने बाल सुखा रही हैं। गीत ब्रज का है, इसलिए कदम्ब का वृक्ष है। बच्चों ने कहा–"माँ अपने केशों को ढक लो, लक्ष्मण-राम आ रहे हैं।" इतने में धरती फटती है, सीता उसमें समा जाती हैं। उन्हें पकड़ने की कोशिश में राम के हाथ में केश रह जाते हैं। 'लोक' कहता है–सीता के वे केश ही कुश की घास हैं। (भदोही जनपद में सीतामढ़ी का यह दृश्य दर्शनीय है।)

ब्रज की अपेक्षा अवधी लोकगीतों में सीता-वनवास और उनका धरती में समाना बहुत ही मर्मबेधक और विस्तृत है।

लोकमानस इतिहास की चिन्ता नहीं करता। समाज का आचार ही उनका इतिहास है। राम के बहन थी या नहीं थी, थी भी तो कितनी और उन्होंने अपनी भांजी के विवाह में भात पहनाया या नहीं यहाँ इतिहास मौन है; पर समाज में भाई भात पहनाता है; अत: भात-गीतों में राम-लक्ष्मण से भात माँगा जाता है और राजा दशरथ की चार बेटियाँ बधाई लाती हैं। राम के लौटने पर फिर भी लोक ने राम, लक्ष्मण, दशरथ, कौशल्या, कैकेयी के चरित्र की मूल रेखाएँ भी बदलीं। वे भाई, पिता-माता विमाता हो रहे हैं।

हिन्दीभाषी क्षेत्र के लोक जीवन में रामायण एक मात्र ऐसा ग्रन्थ है, जो रोग-शोक के लिए संजीवनी और उत्सवों के हर्ष-उल्लास का रामरंग है, जो अमृत-कस्तूरी सा बरसता है।

"हॉ हॉ राम रंग बरसैगो,
रंग बरसै कहु अमिरत बरसै
औरू बरसै कस्तूरी......"

कब बरसता है यह रंग विवाह की ज्यौनार में भोजन करते समय। राम-सीता और रामायण लोकजीवन के संधि-समाज हैं। जीवन-गीत के अनुप्रास हैं। अन्त्यानुप्रास हैं, उपमेय हैं, श्वास-निश्वास, आस्था और विश्वास हैं, आकांक्षा हैं, मनौती हैं, आदर्श हैं और अन्तिम लक्ष्य हैं। राम बाँस हैं तो सीता सरसों हैं। लोकगीतों की टेक हैं, उगेर हैं, आरोह हैं।

रामायण ही एक मात्र ऐसा ग्रन्थ है जिसके गाँवघर में चौपालों पर पारायण होते हैं। अखंड पाठ नवाह्न पाठ नित्य और नैमित्तिक पाठ होते हैं। गीता का तत्त्व-दर्शन लोक के पास रामायण ही ले गयी।

अपने जीवन में रोज की कठिनाइयों के चौदह वर्ष झेलता जनलोक शाम को अपने राम के साथ अयोध्या में अपने घर में आकर यह गाकर आनन्द से सोता है–

"राम आये अयोध्या आनंद भये नगरी
आनंद भये नगरी मगन भयी नगरी।"

लोकगीतों में भूमिजा सीता

डॉ. आद्याप्रसाद द्विवेदी

यों तो रामकथा का आदि स्रोत वाल्मीकि रामायण को ही माना जाता है; लेकिन वाल्मीकि रामायण से भी काफी पूर्व विभिन्न रुपों में लोकपरम्पराओं में रामकथा प्रचलित थी। कहीं भित्तिचित्रों के रूप में तो कहीं लोकगीतों के रूप में तो कहीं निजन्धरी कथा-कहानियों के रूप में। लगभग देश की अधिकांश भाषाओं और बोलियों के गीतों में राम के जीवन-चरित्र पर बहुत कुछ लोकजीवन के द्वारा रचा गया है; लेकिन रामचरित के उस पक्ष को, जिसमें सीता को बनवास दिया गया है, बड़े ही कारुणिक ढंग से भोजपुरी और अवधी के लोकगीतों में उरेहा गया है। राम के जीवन-चरित्र में सीता का वनवास एक ऐसी घटना है, जो पत्थर के कलेजे को भी पिघला देती है। हिन्दी के भक्त कवियों ने इस घटना को छिपाने का प्रयत्न किया है, पर लोकजीवन में रचीबसी स्त्रियों ने इस विषय को लेकर अपने गीतों में पति-पत्नी के मनोभावों को बड़े ही करुणापूर्ण ढंग से चित्रित किया है। इसका एक बहुत बड़ा कारण यह है कि लोक का सीधा सम्बन्ध धरती से है और सीता धरती माँ की पुत्री हैं। यह सर्वविदित है कि सीता का जन्म भूमि से हुआ, जब राजा जनक खेत में अपनी पत्नी सुकन्या के साथ हल चला रहे थे। ऐसी भूमिजा सीता पर जब मर्यादा के उपासक राम के द्वारा लोकापवाद से बचने के लिए निर्वासन दे दिया गया, वह भी ऐसी सीता को जो आसन्न प्रसवा थी तो उस प्रसंग को उरेहने में लोकगीतकार खामोश नहीं रहा। वाल्मीकि रामायण में सीता के द्वितीय वनगमन के मूल में लोकापवाद को ही कारण माना गया है। ऐसा ही कारण भवभूति ने अपने 'उत्तररामचरित' नाटक में भी दिया है; लेकिन लोकगीतकार ने इस प्रसंग को पूरी तरह से नजरअन्दाज कर दिया है। सीता के दूसरी बार वनगमन प्रसंग को अवधी और भोजपुरी के लोकगीतों में सीता की ननद द्वारा रावण का चित्र बनाने को ही कारण माना गया है। यह एक प्रमुख लोकगीत है जो इस प्रकार है–

''ननदी भउजी दूनो एक मत एक साथे रहेली हो।
हे भउजी कवन सरीखे रावन हउन त हमके बतावहु हो।''

इस पर सीताजी कहती हैं–

''जब हम रावनवा उरेहबि उकेरि देखाइब हो,
सुनि पइहें भइया तोहार त देसवा निकासइ हो।
लाख दोहइया राजा दशरथ भइया माथा छुई हो,
भउजी! लाख दोहइया लछिमन भइया, भइया से ना बताइब हो।''

ननद की मीठी-मीठी बातों में आकर सीताजी गंगा-यमुना की मिट्टी से रावण का चित्र बनाना प्रारम्भ कर देती हैं–

''हथवा बनवली-गोड़वा बनवली त नैना बनावेली हो
कि आई गइले सीरी राम त आँचर खोलि ढाँपति हो।
रामजी बइठें जेवनरवा, बहिनिया नइया लावेली हो।
भइया! जवन रावन तोहार बैरी त भउजी उरेहेली हो।''

फिर क्या था, बहन की बात सुनते ही रामचन्द्र जी आग बबूला हो उठे। वे अपने छोटे भाई लक्ष्मण को सीता जी को घर में से निकाल कर जंगल में छोड़ देने का आदेश दे देते हैं–

''अरे रे लछिमन भइया, विपतिया के साथी हो,
सीता को देसवा निकारहु, उते रावन उरेहे हो।।''

श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मण को आदेश के स्वर में कहते हैं–'जिस सीता के लिए हमने इतनी बड़ी लड़ाई लड़ी, वह आज भी रावण को भूल नहीं पाई है। उसी रावण का वह चित्र बना रही है।' रामचन्द्र जी का ऐसा आदेश सुनकर लक्ष्मण हतप्रभ हो जाते हैं, क्योंकि उस समय सीता गर्भवती हैं। लक्ष्मण जी रामचन्द्र जी से विनय के साथ कहते हैं–

''जे भौजी भूखे को भोजन, नांगे को विस्तर
जे भौजी गरुये गरभ त कइसे के निकारहु।''

लक्ष्मण की बात सुनकर श्रीरामचन्द्र जी कहते हैं कि सीता जी का अपराध अक्षम्य है। उनके मन से आज भी रावण उतर नहीं पाया है। इसलिए तुम्हें आदेश देता हूँ कि तुम उन्हें घर से बाहर निकालकर वन में छोड़ दो। लक्ष्मण को अपने अग्रज की बात का अवज्ञा करने का साहस नहीं होता है। वे विवश हो जाते हैं और माता सदृश्य अपनी जानकी को अयोध्या की सीमा से बाहर निकालने का निर्णय लेते हैं। वे सीताजी से कहते हैं–

''अरे रे भौजी सीतल रानी, बड़ी ठकुराइन
भौजी आवा है तोहरा नेवतवा, बिहाने बने चले के।''

लक्ष्मण की बात सुनकर सीता जी आश्चर्यचकित हो जाती हैं। वह सोचने लगती हैं कि मेरे पिताश्री जनक तो वन में तपस्या नहीं करते हैं, जंगल में ससुराल भी नहीं है। वह स्वयं अयोध्या में हैं फिर किस उद्देश्य से वन से बुलावा आया है। वह लक्ष्मण से स्पष्ट पूछती हैं–

''ना मोरे नैहर, ना मोरे सासुर।
देवरा, ना रे जनक अस बाप, मैं केहिको जइहों।''

लक्ष्मण जी सीता जी की बात का तत्काल कोई उत्तर नहीं दे पाते हैं फिर भी बहाना बनाकर के वे सीता जी को फुसला लेते हैं। सहृदया सीताजी अपने प्रिय देवर लक्ष्मण की बात पर विश्वास कर वन जाने के लिए तैयार हो जाती हैं। वन में चलते-चलते थक जाती हैं, होठ सूख जाते हैं। लोकगीत कहता है–

''एक वन डाकिनि दूसर वन, तीसरे वृन्दावन।
चउथे लगलें पियसिया, त कतहूँ न पानी मिले।।''

वह देवर से कहती हैं–

''देवरा! एक बूँन पनियाँ पियाओ पियसिया बेआकुल।''

लक्ष्मण जी एक वृक्ष की शीतल छाया में सीताजी को बैठने के लिए कहकर स्वयं पानी की तलाश में निकल पड़ते हैं–

''बैठहुं भौजी! चंदनु तरे, चंदन विरिछ तरे।
भौजी! पनिया के खोजि करि आई, आ तुंहके पिआई।''

लक्ष्मण जी पत्ते के दोने में पानी भरकर सीताजी को पीने के लिए लेकर आते हैं। आने पर सीता जी को वृक्ष की शीतल छाया में सोते हुए देखते हैं। लक्ष्मण जी सोचने लगते हैं कि सीताजी को अकेले छोड़कर निकल जाने का यही उपयुक्त अवसर है और वे इस तरह गर्भिणी सीता को सोते हुए अकेली छोड़कर चुपके से भाग जाते हैं। कुछ देर के बाद जब सीताजी की आँख खुली तो अपने चारों तरफ देखने लगती हैं, पर कहीं पर भी लक्ष्मण दिखाई नहीं देते हैं। वह विलाप करते हुए कह उठती हैं–

''कहाँ गये लछुमन देवरा त हमैं ना बतावहु
हिरदया भरि देखितउँ, नजर भर रोअतहु हो।''

अपने शरीर की स्थिति देखती हुई पुनः कहती हैं–

''के मोरा आगे पीछे बाटें , के लट छोरिहें
के मोरा जागि रयनियाँ त नरवा छिनायहु।''

कुछ दूरी पर एक तपस्वी का आश्रम है। जंगल में एक दुखिया नारी का करुण क्रन्दन सुनकर वे आर्त हो उठते हैं। वे कुछ तपस्विनियों को सीता को ढाढस बँधाने के लिए भेजते हैं। तपस्विनियाँ सीता को समझाते हुए कहती हैं–

''बनवा से निसरई तपसिनी सीतहिं समुझावई
सीता हम तोहरे आगा पीछा बइठब हमहिं लट धोइब
हम देइब सरई के सुपवा मोतिन कई आखत
हम टेइब सोने के हँसुअवा, हमहिं नार छीनब।।''

तपस्विनियों के समझाने के बाद सीता जी सांत्वना धारण करती हैं, किसी तरह रात बीतती है। भोर की वेला में सीताजी के दो पुत्र पैदा होते हैं। तपस्विनी लोग लकड़ी जलाकर प्रकाश करती हैं। उसी उजाले में सीताजी अपने बच्चों का मुख देखती हैं। अयोध्या के राजा रामचन्द्र के बच्चों का जन्म इतनी विपन्न स्थिति में होगा, यह देखकर सीता का कलेजा विदीर्ण होता जा रहा है। वह सोचती हैं कि अगर इन बच्चों का जन्म अयोध्या में हुआ होता तो आज राजा दशरथ (यद्यपि शास्त्रीय परम्परा में वे स्वर्गवासी हो गये हैं, किन्तु लोक की परम्परा में जीवित हैं) सारा शहर लुटा देते और कौशल्या रानी अनगिनत आभूषण दान कर देतीं–

''जो पूत होतऽ अयोध्या में, वही पूर पाटन,
राजा दशरथ पन्ना लुटवते, कौशल्या रानी अभरन।''

जंगल के वातावरण में यातना के जीवन में रहते हुए भी जानकी जी पुत्र जन्म से हर्षित हैं। इस खुशी का समाचार वह अपने आत्मीय लोगों तक शीघ्रातिशीघ्र पहुँचाना चाहती हैं। उनकी इच्छा है कि खुशी का यह समाचार सभी लोगों को दिया जाय; परन्तु राम को नहीं। लोकगीत में उनका मनोभाव देखिये–

''नउआ! हमार लोचना लेइ जाउ, अयोध्या पहुँचावहु हो।
पहिले दीहो राजा दशरथ, दूसरे कौशल्या रानी हो।
तीसरे लोचना देवरा लछुमन, पै पिया न जनाइहउ हो।''

लक्ष्मण इस समाचार को पाकर पुलकित हो उठते हैं। उनकी इस प्रसन्नता को देखकर श्रीरामचन्द्र जी इसका कारण पूछते हैं। अनेक प्रश्न पर लक्ष्मण जी संक्षिप्त उत्तर देते हैं–

''भौजी त हमरी सीता रानी बसेलीं वृन्दावन हो,
उनही के भइले नन्दलाल, लोचना सिर धारिले हों।''

लक्ष्मण का उत्तर सुनकर राम आश्चर्यचकित हो उठते हैं। हाथ की दतुअन मुँह में ही स्थिर सी हो जाती है। उनके आँखों से मोती चूने लगता है। रामचन्द्र जी किसी तरह अपने को संयत करते हैं और नाई को बुलाकर सीता का हाल पूछने लगते हैं। जंगल से आया हुआ नाई सीता जी का हाल इस तरह सुनाता है–

''कुस रे ओढ़न कुश आसन बन फल भोजन।
साहब! लकड़ी का कीहिन अजोर सेतहि मुख देखिन।''

नाई की बातों को आगे राम सुन नहीं पाते हैं। उनका कलेजा फटने लगता है। वे लक्ष्मण को सीता को जंगल से वापस लाने के लिए भेजते हैं। काफी हिम्मत करके लक्ष्मण सीता को लाने के लिए जंगल के लिए प्रस्थान करते हैं। जंगल पहुँचकर लक्ष्मण रामजी की मानसिक स्थिति के बारे में बताते हैं और उनसे अयोध्या वापस चलने के लिए विनय करते हैं। सीता तो लक्ष्मण से स्पष्ट कहती हैं–

''देवरा जाहु लवटि तूँ अयोध्या त हम नाहीं जाबै।
लक्षिमन! अँखिया में पटिया बँधाव, अयोध्या दिखावो।।''

जानकी जी लक्ष्मण से पुनः कहती हैं कि हे लक्ष्मण अपने घर लौट जाइये। मैंने पति का नाम जपकर वनवास की अवधि लंका में अपार कष्ट के साथ बिताया, किन्तु जब मेरे प्राणों के सर्वस्व राम ने परित्याग कर जंगल में भिजवा दिया और उन्हें अपनी भावी संतति पर भी दया नहीं आयी तो मैं कौन सा मुँह लेकर अयोध्या जाऊँ। लोकगीत की पंक्ति इस प्रकार है–

''जाहु लछिमन घर अपने, त हम नाहीं जावें।
जो रे जिये नन्दलाल, उनहिं को कहइहैं।।''

गीत की ओर से पंक्ति में सीता जी ने न केवल अपने मन की पीड़ा व्यक्त की है; अपितु अपने मन के आक्रोश, क्षोभ और उपालम्भ को भी व्यंग्यात्मक तरह से कहा है। एक बार रामचन्द्र जी को राजसूय यज्ञ कराने की इच्छा होती है, किन्तु बिना अर्धांगिनी के राजसूय यज्ञ कैसे हो। माताओं ने सीता को वन से बुलवाने के लिए रामजी से कहा–

''चइत के राम नवमी त राम यज्ञ ठानेले हो।
कि मोरा माता बहुआ बिनु सून, मोरा आँगना त बहुआ के बोलावहु हो।''

रामचन्द्र जी जानते हैं कि सीता स्वाभिमानिनी हैं। अतः उनके या लक्ष्मण के जाने पर वे जंगल से नहीं लौटेंगी। अतः वे सीत को लिवाने के लिए गुरु वशिष्ठ जी को भेजते हैं; क्योंकि वे जानते हैं कि सीता गुरु वशिष्ठ की बात नहीं टालेंगी। गुरु वशिष्ठ जी सीता को बुलाने के लिए जंगल के आश्रम में पहुँचते हैं। सीता जी पत्ता का दोना बनाकर उसमें गंगा जल लाती हैं और गुरु वशिष्ठ का पाँव पखारती हैं। अयोध्या लौटने की गुरु की बातों को सीता ध्यान से सुनती हैं। अत्यन्त ही विषाद और अमर्ष के साथ वे अपनी पीड़ा को गुरु वशिष्ठ के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए कहती हैं–

''मन पार ए राम ऊ दिन जाहि दिन बियाह कइलऽ हो।
निहुरि चरनियाँ मोरा धइल चिटुकिया सेनुरा डलऽल हो।
मन पार उ दिन जाहि दिन गवन कइल हो,
खिलि-खिलि विरवा लगवलऽ अपने मुसकइव हो।
जब हम भइलीं गरभ में त राम बन दीहलें हो,
अब तो जो पुतर बाहर जनमले त राम मोहिं बन दीहले हो

आग लागहु ओहि अयोध्या में अब नाहीं जाइब हो,
भइलो संतति हम तेजबि अयोध्या नाहीं जाइब हो।''

सीता जी के इस उत्तर को सुनकर गुरु वशिष्ठ के पास कोई जवाब नहीं रह जाता है; फिर भी वे समझाते हुए सीता जी से पुनः कहते हैं–

''एतना अकिल सीता तोहरे त बुद्धि के आगर
किन तुम्हरा है गियान राम बिसरायहु
सीता एक बेर चलतिउ अयोध्या तब ई जगि पूरत।''

सीता के मन में एक ओर गुरुदेव वशिष्ठ के प्रति आदर भाव है तो दूसरी ओर अपना अपमान सोचकर स्वाभिमान भी जाग उठता है। अपने ऊपर राम द्वारा किया गया अन्याय उन्हें बार-बार याद आता है। वे गुरु वशिष्ठ को सम्बोधित करते हुए कहती हैं–

''सबके हाल गुरु जानो, अजानि बन पूछो
गुरु अस के राम मोहि डाहिन त कइसे चित मिलिहैं
अगिया में राम मोहि डारेनि, लाइ भुजि काटेनि
गुरु गरुये गरभ हे निकरिहैं त कैसे चित मिलिहैं
तुम्हरा कहा गुरु करबै, परग दुइ चलबै,
गुरु अब ना अयोध्या जाइब, औ विधि ना मिलिहैं।।''

सीता जी का उत्तर सुनकर वशिष्ठ जी चुप हो जाते हैं। उनके मुख से बोल नहीं निकलता। वे चुपचाप अयोध्या लौट आते हैं और सारा वृतान्त रामचन्द्र को सुनाते हैं। श्रीरामचन्द्र जी सीता के रूप को समझकर सीता को मनाने के लिए जंगल में स्वयं जाने का निर्णय करते हैं। जंगल पहुँचकर वे दो सुन्दर बालकों को खेलते हुए देखते हैं। बालकों से पूछते हैं–

''केकर तऊँ पुतवा, नतियवा, केकर तऊँ भतिजवा नू हो
लरिको! कवन मतरिया त कोंखिया जनमि जुड़वावहु हो।''

किसी बाहरी व्यक्ति द्वारा अपना परिचय पूछे जाने पर बालक तुरन्त जवाब देते हैं–

''बाप के नउवां ना जानों, लखन के भतिजवा रे हो
हम राजा जनक के नतिया, सीता के दुलरुआ न हो।''

बालकों का उत्तर सुनकर रामजी के ऊपर जैसे बज्रपात हो गया हो। उनके आँखों से तर-तर आँसू गिरने लगा। किसी तरह अपने को सँभालकर आगे बढ़ते हैं तो देखते हैं–एक वृक्ष की शीतल छाया में सीता जी अपने सिर के भीगे बाल सुखा रही हैं–

''रामा छापक पेड़ कदम कर लागत सुहावन हो
तेहि तर बइठेलीं सीता रानी केशवनि झुकेली हो
पछवा उलटि जब चितवेली, रामजी के ठाढ़ देखेलीं हो।''

रामचन्द्र जी और सीता जी की आँखें आमने-सामने मिलती हैं। सीता जी कुछ नहीं बोलती हैं। रामचन्द्र जी ही मौन तोड़ते हुये सीता जी से अयोध्या लौटने का निवेदन करते हैं–

''रानी! छोड़ि देउ जियरा विरोग, अयोध्या बसावहु हो।
सीता! तोरे बिनु जग अँधियार, त जीवन अकारथ हो।''

इसके बाद की जो स्थिति होती है, उसे शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता है। संयम, शील और आदर्श की प्रति मूर्ति सीता की आँखों में उनके हृदय की सारी वेदना, सारा विक्षोभ एक साथ उभर

आता है। अतीत की सारी घटनाएँ, सारे दृश्य एक-एक कर उनकी स्मृतियों में बसे ही आ रहे हैं–जैसे सिनेमा की रील खुलती है। जनकपुर की पुष्पवाटिका में गौरी पूजन के समय राम से प्रथम मिलन, धनुर्भंग का दृश्य, वनगमन की वेला, पंचवटी आश्रम, अशोक वाटिका में घुट-घुट कर बिताया गया जीवन, अग्नि-परीक्षा का दृश्य, राम का राज्याभिषेक और उसके बाद आसन्न प्रसव की स्थिति में होने के बाद भी राम द्वारा अयोध्या से निर्वासन। वह सोचने लगती हैं कि यह सब उनके साथ क्यों हुआ। निर्दोष, स्वाभिमान की पुतली, गौरव की प्रतीक सीता कुछ बोल नहीं पा रही हैं। उनकी आँखों में किसी प्रतिहिंसा की छाया भी नहीं है। निश्छल आँखों के कोरों पर कुछ अश्रु की बूँदें ठहरी हुई हैं। इसी मन:स्थिति में सीता एक भयंकर निर्णय लेती हैं। वे एक बार आँख गड़ाकर राम की ओर देखती हैं। दु:ख से कुछ बोलती नहीं हैं, मन ही मन उन्हें प्रणाम करती हैं और पुनः धरती की बेटी सीता अपनी माँ धरती से प्रार्थना करती हैं कि मुझे स्वीकार करो। सीताजी के द्वारा इतनी प्रार्थना करते हुए एक भयंकर आवाज के साथ धरती फट जाती है और धरती की बेटी भूमिजा सीता दोनों हाथ जोड़कर उसमें प्रवेश कर जाती हैं–

''सीता अँखियाँ मै भरती विरोग, त एक टक देखेली हो।
सीता धरती में गइलीं समाय, कुछहु नाहीं बोलेली हो।''

ऊपर की पंक्तियों में अज्ञात लोकगीत सिरजनहार ने सीता की उस मानसिक स्थिति का चित्र उत्कीर्ण किया है जो किसी अन्य शास्त्रीय कृति में नहीं है। वाल्मीकि की सीता सभा के बीच में अपनी सफाई देती हैं; किन्तु इस लोकगीत की सीता ने अपने बारे में किसी प्रकार की कोई सफाई नहीं दी है। वह राम के समक्ष दीन-हीन बनना, शरणागत होना, अपराधबोध से प्रणत होना, किसी प्रकार का कोई समझौता करना उचित नहीं समझती हैं। वह चुपचाप राम की तरफ एक बार देखती हैं फिर बिना कुछ कहे धरती की तरफ देखती हैं। सीता धरती की पुत्री थीं। धरती सीता के दर्द को समझ रही है; आखिर वह माँ थी। धरती माँ सीता के स्वाभिमान की रक्षा के लिए फट जाती हैं और सीता उसी में प्रविष्ट हो जाती हैं। इस प्रकार देखा जा सकता है कि वह भोजपुरी लोकगीत में समाज में संचलित परम्परा, विश्वास, रीति तथा प्रथा को आधार लेकर सीता के चरित्र का एक ऐसा रूप खड़ा किया गया है जो लोक के हृदय की स्वाभाविक अनुभूति है। कहीं कोई शास्त्रीयता का आवरण नहीं, नितान्त सहज और निश्छल जानकी के चरित्र को इस गीत ने अत्यन्त ही स्पृहणीय, संवेदना से परिपूर्ण और स्वाभाविक बना दिया है। लोकहृदय ने धरती की पुत्री सीता को धरती के साथ जोड़ दिया है।

रामलीला की प्राचीन परम्परा

डॉ. हरिप्रसाद दुबे

हर युग में लोक साहित्य ने लोकमानस का संस्कार किया है। उसे संघर्षों से जूझने की शक्ति दी है और विजयी होने का जयगान किया है। लोक साहित्य ही लोक संस्कृति का दर्पण है, जो हमारे जीवन के छन्द के साथ मेल रखता है। अवध की धरती की पहचान उसकी लोकभाषा और बोलीबानी से है। अवधी भाषा की अपनी एक लोकधुन, लोकसंगीत, लोकनृत्य, लोकनाट्य को जनाधार प्रदान करने वाले और रामकथा को घर-घर पहुँचाने वाले गोस्वामी तुलसीदास ही हैं। उन्होंने अपनी प्रतिभा से लोकसंस्कृति की जड़ों को सींचा। राम के व्यक्तित्व में तुलसी ने मनुष्यता के सारे गुणों का समावेश कराया। रामलीला के माध्यम से जिन मानवीय मूल्यों की स्थापना की गयी, वे सार्वकालिक हैं। रामलीला जीने की कला सिखाती है।

राम का लीला-रूप विलक्षण और अद्वितीय है। राम की लीला से नर-नारी, वानर-भालू, भुशुंडि-गरुड़ जैसे पशु-पक्षी और कोल-किरात, निषाद, गृद्ध भी राम के लोक पावन रूप को जान जाते हैं। सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी के भक्ति आन्दोलन में भक्तों ने राम के गुण नाम आदि को गान का विषय बनाया। लीलाकथा में श्रवण के साथ दर्शन की महत्ता बढ़ने लगी। पढ़ने-सुनने की तुलना में दृश्य देखने का अधिक प्रभाव पड़ता है। रामकथा को व्यापक स्वरूप प्रदान करने के लिए रामलीला आरम्भ की गयी। रामलीला में सत्य की रक्षा और उसका सम्यक् उद्घाटन है। राम के द्वारा की गयी लोकानुरूप मर्यादित लीलाएँ रामलीला के नाम से जानी जाती हैं।

राम के अनन्य भक्त, उच्चकोटि के महात्मा तुलसी को समाज के पतन की चिन्ता सताती है। उन्हें अपने मोक्ष से अधिक समाज के मोक्ष की चिन्ता रही। लोक और समाज की यही चिन्ता तुलसी को लोकनायक बनाती है। तुलसी ने केवल रामचरितमानस और अन्य कृतियों का ही सृजन नहीं किया; बल्कि राम के चरित्र को घर-घर पहुँचाने के लिए रामलीला भी आरम्भ कर दी। अवध-क्षेत्र में रामलीला परम्परा की नींव गोस्वामी तुलसीदास ने डाली। तुलसी के समकालीन उनके मेधा भगत ने गोस्वामी के साथ रामलीला में मंचन किया। अयोध्या प्राप्त युगल प्रियाकृत रसिक प्रकाश 'भक्तमाल' ग्रन्थ में इस सन्दर्भ में उल्लेख आया है–

> **''जैसे प्राण प्यारे श्री गुंसाई जी हमारे**
> **तैसे तुमहुँ हमारे ताते काम एक कीजिए।**
> **लेके धनुबाण जाओ निजथान तहाँ**
> **रामायण गाय के प्रत्यक्ष सुख लीजिए।।**
> **लोक में प्रचुर रामलीला रसछाए**
> **उर आनन्द बढ़ाय औध धाम को सिधाए हैं।**

अठारहवीं शताब्दी के इस ग्रन्थ से स्पष्ट होता है कि युगल प्रिया के समय तक लोक में रामलीला का पर्याप्त प्रचार हो चुका था। युगल प्रिया और मेधा भगत के समय में एक शताब्दी का अन्तर है। अवध क्षेत्र

में रामलीला की परम्परा गोस्वामी तुलसीदास के बाद मेधा भगत, राघवदास, भगवानदास, हनुमानदास, राम प्रियादास, प्रेमदास, रामदेव दास के पश्चात् इस समय जयरामदास का नाम प्राप्त होता है। मेधा भगत काशी से अयोध्या आकर लीलाधार ग्रन्थ मानस का गान करते थे। यहीं इनके सम्पर्क में आये। राघवदास ने काशी जाकर अस्सीघाट पर रामलीला की परम्परा आरम्भ की। अयोध्या में तुलसीचौरा पर रामलीला की प्राचीनता के साक्ष्य मिलते हैं। 1856-1910 तक अयोध्या-नरेश ददुआ के यहाँ प्रतिवर्ष रामलीला आयोजित होने लगी। इस समय तक काशी के समान ही अयोध्या में भी मैदानी लीला की परम्परा थी। उसमें अभिनय करने वाले सन्त-महात्मा भावुक प्रसंगों की लीला करते थे।

सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्रारम्भ में हुई मैदानी लीला लगभग उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक उसी रूप में चलती रही। आगे रामप्रियादास ने अपने समय के प्रचलित पारसी शैली के नाटकों के ढंग से रामलीला के मंचन का कार्य प्रारम्भ कराया। इसमें लगभग सभी संवाद उर्दू में रहते थे। अवध क्षेत्र में होने वाले पारसी नाटकों से उर्दू भाषा और संवाद बोलने के ढंग को मंचीयलीला में अपनाया गया। रामप्रियादास के शिष्य रामदेवदास ने रामलीला को पुनः अवध शैली में जाग्रत करने का प्रयत्न किया।

अवध की रामलीला में पटकथा संवाद नहीं मिलता। इसका मुख्य आधार ग्रन्थ मानस अवधी में है। रामलीला में जिस अवध शैली का विकास किया गया, वही परम्परा उत्तरोत्तर आजतक विद्यमान है। आजकल रामलीला में व्यास द्वारा गायी गयी पंक्तियाँ अवधी में रहती हैं। पात्रों के संवाद खड़ीबोली में रहते हैं। तुकान्त पंक्तियों वाले इन संवादों के उतार-चढ़ाव और उच्चारण आदि के ढंग में अवध-शैली समाहित है। बालकाण्ड के प्रायः सभी प्रसंग लिये जाते हैं। रामलीला के सभी पात्र जन-जन से एकात्मकता प्राप्त करते हैं। तुलसीदास रचित अवधी में 'रामचरितमानस' ही रामलीला का आधार है। रामकथा की चर्चा गाँव-गाँव चौपाल-चौपाल में रामलीला के माध्यम से होती आ रही है।

रामकथा मनुष्य के संस्कार की कथा है। इसमें राम का आदर्श तीन माध्यम से जन मानस में पहुँचता है। साहित्य का अध्ययन, विद्वानों के व्याख्यान और रामलीला मंचन का जिज्ञासापूर्ण दर्शन। जन-जन के नायक राम के आदर्शों से प्रेरणा ग्रहण करने और आम आदमी को राम के जीवन चरित्र से परिचित करवाने के लिए जागरूक समाज द्वारा रामलीला का मंचन आरम्भ किया गया। रामलीला के मंचन की परम्परा में तुलसीदास का महत्त्वपूर्ण योगदान है। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार उन्होंने अपने मित्र मेधा भगत के साथ काशी में रामलीला के मंचन की व्यवस्था की। प्राचीन काल से लेकर आज तक विविध शैलियों और रूपों में रामलीला की परम्परा चली आ रही है। पहले मेधाभगत वाल्मीकि रामायण के अनुसार रामलीला कराते थे। तुलसी से मित्रता के बाद उन्होंने मानस के अनुसार करायी।

अवध-क्षेत्र की रामलीला में राम की वन्दना के स्वर 'मंगल भवन अमंगलहारी' घर-घर गूँजते हैं। लोकगीत संगीत के साथ वाद्ययन्त्रों का स्वर मंत्रमुग्ध कर देता है। रामलीला लोक संस्कृति का अंग है। भारतीय जीवन मूल्यों का समावेश अवध की रामलीला परम्परा में है।

राम भारतीय संस्कृति की पहचान हैं। वे आनन्द रूप हैं। राम जीवन के मंगलमय निधान हैं। रामलीला अपनी राम कहानी है।

रामकथा जीवन के प्रसंगों को ऐसा स्पर्श करती है कि हर किसी को अपनी राम कहानी याद आ जाती है। यह जीवन का शास्त्र है। तुलसी सबमें समभाव रखते हुए बीच की खाई को पाटते हैं-**'श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीश माया जानकी।'**

श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है। भक्ति ही एक ऐसा तत्त्व है जो समाज को जोड़ने में सहायक होता है। यह महात्मा तुलसी का देश है। समूचा अवध-क्षेत्र रामलीला के कारण राममय दीखता है।

रामलीला में उन्हीं पात्रों की विजय दिखाई जाती है जो सदाचारी हैं। रामकथा प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में आवश्यक है। गाँव के साधारण व्यक्ति मानस और रामलीला से सम्बन्ध स्थापित कर आनन्द की अनुभूति करते हैं। शबरी और सुतीक्ष्ण की विह्वलता प्रेम की परिभाषा करते हैं। तुलसी ने शिव के मानस में रची-बसी कथा को मात्र भाषाबद्ध किया।

गणेशवन्दना से रामलीला आरम्भ होती है। इसके बाद राम, लक्ष्मण और सीता का चरणस्पर्श किया जाता है। आरती का रामलीला में विशेष महत्त्व है। आरती में उपस्थित होकर दर्शक भक्ति-प्रेम में अवगाहन करके धन्य होते हैं। रामलीला का अपना अलग लोक-पुराण है।

रामकथा की बहुलताओं के बाद भी रामकथा की एकसूत्रता के रूप में राम-वनवास, सीताहरण, हनुमान-भक्ति, रावण वध न्यूनाधिकरूप में सर्वत्र रामलीला में विद्यमान है। राम ने जो कार्य किये वे सब के सब ईश्वर के रूप में न करके मनुष्य के रूप में किये। वे मानव रूप में हमारे जीवन में साधना सिखाते हैं, और ईश्वर के रूप में साध्य बन जाते हैं। तुलसी कहते हैं–'**गिरजा सुनहु राम कै लीला।**' और कहीं बताते हैं यह चरित्र है–'**चरित करत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु।**' गोस्वामी जी का अभिप्राय यह है कि भगवान राम ईश्वर रूप में लीला करते हैं और मनुष्य रूप में चरित्र रखते हैं। मानस के उत्तरकाण्ड में वर्णित है–'**करउँ सकल रघुनायक लीला।**' यह रामलीला शब्द का संकेताक्षर लगता है।

रामकथा मानवता की परिक्रमा है। यह कर्म, त्याग और भक्ति की त्रिवेणी है। रामलीला के आदर्श पात्र जीवन-शक्ति देते हैं। सीता को छुड़ाने के लिए जटायु ने युद्ध किया। रामकथा पक्षियों की बोली और मौन से संकेत पाती है। अवध-क्षेत्र की रामलीला में कुछ प्रसंग विशेष लोकप्रिय हैं। पुष्पवाटिका प्रसंग में तुलसी बताते हैं कि वहाँ चार प्रकार के पक्षी-समूह विद्यमान हैं। चातक राम को देखकर बोलता है–'पियू-पियू' अर्थात् प्रियतम आये। कोकिल बोली–'कुहू-कुहू' कौन प्रियतम कौन प्रियतम। तोता बोला–'राम-राम' और चकोर बोला–'चन्द्र-चन्द्र'। इस प्रकार चारों पक्षी समूह की बोली से प्रगट हुआ 'रामचन्द्र-रामचन्द्र' फिर क्या था, सभी पक्षी गाने लगे–'**श्रीरामचन्द्र कृपालु भजमन, हरन भव भय दारुणम्।।**' इस राम स्तुति की स्वर लहरी में अन्य पक्षी और मयूर नृत्य करने लगे। धन्य है–रामलीला की ऐसी पावन-भूमि, जहाँ के खग-मृग, नर-नारी सभी ईश्वर-परायण हैं। करुणा, मैत्री, प्रीति, सद्भाव, सेवा सबके रोम-रोम में विद्यमान है।

राम केवल रामलीला नहीं है। रामलीला देखने के साथ ही समझने के लिए भी होता है। राम एक चरित्र भी है, उसे हम यदि नहीं जी पाये–अपने जीवन में, नहीं देख पाये राम चरित्र, तो कोई अर्थ नहीं। राम की लीला से अपने चरित्र आदर्श को सँवारना है, नहीं तो अवध की रामलीला हमें पकड़ने के लिए बढ़ती रहेगी। रामलीला प्रसंगों की जीवन्तता लोक जीवन को सँवारती है। प्रीति का कुमकुम शान्ति किरनदायक रहता है। तुलसी की वाणी सरस्वती के नूपुरों से होड़ लेती हुई '**सुर-सरि सम सब कर हित होई**' की उदात्त भावना लेकर मुखरित हुई।

रामलीला का मंचन मर्यादा पुरुषोत्तम राम के आदर्श चरित्र को जनमानस के हृदय तक पहुँचाने का सुगम माध्यम है। दर्शकों को प्रभावित करने के लिए अवध की रामलीला में लोकगीत-संगीत के साथ वाद्ययन्त्रों का प्रयोग करने पर सभी मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। रामकथा में राम का आदर्श तीन माध्यम से जनमानस में पहुँचता है। रामलीला की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है।

रामकथा के प्रचार-प्रसार में जितनी भूमिका ग्रन्थों की है, रामलीला और उनके जुड़े लोकगीतों की भूमिका कदापि कम नहीं। लोकगीत अनौपचारिक पाठशालाएँ हैं। रामलीला में गाँवों की मौलिक कला और लोकसंस्कृति की चेतना रहती है। गाँवों की रामलीला में सम्पूर्ण गाँव सहभागी रहता है। नयी

दुल्हन की बनारसी साड़ी की खोज सीता को पहनाने के लिए की जाती है। पर्दे, कुर्सी, थाली, कटोरी, पंखा, खड़ाऊँ तक घर-घर से एकत्र करने में जुड़ाव होता है। अपनी कला की सर्वोत्तम भूमिकाओं में सभी पात्र इतने सजीव हो जाते हैं कि उनका सामाजिक नामकरण ही वही हो जाता है। सांस्कृतिक स्तर पर अवध की रामलीला में लोक-मंगल, मानव-कल्याण के उदात्त भाव सन्निहित हैं। व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन राममय लगता है। जीवन के हर मोती रामसूत्र में पिरोये दिखते हैं। हर पड़ाव, हर गति, अवस्था, स्थिति और सन्दर्भ में राम हैं। रामलीला की परम्परा से जोड़ने के लिए ही तुलसीदास ने काव्यमय रामचरितमानस की रचना की। राम ने अपने भक्तों के लिए ही लीला की। अहल्या, शबरी, अनसूया के प्रसंग प्रेरणादायक हैं–**'भगत हेतु लीला तनु गहई। भगत हेतु नानाविधि करत चरित अनूप।'**

अवध की रामलीला में राम के जन्म में सोहर, विवाह में गीत परम्परा के संवाहक हैं। भरत का त्याग, राम का वनगमन, सीताहरण, लक्ष्मण-मूर्च्छा, नंदिग्राम (भरतकुंड) में भरत द्वारा हनुमान को तुरन्त पूर्ववत स्थिति में कर देना दर्शकों को जीवन सन्देश देनेवाला रहता है। प्रचलित रामकथा की रामलीला-परम्परा का सत्य है कि यह एक सशक्त माध्यम है, लक्ष्य तो अपने समय और समाज की बात को कहना है। अवध की रामकथा में रामलीला परम्परा अत्यन्त व्यापक और उदात्त है।

होली-गीतों में रामकथा

डॉ. भगवान सिंह 'भास्कर'

होली में एक विशेष प्रकार के गीत गाये जाते हैं, जिन्हें होलीगीत कहा जाता है। इन गीतों का गायन बसंत पंचमी से ही प्रारम्भ हो जाता है। भोजपुरी में इन गीतों की विशाल परम्परा है। भेद-प्रभेद की दृष्टि से उनमें फगुवा, चौताल, पहपट, जोगीरा, चहका, नारदी, बाँसवाड़ा आदि प्रमुख हैं।

दुर्भाग्यवश भोजपुरी में इन गीतों पर विशेष काम नहीं हुआ है। भोजपुरी अकादमी पटना से 'भोजपुरी के होरी-गीत' नाम से एक पुस्तक 1983 ई. में प्रकाशित तो हुई, किन्तु उसमें हिन्दी, अवधी, ब्रजभाषा आदि के होलीगीतों की बहुलता है। यही नहीं, लोकगीतों की परम्परा में आनेवाले अज्ञात कवियों के होलीगीतों के बजाय उसमें तुलसीदास, सूरदास आदि कवियों के नामों की रचनाएँ धड़ल्ले से प्रस्तुत हैं।

होली-गीतों में हास-परिहास एवं शृंगारिक गीतों की भरमार तो है ही, सामाजिक, धार्मिक एवं विभिन्न समस्याओं से जुड़े गीतों की भी कमी नहीं है। मेरी पुस्तक 'लोकधर्म' में भगवान राम के सम्बन्ध में लोकगीत परक एक वृहद् निबन्ध है, किन्तु प्रस्तुत निबन्ध में मेरा उद्देश्य भोजपुरी के होली-गीतों के आधार पर मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम के चरित्र को प्रस्तुत करना है।

पृथ्वी पर व्याप्त दुराचार को खत्म करने के लिए रामजी, राजा दशरथ एवं कौशल्या के पुत्र के रूप में अवतार लिए। एक होलीगीत में वर्णन देखें–

'सिरी राम लीहनीं अवतार
मनुज तन धारी।''

(भगवान श्रीराम अवतार लेकर मनुष्य का शरीर धारण किये।)

भगवान श्रीराम के जन्म लेने से सर्वत्र खुशी की लहर दौड़ गयी। मर्त्यलोक के मानवों को कौन पूछे, स्वर्ग के देवता तक प्रफुल्लित हो गये। एक होलीगीत में छटा देखें–

''जहाँ जनम लीहले भगवान
सुरन हरखाई।''

(भगवान राम के जन्म लेने से देवगण प्रसन्न हो उठे।)

उधर जनकपुर में सीताजी पैदा हुईं। जब वे शादी करने लायक हुईं तो भगवान राम के वर रूप में पाने के लिए उन्होंने शंकर भगवान की पूजा की। एक होलीगीत में वर्णन देखें–

''राजा जनक जी के बारी दुलारी
शिव पूजनवा के लाए।
आरे लाला शिव पूजनवा के जास।।
अच्छत चन्दन बेल के पाती

गुगुल होम कराई।
शिव पूजन ही खुलले अँचरवा
शिव देखि मुसुकाई।।
शिव पूजन में एक वर पवली
वर त मिलले भगवान।
आहोलाला वर त मिलले भगवान।।

(राजा जनक की दुलारी बेटी सीता भगवान शंकर की पूजा करने जा रही हैं। वे अच्छत, चंदन, बेलपत्र आदि पूजन-सामग्री लेकर पूजा करने जा रही थीं। उन्होंने गुगुल का होम भी करवाया। भगवान शंकर की पूजा के क्रम में उनका आँचल खुल गया जिसे देखकर शंकर जी मुस्कुरा दिये। आँचल खुलने से तात्पर्य है कि पूजा करने के क्रम में सीताजी आँचल पसारकर वर माँग रही थीं। भगवान शंकर के मुस्कुराने का अर्थ है कि जो स्वयं जगत् जननी हैं, वे उनसे वरदान माँग रही हैं। शिव पूजन में उन्हें वरदान मिला कि वे पति रूप में भगवान राम को प्राप्त करेंगी।)

सीता-स्वयंवर में भगवान राम ने शिव-धनुष तोड़कर एक कीर्तिमान स्थापित किया। जब राम-सीता के विवाह की खबर अयोध्या पहुँची तो दशरथ जी बहुत खुश हुए। उन्होंने बारात की तैयारी की और धूमधाम से बारात लेकर जनकपुर चल दिये। एक होली गीत में वर्णन देखें–

''साज बारात चले राजा दशरथ
राम अवधपुरी चलि आई।
जाई बारात जनकपुर उतरल
जाजिम झारि बिछाई।।''

(सभी बाराती अयोध्या चले आये। राजा दशरथ जी बारात साजकर चल दिये। जनकपुर पहुँचकर बारात उतर गयी। वहाँ बारातियों के बैठने के लिए जाजिम झाड़कर बिछायी गयी।)

फिर वहाँ जंगल से बाँस मँगाकर माड़ो छवाया गया। एक होलीगीत में छटा देखें–

''वन विरना से बाँस मँगायो
कंचन माँड़ो छवाई।''

(वृक्षों के जंगल से बाँस मँगवाया गया तथा सुनहला माँड़ो छवाया गया।)

भगवान राम की सुन्दरता तो जगजाहिर है ही, किन्तु कहीं भी स्त्रियाँ दूल्हा को देखने के लिए लालायित नहीं रहती हैं। रामचन्द्र जी अपने भ्राताओं के साथ जब राजा जनक के आँगन में गये तो सखियाँ उनकी अपूर्व छवि देखने के लिए व्याकुल हो गयीं। एक लड़की अपनी सहेली से कह रही है–

''चल ए सखि! मंड़वा वर देखे
कतना वरन हउवन राम?
कवन वरन राम कवन बरन लछुमन
कवन वरन भरत भुवाल?
चल ए सखि!.......''

(लड़की अपनी सहेली से कह रही है–"हे सखि! मँड़वा में दुल्हा देखने चलो।" वह फिर पूछ बैठती है–'किस रंग के राम जी हैं, किस वर्ण के लक्ष्मण जी हैं तथा किस रंग के भरत भुवाल हैं?)

लेकिन दूसरी सखी ने चारों भाइयों को देखा है। राम-लक्ष्मण तो पुष्प-वाटिका में गये ही थे। धनुष-भंग एवं वरमाला के समय भी सखी ने उन लोगों को देखा था। इसी से वह कहती है–

''चल ए सखि! मंड़वा वर देखे
साँवर वरन हउवन राम।
साँवर राम गोर बबुआ लछुमन
साँवरे भरत भुवाल।।
चल ए सखि!......''

(लड़की कहती है–'हे सखि! मँड़वा में दूल्हा देखने चलो। रामजी साँवले हैं, लक्ष्मण जी गोरे हैं तथा भरत लाल साँवले हैं।')

राम एवं सीता की शादी होने के बाद सर्वत्र खुशी की लहर दौड़ गयी। सभी सीता के भाग्य की सराहना करने लगे। एक होलीगीत में वर्णन देखें–

'धनि धनि हो सिया रउरी भाग
राम वर पायो।'

(चारों ओर से आवाज आ रही है–'हे सीता! आपका भाग्य धन्य है कि आपने राम को पति के रूप में प्राप्त किया।')

जनकपुर में माँड़ो में सोने के कलश रखे हुए हैं। होलीगीत में वर्णन देखें–

''कंचना कलशा धरे वेदियन पर
जहाँ मानिक दीप धराई।
राम वर पाई।''

(वेदियों पर स्वर्ण कलश रखे हुए हैं। कलशों पर मणि के दीपक रखे हुए हैं। सीता ने राम को वर रूप में प्राप्त किया।)

शादी के बाद हमारे समाज में कोहबर की परम्परा प्राचीन काल से रही है। राम और सीता का भी कोहबर हुआ। नीचे के होली-गीत में वर्णन देखें–

''भइल बिआह देवलोक हरखे
भये कोबहर तइयारी।
भये कोहबर तइयारी रामा हो
भये कोहबर तइयारी।।''

(राम और सीता की शादी होने से देवगण प्रसन्न हैं। राम और सीता के कोहबर कराने की तैयारी हुई)

सखियों ने सोचा कि रामजी ऐसे ही जनकपुर से चले जायेंगे तो ठीक नहीं होगा। इसलिए उन्होंने रामजी की पगड़ी रंग देने का निश्चय किया। एक होली-गीत में छटा देखें–

''राम जी की पगिया रंगा देवो हो
फेरू नाहीं राम जनकपुर अइहें।''

(रामजी दुबारा जनकपुर नहीं आयेंगे। इसलिए उनकी पगड़ी रंग दी जाय।)

किन्तु बालिकाओं को इतना से संतोष नहीं हुआ है। उन्होंने रंग बना-बनाकर रामजी के साथ पूरा रंग खेलने का निश्चय किया। बिना फाल्गुन के होली जैसा दृश्य हो गया। एक होलीगीत में सखियों का कथन देखें–

''खेल सखि! रंग बनाई आरे लाल
खेल सखि! रंग बनाई।

फेरू नाहीं राम जनकपुर अइहैं
खेल सखि! रंग बनाई।।''

(लड़की अपनी सहेली से कहतीहै–'हे सखि! रंग बनाकर रामजी के साथ रंग खेलो। रामजी फिर जनकपुर नहीं आयेंगे।')

लगता है कि लड़कियाँ भविष्यद्रष्टा थीं। उन्हें मालूम था कि अयोध्या से जाने के बाद रामजी का वनवास हो जायेगा और वे फिर अपने ससुराल नहीं आयेंगे।

विवाह के बाद सीताजी रामजी के साथ अयोध्या आयीं। वहाँ उन लोगों का जीवन काफी सुखी था। राजा की बहू होने के बावजूद सीताजी होली के अवसर पर राजमहल की चहारदीवारी से बाहर निकल होली खेलती थीं। एक होलीगीत में वर्णन देखें–

''सीता निकले अवधवा के खोरी
होरी खेले राम लला हो।''

× × ×

''कथि के उ जे रंग बनल बा,
कथि के उड़ेला अबीर?
सरजू जल के रंग बनल बा
बालू के उड़ेला अबीर।।''

× × ×

''केकरा हि हाथे कनक पिचकारी
केकरा हाथे अबीर?
राम के हाथे कनक पिचकारी
सीता के हाथे अबीर।।''

× × ×

''सीता निकले अवधवा के खोरी
होरी खेले रामलला हो।''

(सीताजी अयोध्या की गलियों में निकल जाती हैं। राम एवं सीता होली खेल रहे हैं। किस पदार्थ का रंग बना है तथा किस चीज की अबीर बनी है? सरजू जल का रंग बना है तथा बालू की अबीर उड़ती है। किसके हाथ में सोने की पिचकारी है तथा किसके हाथ में अबीर है? राम के हाथ में सोने की पिचकारी है तथा सीता के हाथ में अबीर है।)

किन्तु राम-सीता को अयोध्या सुख ज्यादा दिनों तक रास नहीं आया। राजा दशरथ राम का राज्याभिषेक करना चाहते थे, लेकिन कैकेयी के वर माँगने के कारण रामजी अपनी पत्नी तथा अनुज लक्ष्मण को साथ लेकर जंगल चले गये। वहाँ उन लोगों को बहुत कष्ट उठाना पड़ा।

एक दिन लंका का राजा रावण वेश बदलकर जंगल में सीताजी का हरण कर लिया। एक होलीगीत में वर्णन देखें–

''कपट के भेष धरे रावनवा
जंगल में चलि आई।
भीख के बहाने कुटी में पहुँचि
सीता के लीहलस चोराई।।''

(रावण कपट से एक साधु का वेश धारण कर जंगल में आया। वह भिक्षा के बहाने राम की कुटी में पहुँचा और सीता जी को चुरा लिया।)

रावण सीता को जबर्दस्ती अपने रथ में चढ़ा लिया। जनक नंदिनी जानकी विलाप करने लगीं। एक होली-गीत में मार्मिक वर्णन देखें–

''करत विलाप चढ़ली रंथिया पर
शरन-शरन गोहराई।''

(सीता जी विलाप करते रावण के रथ पर चढ़ गयीं। उन्होंने बार-बार शरण-शरण की गुहार लगायी।)

उन्होंने रामजी के दल के वीरों की भी गुहार लगायी। उन्हें आशा थी कि यदि कोई वीर होगा तो उन्हें अवश्य छुड़ा लेगा। एक होलीगीत में उनका विलाप देखें–

''बा केहू वीर रामजी का दल में
रथवा से लेत छोड़ाई?''

(क्या रामजी के दल में ऐसा कोई वीर है जो मुझे रावण के रथ से छुड़ा ले?)

जिसकी पत्नी का हरण हो जाय वह व्यक्ति भला चैन से कैसे रह सकता है? राम-लक्ष्मण बेचैन होकर सीता की खोज इधर-उधर करने लगे। एक होली-गीत में मार्मिकता देखें–

''तपसी दुनू वन में व्याकुल भयो
जाहि दिन से सिया हरण भयो।''

(जिस दिन से सीता का हरण हो गया, उसी दिन से दोनों भाई तपस्वी राम और लक्ष्मण व्याकुल हो गये।)

रामचन्द्र जी ने सुग्रीव से दोस्ती की और तब सुग्रीव की बानरी सेना की खोज में जहाँ-तहाँ निकल पड़ी। हनुमान जी ने लंका में जाकर सीता की खोज की। वहाँ उन्होंने काफी विध्वंस किया जिस कारण रावण की आज्ञा से राक्षसों ने उनकी पूँछ में कपड़ा लपेटकर आग लगा दिया। हनुमान जी ने अपनी पूँछ की आग से सम्पूर्ण लंका जला दी। एक होलीगीत में वर्णन देखें–

''पवन के पुत्र वीर हनुमान
लंका दीहले डढ़िआई।''

(पवनपुत्र वीर हनुमान ने लंका जला दिया।)

भगवान राम ने बानरी सेना लेकर लंका पर चढ़ाई कर दी। भयंकर युद्ध हुआ। भगवान राम स्वयं कुंभकर्ण का संहार करने चल पड़ते हैं। नाना प्रकार से लीला करके कुंभकर्ण रामजी से युद्ध करता है। भगवान वाण से उसकासर काटकर अलग कर देते हैं। होलीगीत में वर्णन देखें–

''कुंभकरन के भयंकर लीला देखि
कपि सब भइले बेहाल आरे लाला।
भयानक वाण से राम मुड़िया नू कटनीं
धरती पर गिरल पहाड़ आरे लाला।
मूड़ी गिरल ओकर रावन के आगे
रावन रोवे फूँका फार आरे लाला।।''

(कुम्भकर्ण की भयंकर लीला देखकर बानरी सेना व्याकुल हो उठी। भयानक वाण से भगवान राम ने उसका सिर काट दिया। उसका धड़ धरती पर पहाड़ के समान गिरा, जिसे देखते ही वह चित्कार

करके रोने लगा।)

रावण अनेक प्रकार के कल-बल-छल करके भगवान राम से युद्ध करता है, किन्तु उसकी एक नहीं चलती है और वह घबड़ा जाता है। भगवान राम को जीतने के लिए उसने शक्ति प्राप्त करना चाहा। उसने राजमहल में ही यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। विभीषण को जब यह बात मालूम हुई तो उसने भगवान राम से यज्ञ-विध्वंस करने के लिए कहा। होलीगीत में वर्णन देखें-

''रामजी के जीते खातिर रावन कठिन यग्य ठनलस
विभीषण के मालूम भइल भेद आहो लाला।
बानर भालू मिलके विध्वंस यग्य कइले
रामजी के पाइके आदेश आहो लाला।।

(भगवान राम को समर में जीतने के लिए रावण ने कठिन यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। विभीषण को जब यह मालूम हुआ तो उन्होंने भगवान राम से बताया। रामचन्द्र जी के आदेश से बानर-भालुओं ने रावण का यज्ञ-विध्वंस कर दिया।

फिर भगवान राम ने रावण एवं उसकी सम्पूर्ण सेना का संहार कर दिया। उन्होंने युद्ध के पहले ही विभीषण का राज्याभिषेक कर दिया था। उन्होंने लंका का सम्पूर्ण राज्य विभीषण को दे दिया। होलीगीत में वर्णन देखें-

''रामजी बानीं महादानी आरे लाला
रामजी बानी महादानी।
रावण के मारि विभीषण के राज दीहलीं
रामजी बानी महादानी।।''

(रामचन्द्र जी महादानी हैं। उन्होंने लंका के राजा रावण को मारकर उसका राज्य विभीषण को दे दिया।)

उसके बाद भगवान राम अपनी पत्नी सीता, अनुज लक्ष्मण एवं कुछ सहयोगियों के साथ अयोध्या वापस चले गये। वहाँ उनका राज्याभिषेक हुआ। वहाँ भी वे होली के रंग में सबके साथ डूब जाते हैं। होलीगीत में झाँकी देखें-

''हरि होरी अवध में मचाई।''

× × ×

''सिरी महाराज सिरताज भूपमनि, दशरथ सुन सुखदाई।
राम लखन औ भरथ शत्रुघन जोरि अतुल सुहाई।
अमित रहित छवि पाई।।
सूरत रंग राम पर लछुमन, रोरी भरथ लगाई।
रिपुसूदन ले कनक पिचकारी, भरि-भरि रंग चलाई।
पीतपट हरि के भिंजाई।।''

× × ×

''मारुत नन्दन बीन बजावत झाल लिये कपिराई।
ढोलक रुचिर बजावत अंगद, सुनि सुनि मनवा लुभाई।
कपि-दल करि सम साज मनोहर गावत अबीर उड़ाई।।''

(अयोध्या में होली की धूम मची है। भूपमणि महाराजाओं के सिरताज दशरथ-तनय भगवान राम

परम सुखदायी हैं। राम–लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न–चारों भाइयों की जोड़ी अत्यन्त सुन्दर लग रही है। उनका सौन्दर्य अतुलनीय है। लक्ष्मण राम पर रंग लगा रहे हैं तथा भरत उनके माथे में रोरी लगा रहे हैं। शत्रुघ्न स्वर्ण पिचकारी से भर–भरकर रंग चला रहे हैं। भगवान् राम के पीले वस्त्र भीग गये हैं। हनुमान जी बीन बजा रहे हैं। सुग्रीव के हाथों में झाल है तथा अंगद सुन्दर बाजा बजा रहे हैं जिसे सुनकर मन लुभा जाता है। कपिदल पूरे साज–बाज के साथ सुरीली आवाज में होली–गीत गा रहा है और अबीर उड़ा रहा है।)

अयोध्या की महिलाएँ एवं बालिकाएँ भी सीता एवं उनकी देवरानियों के साथ होली खेलते राजमहल में आ गयी हैं। बहुएँ भी अपनी लाज छोड़कर खुलकर होली खेल रही हैं। वे अपनी समस्त लज्जा एवं भय को छोड़कर होली में खूब रंग अबीर खेल रही हैं और गीत भी गा रही हैं। होलीगीत में वर्णन देखें–

''अवधपुरी के नारी सब मिलि खेले अइली होरी
नख सिख रूप अनूप किशोरी बनी मनोहर जोरी।
फागुन फाग सुहावन आइल मधुर पवन झकझोरी
कुलवधू लाज फाग नहिं मानत होली सब मिली खेली।
केहू मृदंग ढफ झाँझ बेनु आ केहू करताल बजावे
एक-एक सौ छैल छबीली अति अद्‌भुत सुर गावे।।''

(अयोध्या की सभी स्त्रियाँ मिल कर होली खेलने आयी हैं। वे नख–सिख से अनूप किशोरियाँ हैं और उनकी जोड़ी बड़ी ही सुन्दर बनी है। कुलवधू की लाज फाल्गुन नहीं मानता है। सभी मिल–जुलकर होली खेल रही हैं। कोई मृदंग बजा रही है, कोई डफ–करताल बजा रही है। सभी एक से बढ़कर एक सुन्दरी अत्यन्त अद्‌भुत स्वर में होली–गीत गा रही हैं।)

किन्तु अयोध्या में उन लोगों का जीवन अधिक दिनों तक सुखी नहीं रह सका। भगवान राम ने अपनी पत्नी सीता को वैसी स्थिति में वनवास दे दिया, जब वे गर्भवती थीं। वे वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में रहीं। वहीं उन्होंने दो पुत्रों को जन्म दिया जिनके नाम लव और कुश रखे गये।

अपने पुत्रों के कुशल–क्षेम के लिए सीताजी भगवान सूर्य से प्रार्थना करती हैं। एक होली–गीत में वर्णन देखें–

''सियाजी जमुनवा में खाढ़
सुरुज उदय के बेरिया।''

(सूर्योदय के समय सीता जी यमुना नदी में खड़ी है। यमुना–जल में खड़ी होकर वे अपने पुत्रों–लव एवं कुश के स्वस्थ एवं दीर्घायु होने के लिए भगवान् सूर्य से प्रार्थना करती हैं।)

इस प्रकार भोजपुरी के ऋतुगीत, होली–गीतों के माध्यम से मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम के अनुपम, गौरवपूर्ण तथा महान् आदर्श चरित्र की अत्यन्त संक्षेप में चर्चा हुई।

ब्रज की मौखिक परम्परा से प्राप्त लोक साहित्य में रामकथा के प्रसंग

डॉ. हरिसिंह पाल

''यावत् स्थास्यति गिरयः सरितश्च महीतले,
तावद् रामायण कथा लोकेषु प्रचरिस्यति।।''

(अर्थात् जब तक पृथ्वीतल में पहाड़ और नादियों का अस्तित्व रहेगा, तब तक रामकथा संसार में प्रचलित रहेगी।) यह कथन अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ है। भारतीय लोकमानस में पैठकर रामकथा मानो जनजीवन के मन-प्राण में घुल-मिल गयी है और आज भी उसका पथ-प्रदर्शन कर रही है। यही कारण है कि देश के प्रत्येक अंचल की बोली और भाषाओं में रामकथा की उपलब्धता रही है। यही नहीं, भारत से बाहर—चीन, तिब्बत, तुर्किस्तान, मंगोलिया, जापान, इंडोनेशिया, कम्बोडिया, श्रीलंका, फिलीपीन्स, म्याँमार (बर्मा), रूस, मॉरिशस, सूरिनाम, फीजी, गुआना, दक्षिण अफ्रीका, आदि देशों में भी रामकथा कही-सुनी और मंचित की जाती रही है। भारत के सांस्कृतिक, धार्मिक केन्द्र ब्रजमंडल में भी रामकथा प्राचीनकाल से ही लोकमानस में अपनी गहरी बैठ बनाए हुए है। वैसे भी मथुरा (मधुपुरी) की स्थापना का श्रेय तो भगवान राम के अनुज शत्रुघ्न कुमार के द्वारा मधुवन में लवणासुर के वध से ही माना जाता है।

जैन धर्म के अनुसार ब्रज का केन्द्र मथुरा जो हरिवंशी राजा, हरिवाहन के तेजस्वी पुत्र और महाबली रावण के जामाता 'मधु' राजा के नाम से अपने मूल नाम 'मधुरा' से जनप्रिय रहा। राजा दशरथ के कनिष्ठ पुत्र शत्रुघ्न के पुत्र सूरसेन के नाम से यह क्षेत्र प्रसिद्ध हुआ। तत्पश्चात् इसी सूरसेन की राजधानी मथुरा मानी गयी। बौद्ध-साहित्य में भी यह 'मधुरा' के नाम से प्रचलित रहा। महर्षि वाल्मीकि ने अपने आदिकाव्य 'रामायण' में इस मधुपुरी का सुन्दर वर्णन किया है—'राज्ये त्वमाभिषेक्ष्यामि मधोस्तु नगरे सुधे। नगरं यमुनाजुष्टं तथा जनपदांशुमान्।।' आज भी ब्रज में सौंख रोड पर अड्डा पाली गाँव में रामायण कालीन लवणासुर की गुफा का द्वार अवशेष विद्यमान है। भूतेश्वर स्थित शिवलिंग और बलभद्र कुण्ड भी रामायणकालीन माने जाते हैं। 'आनन्द रामायण' में रावण द्वारा मधु से वैमनस्य हो जाने के कारण मथुरा, गोवर्धन, डीग, बरसाना आदि नगरी तक का वर्णन मिलता है। आज भी ब्रज-क्षेत्र में आश्विन मास में जगह-जगह पूरे उत्साह और भक्तिभाव के साथ भव्य रामलीलाओं के मंचन होते हैं। ब्रज के कलाकारों की रामलीला मंडलियाँ, देश-विदेशों में आग्रहपूर्वक आमंत्रित की जाती हैं। इस प्रकार रामकथा के प्रचार-प्रसार में ब्रज की अग्रणी भूमिका रहती है।

जहाँ तक ब्रज लोक साहित्य में रामकथा की उपस्थिति की बात है, वह तो प्राचीन काल से ही लोकगीतों, लोकगाथाओं, लोकोक्तियों और लोककथाओं के माध्यम से ब्रजभाषा और ब्रज के जनमानस

में विद्यमान ही रही है। जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कारों में भगवान राम को अवतारी पुरुष मानकर उनकी अर्चना, अभ्यर्थना, कुशल-मंगल और कृपा के लिए अब तक की जाती है।

''रामनाम सुखदायी, भजन करौ भाई जीवन द्वै दिन कौ।
ऐ तनु है सपनौ की माया, अंखि खुलै कछु नाहिं भजन करौ भाई.....''

इसी प्रकार व्रज-वनिताएँ भगवान राम को उनकी कृपा-दृष्टि प्राप्त करने के लिए आमंत्रित करना चाहती हैं-

''मेरे घर आजु आनौ हौ राम रे।
मैं तो सोने के लौटा में जलु भरि लाई, नेंकु आयकै नहानी हौ राम रे.....''

ब्रज में जब किसी घर में बच्चे का जन्म होता है तो वह भगवान राम का ही जन्म माना जाता है-

''जनमे अवध में राम कुमार मेरी सजनी।
धन-धन रानी कौशिल्या जिनके राम अवतार, अवतार मेरी सजनी, जनमे....''

हास-परिहास में पुत्र को जन्म देने वाली माँ अपने परिजनों को राम की कृपा के बारे में बताती है-

''तैने सास कहा कीनौ, मेरौ लल्ला राम नै दीयौ फेरिजा मेरी हंसुला हजारी।
तैने ननद कहा कीनौ, मेरौ लल्ला राम नै दियौ फेरिजा मेरे कंगना हजारी।।.....''

ब्रजवासियों को राम उतने ही प्रिय हैं, जितने कृष्ण। यही कारण है कि ब्रज के लोकगीतों में राम-सम्बन्धी लोकगीत पर्याप्त संख्या में मिलते हैं। पुत्रजन्म पर अनेक लोकगीत गाए जाते हैं-

''कौन ने बाँटे बीरा बतासे, कौन ने नागर पान।
कैकयी ने बाँटे बीरा बतासे, कौसिल्या ने नागर पान।
कैकयी ने पूजे कुआँ बावरी, कौसल्या ने सागर ताल।।''

ब्रज-वनिता अपने राम रूपी बालक को बुरी नजर से बचाने का उपाय करना चाहती है-

''गुलाब जैसो फूल मोय दियो ललना, सासुल आवै हो दूरि-दूरि रखियौ,
नजर लगि जाय मोय, राम दियौ ललना, गुलाब जैसौ फूल.....।''

घर में जन्मोत्सव का आयोजन समारोहपूर्वक किया जाता है। बच्चे को नये-नये वस्त्र आभूषणों से सजाया जाता है-

''आहा राम रंग बरसेगो
रंग बरसै कछु अमरत बरसै और बरसै कस्तूरी। आहा राम रंग बरसेगो....''

ब्रज में 'जन्ति' के अवसर पर अनेक प्रकार के लोकगीत गाये जाते हैं, जिनमें भगवान राम का स्वरूप नवजात शिशु में ही देखा जाता है। राम-जन्मोत्सव का आनन्द ही अलग है।

''चौकी पै बैठे राजा दसरथ अए, नीचे कौसिल्या,
राजे हमे ओ सम्पति की ऐ साथ, सम्पति फल देउ, कुमर तुम्हारे होय।
कौसल्या के भए राजा राम, सुमित्रा के लछिमन, कैकई के चरत-भरत दोनों भए,
तौं बाजत तबल निसांन, गवल लागे सोहले राजा दसरथ थैली लुटाइ, गइयन कराइए।''

जन्म के उपरान्त छठी के गीत गाए जाते हैं, उसमें भी भगवान राम की माँ कौशल्या के माध्यम से खुशी व्यक्त की जाती है। इस अवसर पर 'लापसी' (हलुवा) तैयार की जाती है-

''मन गुर, मन गुर द्वै मन मैदा करउ कौसल्या लापसी।
जैती री जैतीदारी सुमित्रा के काम, कैकई विचारी कहा करे

चूल्हे पाँछे, चूल्हें पाँछे हार्‌यो ऐ खरेड़ा लछिमन जानै मौकू लापस.....''

इस अवसर पर घर में परिजनों और सम्बन्धियों की उपस्थिति में 'बंधाया गीत' गाए जाते हैं–

''राम आए अजुध्या आनंद भए, अनंद भए माई सुख चैन भए।
माई राजा जसरत के चारि बेटा भए, चारों धूमें अजुध्या अनंद भए।
माई राजा जसरत के चारि हाथी हए, चारों अड़े दरवाजे, अनंद भए....''

अयोध्या में राजा दशरथ के चारों पुत्र धीरे-धीरे बड़े होने लगते हैं। पूरी अयोध्या में आनन्दोत्सव मनाया जाता है–

''जारा जसरत के चारों लाल दिन-दिन नीके लगे
कौन के बाजे ढोल मजीरा कौसल्या के धुरत निसांन।
कैकई के बाजे ढोल मजीरा, कौसल्या के धुरत निसांन....''

भारत के लोकजीवन में विवाह-संस्कार सबसे महत्त्वपूर्ण आनन्ददायी अवसर होता है। जब सगाई और लगन वधू-पक्ष के यहाँ से वर-पक्ष के यहाँ आती है तो सभी झूम उठते हैं। सभी को यही लगता है कि यह भगवान राम की ही सगाई का अवसर है–

''रघुनन्दन फूले न समाय, लगुन आई हरे-हरे लगुन आई मेरे अँगना।''
बाबा सजि गए ताऊ सजि गए सजि गई सबरी बरात,
रघुनन्दन हौ ऐसे सजि गए जैसे सिरी भगवान, लगुन आई मेरे अँगना....''

इसी प्रकार बारात ले जाते समय बरना को हिदायत भी दी जाती है। राम से कहा जाता है–

''आजु मेरे लाडिलै नै धनुस उठाय लियौ,
जनकपुर जइयौ बरना, बाबा-ताऊ कूँ संग लइयो।
तोरि धनुस बरना सीताजी कूँ ब्याह लइयो। आजु मेरे लाड़ले ने....''

'घुड़चढ़ी' के अवसर पर भी राम से सम्बन्धित लोकगीत गाए जाते हैं। रामचन्द्र जी का शृंगार किया जाता है–

''वीर कौनु हर की तू मालिनी ऐ, औरु सेहरी कौन घर जाइ री?
भैन बन्यों री कुंमर कौ सेहरो, तोर अजुध्या की हम मालिनी औरु सेहरो कवन घर जाई री।
औरु धरयो री राम जी के सीस, री भैन बन्यो ऐ कुंअर को सेहरौ....''

वर पक्ष के यहाँ अवध में 'बरन' गीत गाए जाते हैं जिन्हें 'रतजगा' भी कहते हैं, इस अवसर पर देर रात तक अनेक प्रकार के 'बरना' गीत गाए जाते हैं–

''सो अवधपुरी में 'बरना' गांमे।
नाइन नगर बुलाए देंति, लगुन राम घर घरवाँ में.....
जब रघुवर की रातिजगा में हरी हाथन रचवा में सब सखियाँ मंगल गावें।
जब रघुवर पै तेलु चढ़ावें, हरद तेल में लिपटावैं, सौ अवधपुरी में बरना गावैं।''

इसी प्रकार वधू-पक्ष के घर में 'बरनी' गीत गाए जाते हैं। वहाँ भी रतजगा होता है। वहाँ महिलाएँ शंका व्यक्त करती हैं कि भगवान राम धनुष को कैसे तोड़ पाएँगे।

''धनुष कैसे तोरेंगे, हरि बारे,
हरे हरे गोबर अंगन लिपाए मोतिन चौक पुराए। धनुष कैसे तोरेंगे
आज मेरी सीता से रघुबर ब्याहन आए, धनुस कैसे तोरेंगे?''

बारात के चलने को 'निकरोसी' कहा जाता है। इस अवसर पर भी गीत गाए जाते हैं–

''रघुबर की निकरोसी कीनी, मौहर राम पै बधवामे
पिता जू दसरथ लिये संग में थैली ऊपर लुटवामें।
माइ कौसल्या लिए गोद में मन्दिर-मन्दिर उसकावें। रघुवर की निकरीसी...''

ब्रज में विवाह के अवसर पर 'ज्यौनार' के अवसर पर 'गाली-गीत' भी गाए जाते हैं–

''हाँ-हाँ राम रंग बरिसैगो,
जेठ में उतरयो असाढ़ जी लाग्यौ इंदर सूखा डारी।।
राजा जनक ने पंडित बुलाए किस विध सूखा डारी।
हाँ हाँ राम रंग बरिसैगो....''

ज्यौनार के अनेक गीत ब्रज में प्रचलित हैं, जो राजा जनक की ज्यौनार को प्रतिबिम्बित करते हैं–

''राजा जनक नै दई ज्यौनार, जुगत ते हरे हरे जुगत ते परसींजी
पूरी परसौं, कचौरी परसौ मठरी मोमनद्वार
पापड़ कचरी दाल-माँठ और चटनी सौंठ अचार।
जुगत से हरे हरे परसौजी.....''

उधर सीता अपनी मनोकामना पूरी होने पर आनन्दमग्न हो रही हैं। जो उन्होंने माँगा सब कुछ मिल गया–

सीता ढाड़ी जनक दरबार सूरज कूँ ही सूरज कूँ जल दे रही
''सीता माँगनी होय सौई माँग तपस्या तेरी पूरी हो गई।
मैंने माँगौ अयोध्या कौ राजु गंगाजी माँगी न्हायवे वऊँ।
मैंने वर पाए श्री राम, देवर छोटे लक्ष्मिन से
मेरे चरत भरत देवर जेठ ननद छोटी बहिना सी।
सीता ठाड़ि जनक दरबार.....''

विवाह के अवसर पर 'भाँमर' (पाणिग्रहण संस्कार) के अवसर पर गाए जाने वाले गीतों में भी भगवान राम और सीता के विवाह का ही दृश्य उपस्थित किया जाता है।

''जुरि आई नर-नारि जनक जी के अंगना में।
हरे-हरे गोबर अंगन लिपाए ऊपर महुए की डारि। जनक जी के अंगना में
सिया रघुवर की जोरी बैठी, रामचन्द्र दोइ भाई। जनक जी के अंगना में
सिया रघुवर की परै भंमरिया, विनमाइल बिन बाप जनक जी के अंगना में''

इस अवसर पर ब्रज में विवाह के अवसर पर गाए जाने वाले गीत में रामकथा भरपूर रूप में मिलती है–

''ऐ जनकपुर सीता को रच्यौ है ब्याहु,
हरी हरी गोबर अंगन लिपायाँ मोतिन चौक पुराय। जनकपुर....
ब्याह चलो दशरथ कौ नन्दन लै चलौ रथ पै चढ़ाय। जनकपुर....
जाय उतारी अजुध्या नगरी, कौसल्या तिलक संजोय। जनकपुर....

राम-रावण का वध कर चौदह वर्ष के वनवास की अवधि पूरी करके पुष्पक विमान से अयोध्या लौटे तो पुरजनों ने आनन्द मनाया–

''घर आय गए रामलखन जी पुरी में आनन्द भए,
खड़ी मातु कौसल्या करै आरती तिरियन मंगल गाए
चारौ भैया हैं इकठे रे फूलन की होइ बरसात, पुरी में आनन्द भए....''

ब्रज लोकगीतों में राम-भरत-मिलाप को बड़े सुन्दर शब्दों में रूपायित किया गया है—

''उठि मिल लेउ राम भरत आए। विंदावन में करी तपस्या, मथुरा जी में फल पाए।
बहियाँ पसारि मिले री चारों भैया रामा ऊपर चौर ढुरत आए।
उठि मिला राम भरत आए...''

लोक-गीतों में साथ-साथ ब्रज की लोकगाथाओं में रामकथा के प्रसंग प्रचुरता में उपलब्ध हैं। 'सीता जी कौ ब्याहुली' विशेष रूप से उल्लेखनीय प्रबन्ध लोककाव्य है, इसका गायन विवाह के अवसर पर मंगल कामना के रूप में किया जाता है। भले ही सीताजी का विवाह त्रेतायुग में हुआ था; किन्तु उनके 'व्याहुले' आज भी सभी जातियों में बड़े चाव से गाए जाते हैं। इस प्रबन्ध काव्य में सीता के जन्म (अवतार) धनुषभंग, विवाह, स्वयंवर, राम के साथ विवाह के प्रसंग हैं, जो समाज में प्रचलित रामकथा से थोड़े भिन्न भी हैं। जैसे—सीता शिवजी के धनुष को स्वयं चौका लगाते समय उठाकर रख देती हैं। सीता की माता स्वयंवर में भगवान राम को निमंत्रण न देने की प्रार्थना करती हैं कि वे तो बिना बुलाए ही आ जायेंगे और सीता को विवाह करके ले जाएँगे। इससे जनक के कुल को दाग लग जाएगा। परशुराम के आने पर रामचन्द्र जी स्वयं उनसे बचकर पाताल में चले जाते हैं। बाद में अपना अवतारी रूप दिखाकर उन्हें संतुष्ट करती हैं।

''रथ में सीता बैठी खात पछार, मेरी रथ की पैजनी ए दौजे रे।
चरत भरत मैने घर ई छोड़े, औरु बान हत नाथ।
मेरे रथ की पैजनी ऐ दौड़ो रे
रामचन्द्र गए लेख पताल, वे तौ अबऊ तक बगदे नाम रे।
मेरे रथ की पैजनी ऐ दौड़े रे''

इसके अतिरिक्त ब्रज के प्रकीर्ण लोकसाहित्य (लोकप्रहेलिका आदि) में रामकथा के प्रसंग मिलते हैं, उदाहरणार्थ 'होनी' के ऊपर में कथन—

''राम न जाते हिरन संग, सिया न रावन संग।
होनहार होके रहे, बन कै रहे प्रसंग।।''

अनेक कहावतें भी है—

''निरबल के बल राम
अब हम डोकरा भए, लाठी टेकत घर ते गए।''

''अजगर करे ना चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कहि गए, सबके दाता राम।।''
''राम मिलाई जोड़ी, एक अंधा एक कोढ़ी।
इकेले दुकेली राम बेली।''

''राम नाम जपनौ, परायौ माल अपनौ।''
''गाम करै सौ राम करै।''

''राम और गाम ते काऊ की नाय बसियाई।
राम भरोसे जो रहे परबत पै हरियाई।''

''राम बढ़ाए जे बढ़े बलकरि बढ़ी न कोय।
बल करि के रावन बढ़ौ सो पल में डारौ खोय।''

''राम नाम लियो नहीं, कियौ न हरि से हेत,
ते नर यो ही जाएँगे मूरा कौ सौ खेत।''

''जापै कृपा राम की होई।
तापै कृपा करै सब कोई।
फिरकी सामा सो करे
जाकि राम न होय।''

''राम असरता बैठिकै, सबको मुजरालेय।
जाकी जैसी चाकरी वाकी वासी देय।
''चुंगौरी चिरैया भर-भरपेट।
राम की चिरैया राम कौ हरि खेत।''

''राम की माया, कहीं धूप कहीं छाया।''

''अब खाई सो खाई, आगे राम दुहाई।''

''एक राम एक रावन्ना, एक छत्री एक बाभन्ना।
बाने बारी नारि हरौकौ, बानै वाकूँ मारन्ना।
बात कौ है गयौ बातन्ना, तुलसी रचि गयौ पौथन्ना।''

इसी प्रकार अनेक प्रकार अनेक प्रहेलिकाएँ भी ब्रज-क्षेत्र में प्रचलित हैं जिनमें रामकथा के प्रसंग मिलते हैं। यथा–

''अवधपुरी में द्वैजनै, एक ही सा नाम
ना गोरे ना साँवरे ना लक्ष्मण ना राम।''

इस प्रकार समूचे भारतीय लोक-मानस के साथ-साथ ब्रज-लोक-साहित्य में भी रामकथा के प्रसंग आत्मीयता के एक केन्द्र के रूप में मिलते हैं। भले ही यह क्षेत्र भगवान श्रीराम की जन्मभूमि और लीलाभूमि के रूप में मान्य नहीं है। आखिर कृष्ण भी तो भगवान राम की परम्परा

के अवतारी पुरुष ही हैं, वैसे भी रामकथा और लोकजीवन में भ्रातृभाव, पितृभक्ति, पति भक्ति, एक पत्नीव्रत, विमाता के प्रति आदरभाव, सौत के प्रति सहिष्णुता और शरणागत की रक्षा जैसे जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठापना करती है। रामकथा आज भी लोकमानस में परस्पर त्याग और सहिष्णुता तथा सामाजिक समरसता की शिक्षा देने की क्षमता रखती है। भगवान राम का सहज मानवी रूप और उनके बड़प्पन के आतंक से मुक्त रहने का भाव लोक साहित्य में विशेष रूप से रेखांकित हुआ है। इसीलिए लोकमानस 'जेहि विधि राखो राम, वाहि विधि रहिए' में संतोष पाता है। व्रत में आज भी राम-सम्बन्धी अनेक सरस, अर्थगर्भित एवं भावमय लोकगीत गाए जाते हैं। ब्रज में 'रामनवमी' का पर्व उसी आस्था और श्रद्धा के साथ मनाया जाता है जिस आनन्द और उत्साह से श्रीकृष्ण जन्माष्टमी।

लोकगीतों में रामकथा

उदयशंकर दुबे

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की कथा भारतीय जन-जीवन में रची-बसी है। उनका मर्यादित चरित्र किसी भी व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र को आदर्शपूर्वक जीने की प्रेरणा प्रदान करता है। यही कारण है कि वाल्मीकि से लेकर तुलसीदास तक तथा आधुनिक युग में मैथिलीशरण गुप्त ने राम के चरित्र का भरपूर बखान किया। देश के अनेक कवियों ने समय-समय पर अपनी-अपनी भाषा में राम के चरित्र का मान किया है। बौद्ध और जैन कवियों ने भी रामकथा को अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। साहित्य के अतिरिक्त हमारे लोकगीतों में भी रामकथा का पर्याप्त वर्णन हुआ है। अवधी, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी, बघेली, बुन्देली आदि लोकभाषाओं में राम के चरित्र का संक्षेप और विस्तार में वर्णन मिलता है। लोककवियों द्वारा रचित रामकथा विषयक लोकगीत सामान्य जन के कंठ में समाये हुए हैं।

लोकगीतकारों ने रामकथा को अधिक मनोवैज्ञानिक और सामाजिक रूप प्रदान किया है। यही कारण है कि ये गीत परम्परागत आज भी विशेष रूप से नारीकंठ से सुनने को मिल जाते हैं। लोककवि बहुत सजगतापूर्वक रामकथा को गीतों में व्यक्त करने में कुशल है। वह रामकथा के विशिष्ट गायक तुलसीदास पर भी व्यंग्य करने में नहीं चूकता। बुन्देलखण्ड में प्रचलित संक्षिप्त रामकथा का रूप इस प्रकार है–

''राम, रवन्ना दुइ जन्ना
एक क्षत्री एक वाभन्ना।
उन्ने उनकी तिरिया हरी।
उन्ने उनकी नाश करी।
बात को बढ़िगा बातन्ना।
तुलसी लिखिगे पोथन्ना।।''

बुन्देलखण्ड के गाँवों में पुराने लोगों के मुख से उपर्युक्त पंक्तियाँ सुनने को मिल जाती हैं। इसे हम 'मिनी रामायण' भी कह सकते हैं। संस्कृत में लिखा गया 'एक श्लोकी रामायण' प्रसिद्ध ही है।

लोकगीतों में राम-जन्म से लेकर, सीता-विवाह, राम-वनगमन, लक्ष्मण का मार्मिक वर्णन मिलता है। अवधी में प्रचलित एक लोकगीत में जाति की हेलिन राजा दशरथ के राज-द्वार पर प्रातःकाल झाड़ू लगाने से इनकार कर देती है। जब उसका पति उससे झाड़ू न लगाने का कारण पूछता है तो वह बेखटके उत्तर देती है कि राजा दशरथ निरवंशी हैं। मैं प्रातःकाल उनका मुँह नहीं देखना चाहती, झाड़ू लगाने जाने से उनका मुँह देखना होगा। हेलिन द्वारा कही हुई बात रानी कौशल्या तक पहुँच जाती है जिसे सुनकर उनका बदन म्लान हो जाता है। इसी समय दशरथ उनके पास पहुँच जाते हैं–

''सोने के खड़उवाँ राजा दशरथ वेदिया पर ठाढ़ भये हो।
मोर रानी काहे तोहरा वदन मलीन कंवलहीन हुलसइ हो।
भल बउरानेउ राजा दशरथ किन बउरावा हो?
राजा बिन संतति कुलहीन कंवल कैसे हुलसइ हो?
सोनवा कऽ हमरे गिनती नाहीं, चँदिया का ढेर लागो हो।
मोर रानी बारह भवन कै अजोधिया दुनौ जने भेलसब हो।
सोना त मेरे लेखे राखी भा, चँदिया त माटी भा हो।
राजा बरता भवन कै अजोरिया तो मोरे लेखे जरिगै हो।''

रानी कौशल्या राजा के समक्ष तपस्या करने का प्रस्ताव रखती हैं। राजा स्वीकार कर वन में रानी-सहित तप करने चले जाते हैं–

''तऊँ राजा होउ तपसिया तौ हम धन तपसिन हो।
राजा वृन्दावन के कुटियन दुनौ जनै तप करबइ हो।।''

राजा-रानी वन में जाकर पुत्र हेतु तपस्या में रत हो गये। उसी वन में एक योगी योगरत था। वह राजा-रानी की तपस्या को देखकर उनके पास जाता है। वह राजा से तप का कारण पूछता है। राजा दशरथ के कहने पर कि पुत्र प्राप्ति हेतु तप कर रहा हूँ। योगी ने अपनी झोली से भभूत निकाल कर रानी को खाने के लिए दिया एवं पुत्र प्राप्ति का वरदान भी दिया।

गुरु गोरखनाथ के पश्चात् समाज में योगियों का विशेष आदर होने लगा था। लोककवि बहुत चतुराई के साथ राजा दशरथ और रानी कौशल्या के तप का वर्णन करने के साथ योगी द्वारा दिये भभूत और आशीर्वाद को रामजन्म का हेतु माना है।

बुन्देली भाषा में प्रचलित लोकगीत में राजा दशरथ द्वारा पालित तोता राजा के आग्रह पर वृन्दावन जाकर वहाँ के आम्रवन से पाँच आम लाकर दशरथ को देता है। राजा दशरथ आम की फारी काटकर तीनों रानियों में बाँट देते हैं। इस आम्रफल के खाने से रानियों ने गर्भ धारण किया। गीत का टेक है–अरे रामा हो–

राजा दशरथ और तोते का वार्तालाप–

''अरे रामा हो, जसरथ सुअना पलियों हो कच्चे से दूध रे पिलाय।
अरे रामा हो, उड़ जा रे सुअना नंदन वन हो दो फल लाय रे पंछी ठोर।
अरे रामा हो, चोंत हमारी ठूँठी तौ हो गई डरवन गये रे कुमल्याय।
अरे रामा हो, सोने गढ़ा दों तोरी चोंचिया हो रुपे गढ़ा देंव पंख।
अरे रामा हो, मन से जो सुअना उड़ तौ गये हो पौंचे बगीचा बीच।
अरे रामा हो, डारन-डारन सुअना तौ फिरे हो अरे पेड़न फिरे रखवार।
अरे रामा हो, पाँचा आम की झुमकिया हो सुअना ने लई चटकाय।
अरे रामा हो, मन से जो सुअना उड़ तौ चलो हो पोंचो कचेरीं मोज।
अरे रामा हो, भरी कचैरीं लाला जसरद हो घुमड़ लगे दरबार।
अरे रामा हो, पाँच आम की झुमकियाँ हो सुअना दई छुटकाय।
अरे रामा हो, जसरद हांत बगुरदा हो फाँके करीं रे दो-चार।
अरे रामा हो, कोना खों देखो फकियाँ तौ दइहों कोने दये सेंगे आम।
अरे रामा हो, केकई खाँ देखो फकियाँ तौ दई हो अरे कौशल्ये दये सेंगे आम।

अरे रामा हो, उन अम्मन के खाये से हो रानी रही रे आधान।
अरे रामा हो, आठ से नमये मइना लागियो हो रनियाँ के पेट रे पिराँय।
अरे रामा हो, कोना के चरत भरत भयो तो कौशल्या के भये राजा राम।
अरे रामा हो, काय के छुरा नरा छीनियो हो काये के डोर गाँठ।
अरे रामा हो, सोने के छुरा नरा छीनियो हो रेशम डोरन गाँठ।
अरे रामा हो, काये के खपरा अनाइयो हो, काये के अरछुत डार।
अरे रामा हो, सोने के छुरा नरा छीनियो हो अरे मुतियन अरछुत डार।
अरे रामा हो, काये के सूपन पोड़ाइयो हो काये के उड़ोना उड़ाये।
अरे रामा हो, हारहई के सूपन पोड़ाइयो हो, रेशम उड़ोना उड़ाय।
अरे रामा हो, बज रई आनंद बधइयाँ हो, दोरे में घूमे री निसान।
अरे रामा हो, खाली खजाने राजा करतौ दये हो खूबई दई है निछाउर।''

बगुरदा–फल काटने का लोहे का अस्त्र, सेंगे–पूरें, अनइये–स्नान कराना, अरछुत–अच्छत (चावल का)।

उपर्युक्त दोनों लोकगीतों में पुत्रेष्टि यज्ञ के स्थान पर योगी द्वारा दिये भभूत और तोता द्वारा लाये गये आम्रफल की चर्चा है। (अर्जुनदास केसरी कृत ऐसा प्रसंग लोरिकायन में भी खुइलन के गर्भ–धारण के प्रसंग में आया है जिससे लोरिक जैसा पुत्र–रत्न की प्राप्ति होती है) लोककवि की यह अपनी सूझ है। चाहे योगी के भभूत का प्रभाव हो या आम्रफल का–राजा दशरथ और रानी की मनोकामना पूर्ण हुई–

''चैतइ कै तिथि नवमी तौ नौबत बाजइ हो।
बाजइ दशरथ राजा दुवार कौशल्या नारी मंडिर हो।
मिलहु न सखिया-सहेलरि मिल जुल चलतिउ हो।
राजा दशरथ के जनमे हे राम करब न्योछावर हो।
राम नयन ननतनारे कारज भल सोहै हो।
दीनी रचि फुआ सुभद्रा तऊ पतरी अंगुरियन हो।''

लोक परम्परा में सर्वप्रथम बच्चे के नेत्रों में काजल उसकी बुआ (फुआ) द्वारा लगाने की परम्परा है। लोककवि ने उसी परम्परा का निर्वाह किया है।

राम के जन्म धारण करते ही पूरी अयोध्या आनन्द–मग्न हो उठी। एक लोकगीत में रानी कैकेयी और सुमित्रा राम को देखने के लिए कौशल्या के महल में जाती हैं। इस अवसर पर लोककवि ने रानी कौशिल्या और कैकेयी के मध्य जो वार्तालाप कराया है, वह अब भी हमारे घरों में बहुधा घटित होता है। कैकेयी राम को देखने की इच्छा व्यक्त करती हैं; किन्तु कौशिल्या यह कहकर टाल देती हैं कि छठी या बरही के दिन आकर राम को देख लीजियेगा। कैकेयी को यह बात अखर जाती है, वह तत्काल उत्तर देती हैं कि ऐ रानी कौशल्या! आप यह न समझें कि राम बड़े सुन्दर हैं, ये राम लंका को जलवा देंगे और अयोध्या को बसायेंगे–कितना गहरा व्यंग्य है–

''राजा दशरथ के पिछवरवाँ अतर भल गमकइ हो।
अतर क वास-सुवास कौसल्या रानी के राम भये हो।
घर से निकसी केकई रानी सुनऊँ सुमित्रा रानी हो।
बहिनी आओ चली बड़े दरबार तो हँस केर आई हो।

अँगना बटोरत चेरिया त अबरी लउड़ियाँ हो।
आवेंली कैकई सुमित्रा त राम जी के देखन हो।
चेरिया झारि बिछाव सुखपलिया बैंठे रानी कैकई हो।
हम नाहीं बैठिब कौशल्या रानी हम नाहीं बैठब हो।
रानी एक बार राम का देखब, घरे हम जाइब हो।
का हम राम का दिखाई का राम सुन्दर हो।
छठिया बरहिया के आवा तो राम देखि जावा हो।
ई मत मानू कौशिल्या रानी का राम सुंदर हो।
इहौ राम लंका फुकइहैं, अजोधिया बसइहैं हो।''

रामजन्म सम्बन्धित बहुत से लोकगीत मिलते हैं। एक गीत में अयोध्या की स्त्रियाँ कौशल्या से राम जैसे पुत्र प्राप्ति का उपाय पूछती हैं। कौशल्या उन्हें बताती हैं–

''मचिया ही बैठेली कौशिला रानी, सिंहासन राजा दसरथ हो।
अरे! कौसिला कवन हाथ कइलू रमइया जी के पावेलू हो।
गंगा त हमहू नहइली, सुरुज गोड़वा लागिले हो।
अरे, भूखीलें हम अतवार रमइया जी के पाइलें हो,
भूखले ब्राह्मन जेवइलें, लेंगटा के बसवर हो।
तुलसी के दिअरा बार लें, रमइया जी के पाइलें।''

अवधी और बुन्देली भाषा में रामजन्म से सम्बन्धित बहुत से लोकगीत मिलते हैं। लोककवियों ने रामकथा के विविध प्रसंगों को लेकर लोकगीतों की रचना की है। रामजन्म के अतिरिक्त अहिल्या-उद्धार, धनुष-यज्ञ, लक्ष्मण-परशुराम-संवाद, राम-सीता का विवाह, राम-वन-गमन, भरत-राम का चित्रकूट में मिलन, शूर्पणखा-निरूपण, लक्ष्मण-शक्ति, राम राज्याभिषेक, सीता-निर्वासन विषयक, लोकगीत बहुतायत प्राप्त होते हैं। लोककवि की दृष्टि कारुणिक प्रसंगों की ओर अधिक है। उसने राम-वनवास, लक्ष्मण-शक्ति और सीता-निर्वासन प्रसंग की ओर अत्यधिक सहानुभूति प्रकट की है। इस अवसर के गीत बड़े-बड़े हैं।

राम-जानकी के विवाह पर्व पर बुन्देलखण्ड में प्रचलित लोकरीति और कुलरीति का भी वर्णन मिलता है। राम बनरा (दूल्हा) बने हैं–तो सीता बनरी (दुल्हन)।

''जे वनरा होई जनक लली के राजा दसरथ के।
धन्य अजुध्या धन पुरवासी धन्य धरती जाँ जियाये री।
धन्य कौशल्या धन्य राजा दसरथ जिनने गोद खिलाये री।
धन्य जनकपुर धन्य पुरवासी सो भाग सिया वर पाये री।
लै जयमाल सिया जू आईं पुरवासिन सुख पाये री।
जे वनरा दोई जनक लली के।''

राम द्वारा जानकी जी का कंगन छोड़ते समय जनकपुर की स्त्रियाँ गारी गीत के माध्यम से राम पर व्यंग्य कर रही हैं–

''ए जौ न होवै धनुष को तोरना कठिन कंकन गाँठ छोड़ना।
अब देखे लला तुमरी चतुराई, कैसी पाहन नार बनाई।

मारे निसचर दल समुदायी, ए जौ नोंई मरीच मद मोरबौ।
तुम तौ अवधपुरी पग धारे, कैसे छत्रियन के मद मारे।
अब तौ पड़ गये फंद हमारे, इतै सटहै ना नैना मरोरबो।
चारउ भइया मुनी जियाये, उनमें रघुवर वेई सुताये।
सीता बेटी शीश नवाये, कैसें सी को परान चित चोरनो कठिन।
वै तो मिथिलापुर की बाला लगे तुम्हारी सारीं।
आखर अबला हतीं विचारी, ए कैसों हो रव लली हात जोरबो।
ए जो न होवै धनुष को तोरबौ।''

रामकथा में सीता-निर्वासन का प्रसंग अत्यन्त कारुणिक है। लोक में ननद-भौजाई का पारस्परिक द्वेष प्रसिद्ध है। लोककवि ने सीता-निर्वासन का कारण भौजाई के प्रति ननद की ईर्ष्या को मानकर लोकगीत की रचना की है–यह लोकगीत जन-जन में प्रचलित है–

''ननद-भौजाई दूनौ पानी भरन गईं-अरे पानी भरन गई हो।
पनिया भरत ननदी करैं लागिन रवना कऽ बात।
भौजी जौन रावन तोहि हरि लैगा उसे उरेहि दिखावौ हो।
जो मैं रवना उरेहि दिखाऊँ, सुनि जइहैं बिरना तुम्हार तो देसवा निकरिहैं हो।
लाख दोहाई राजा दसरथ कै, राम भइया कौल करौं हो।
मांगिन रंग गड़ुलिया, गंगाजल पानी हो।
ननदी समुहै कै गोबरी लिपावहु मै रवना उरेहौं हो।
सीता समुहै कै ओबरी लिपाइन कि रवना उरेहैं हो।
हाथ लिखिन दुइ पाँव लिखिन दुइ लिखिन बत्तीसो दांत
माथे का मथहर लिखै नहीं पाइन कि आइ गये राजा राम।
काहे में लुकाये रंग की गगरिया, काहे में लुकावे दुइ हाथ।
अंचरा लुकावै रंग की गगरिया, ड्योढ़ी लुकावै दुनौ हाथ।
जेवन बैठे राम औ लछिमन की बहिनी के ढरै लगे आँसु।
कि बहिनी तौहे अन-धन घटिगा कि भौजी बोले बड़े बोल।
नाँह भइया मोरा अन धन घटिगा नाहीं भौजी बोले बड़े बोल।
भैया जौन रवनवा तोहरा जनम कऽ बैरी तौन भौजी डरेहैं हो।
साजो न लछिमन खुली पलकियाँ कि भौजी के आवो पठाय।
पलौ न भौजी अपने नैहरवाँ तुम्हरे नैहर रच्यो है व्याह।
ना मोरे देवरा, भाई औ बाप न सगे कोरवा का भाई।
न मोरे बबुली बी दूसर धेरिया केह कर रचाहै, व्याह।
जबे भौजी तूँ हियाँ चलि आऊ वहाँ लिये भाई अवतार।''

सीता लक्ष्मण के साथ चल देती हैं–

''एक वन नाघ्यो, दूसर वन नांघ्यो तीसरे में लगिगै पिआस।
बैठ भौजी तुम कदम की छइयाँ में मैं देखि आऊँ वनवास।
बहइ लागी जुड़री बयरिया कदम के री छइयाँ।
सीता भुइया परी कुमिलाय पियसिया के मारे हो।

तोरेन पतियाँ कदम के रे लछिमन दोनिआ बनाएन हो।
भरि लाये दोनिआ में पनिया कदम डरिया टागेन हो।
लछमन चलि दिहले अवध डगरिया, सीता वन छाड़ि के हो
चटकि गैले खिलियाँ पटक गैले दोनवा बुंदवां पड़ा सीता जी के देह हो।
बुँदवाँ पड़त सीता भभकि जागिनि हो।
कहवाँ गये लछमन देवर हमें न बताइन हो।
सीता गवर भर देखिन लछमन न दिखाने हो।
रोइ-रोई सीता पड़ली धरतिया पै मानुष कोई न दिखाय।
वही वन से आयल एक तपस्वी ठाढ़े सीता समुदाय।
मति रोयहु सीता बेटी, मत रोवहु तुम्हरे हुइहै लव-कुश पूत
को मोरे होइहैं सखी-सहेलरी मंगल गाय सुनावहि हो।
हमहीं होबे तोरे नाऊन वारिन हमहीं धोबिन हो।
हमहीं होबे सखी सहेलरि मंगल देव सुनाय।
जब सीता के लव-कुश जनम लीन्हें, रोचना दीहिन पठवाय।
या रोचना दिहेउ देवरा लछिमन हो....
महर-महर तोरा माथा लछमन या रोचना को दीन।
भौजी के भये हैं लव-कुश या रोचना भौजी दीन्ह।
कुश-लव बेटा खेले धनुहियाँ लछमन ठाढ़े होइ निहारे हो
किनके हो तुम नतियाँ, पनतियाँ किनके लगो भतीज।
राजा दसरथ के नतियाँ लगत हौ, लछमन के रे भतीज।
पिता अपने का नांव न जानौ माता सीतल के कऽ पूत।
चलौ न लरकों जहाँ बसै मात तुम्हार।
जाइ कहेनि माता सीता से आवत कंत तुम्हार।
ऐसे कंत पूत मुख नहिं देखूँ जौन लिवाय बनवास।
चलौ न भउजी अपने अजोधिया तुम बिन नगर उदास
मरि मैं जाव, जगत तज डारौं मैं न अजोधिया जाऊँ।
फाटि गई धरती समाइ गई सीता, मैं न अजोधिया जाऊँ।

सीता-निर्वासन का वह लम्बा गीत थोड़े अन्तर के साथ अवधी, भोजपुरी, बुन्देली जनजातीय और बघेली भाषा में भी प्रचलित है। करुण रस प्रधान इस लोकगीत को सुनकर बरबस कंठ भर जाता है, नेत्रों में आँसू आ जाते हैं।

बुन्देलखण्ड में प्रचलित लावनी, सैर तथा फागों में रामकथा विषयक गीतों का बाहुल्य है। हनुमान के वीरत्व का एक फाग द्रष्टव्य है–

''कारे नीर समुद्र कै, अंगद देख डराँय।
हनूमान जोधा जली, नित आवैं नित जाँय।
अंगद जाँघ रोप गये लंका में।।''

ओरछा की रानी गणेश दे कुँवारी ने संवत् 1631 वि. (सन् 1574 ई.) में सरयू नदी में से प्राप्त राम की मूर्ति लेकर अयोध्या से ओरछा आयीं और अपने महल में भगवान राम की प्रतिमा की सविधि

प्राण–प्रतिष्ठा कराकर ओरछा राज्य को उनके चरणों में अर्पित कर दिया। अयोध्या के रामलला ओरछा आकर राम राजा हो गये। लोककवि कहता है–

''राम जन्म सरजू निकट, गुरु विशिष्ठ के धाम।
कनक भवन दसरथपुरी, को कर सकै बखान।।
अवध में राम ओड़छे आ गये हो।
सप्तधार सरजू बहैं, नगर ओड़छे धाम।
फूलबाग नौ चौक में, बिराजैं राजा राम।
ओड़छें राम चतुरभुज हो रमे हो।।''

लोक जीवन में राम का आदर्श चरित्र अत्यन्त गहराई के साथ लगाया हुआ है। यही कारण है कि लोकगीतों में रामकथा का मनोहारी वर्णन मिलता है। जातिगत गीतों में भी रामकथा का वर्णन मिलता है। लोक में प्रवाहित रामकथा विषयक गीतों का अभी तक कोई विशेष संग्रह प्रकाशित नहीं हो सका है, आवश्यकता है ऐसे संग्रह के प्रकाशन की।

मधुबनी शैली में रामकथा के चित्र

डॉ. नन्दिता शर्मा

(मधुबनी शैली में अंकित रामायणकालीन चित्र भारतीय लोक चित्रकला के अनुष्ठानिक, आलंकारिक व कौशलार्थ तीनों उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं। राम-सीता-विवाह, स्वयंवर, जयमाल इत्यादि विषयों का चयन कलाकार की सौन्दर्यानुभूति, सौन्दर्यबोध व सौन्दर्य-चेतना की आलंकारिक अभिव्यक्ति के परिचायक हैं। वर-वधू की मंगलकामना एवं सुखी वैवाहिक जीवन की शुभेच्छा हेतु अनुष्ठानिक उद्देश्य से निर्मित यह भित्ति-चित्र विवाह-रस्मों का एक अभिन्न अंग बनकर न केवल कोहबर घर में सम्पन्न विभिन्न वैवाहिक क्रियाकलापों के; अपितु हास-परिहास-विनोद, सहभागिता एवं आनन्द के साक्षी बनकर लोकमानस को परितृप्त व आह्लादित करते हैं। चटक रंग, काली रेखाएँ व अलंकरणों की अधिकता इन चित्रों का वैशिष्ट्य है, जो मधुबनी शैली के चित्रों को चित्ताकर्षक व लुभावना बनाता है और संप्रेषणीय भी।)

अभिव्यक्ति हेतु मानव ने जिन संसाधनों का चुनाव किया, उनमें चित्रों का स्थान सर्वोपरि था। प्रागैतिहासिक कालीन गुहा-चित्र इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। लोक कलाकार के लिए चित्रात्मक अंकन सर्वाधिक सम्प्रेषणीय माध्यम रहा है। लोक-कला भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की संवाहिका है। यदि आदिकवि वाल्मीकि की रचना 'रामायण' और गोस्वामी तुलसीदास की कालजयी कृति 'रामचरितमानस' जन-जन के हृदय में वास करती हैं तो लोक कलाकार द्वारा अंकित रामकथात्मक-चित्र रंग-रेखा व आकृतियों के रूप में मानव-चेतना पर बिम्ब रूप में अपना स्थायी प्रभाव छोड़ने की क्षमता रखते हैं। मधुबनी शैली के लोककला-चित्रों में अभिव्यक्ति का प्रतिरूप जिस कुशलता या सहजता से रामकथा का अंकन करता है, वह निश्चय ही स्पृहा के योग्य है।

भारत के बिहार राज्य में अवस्थित 'मिथिला' नामक स्थान 'मधुबनी' चित्रों का मूल केन्द्र है। इन लोकचित्रों का इतिहास रामायण-काल से माना जाता है। कहा जाता है कि राम व सीता के विवाह के अवसर पर मिथिला-नरेश राजा जनक ने अपने राजमहल की चित्रात्मक साज-सज्जा हेतु अनेक कलाकारों को नियुक्त किया था। उन्हीं कलाकारों की अभिव्यक्ति को 'मिथिला शैली' के चित्र कहा जाने लगा। 'मधुबनी' शब्द का तात्पर्य 'शहद के वन' एवं 'मधुर वाणी' से है। इस शैली के लोकचित्र पूर्णतः अपने विशेषण के अनुरूप सुखद भावाभिव्यक्ति से पूर्ण हैं। सीता की जन्मस्थली होने के कारण इन लोकचित्रों में राम-सीता से सम्बन्धित अंकन बहुल हैं।

रामकथात्मक चित्र मूलतः भित्तियों पर अंकित किये जाते हैं। सतह तैयार करने हेतु गोबर, मिट्टी, प्लास्टर, चूना आदि लीप कर भित्ति को समतल किया जाता है। तत्पश्चात् माचिस की तीली अथवा बाँस द्वारा निर्मित ब्रश द्वारा आकृतियाँ चित्रित की जाती हैं। ये आकृतियाँ रेखांकन रूप में काले रंग द्वारा चित्रित की जाती हैं। रेखांकन बिल्कुल महीन होता है, जिसे 'काचनी' कहा जाता है। इसके पश्चात् रंग

भरने की क्रिया की जाती है, जिसे 'भरनी' कहते हैं। इस शैली के सभी चित्रों में रंग प्राकृतिक संसाधनों द्वारा एकत्रित कर तैयार होते हैं। काले रंग के लिए काजल, लाल रंग के लिए गेरु, लाल चंदन या जवाकुसुम, सफेद रंग के लिए पिसा हुआ चावल, नीले रंग हेतु नील, पीले रंग के लिए हल्दी, नारंगी रंग के लिए पलाश पुष्प तथा हरे रंग के लिए पत्तियों के रस का प्रयोग किया जाता है।

मूलतः रामसीता-विवाह हेतु निर्मित ये सभी चित्र चटख, आकर्षक व रंग-बिरंगे मनमोहक रूप का प्रस्तुतीकरण करते हैं। राम-सीता-माल्यार्पण, राम-सीता-वार्ता, सीता-विदाई, रानी-यात्रा, राम-सीता-प्रथम मिलन, राम-सीता-स्वयंवर, राम-सीता-लक्ष्मण वन-गमन, नाव-यात्रा आदि विषयों पर चित्रों की संख्या अधिक है। कोहबर घर की दीवारों को अलंकृत करने के उद्‌देश्य से निर्मित ये चित्र अब कागज, कैनवास व कपड़ों पर भी चित्रित किये जाने लगे हैं।

रामकथा व अन्य देवी-देवताओं-जैसे दुर्गा, काली, सरस्वती, शिव-पार्वती, राधा-कृष्ण, इन्द्र, विष्णु-लक्ष्मी, अर्धनारीश्वर, हनुमान, सूर्य आदि धार्मिक आकृतियों को मध्य भाग में चित्रित किया गया है; जबकि बचे हुए स्थान को प्राकृतिक प्रतीकों यथा फूल, बेल, कमल, पत्तियों, वृक्ष, बाँस, मोर, तोता, कछुआ, सूर्य, चन्द्र, मछली, तुलसी आदि द्वारा भरा गया है। चारों ओर चित्ताकर्षक बॉर्डर द्वारा चित्रों को अलंकृत किया जाता है जिसके कारण मधुबनी शैली में निर्मित चित्रों में खाली स्थान नहीं दिखाई देता। बारीक काली रेखाएँ सम्पूर्ण चित्र को आकर्षक बना देती हैं और यही इस शैली की मौलिकता है।

रामकथात्मक चित्रों में राम, सीता, लक्ष्मण, हनुमान व अन्य देवी-देवताओं के चेहरे अधिकतर 'साइड व्यू' से तथा धड़ के नीचे का भाग सम्मुख मुद्रा में चित्रित किया गया है। लम्बी नुकीली नाक व मोटी बड़ी आँख वाली आकृतियाँ इस शैली की खास विशेषता है। परवर्ती काल में अंकित किये जाने वाले लघु चित्रों या मिनियेचर पेंटिंग्स पर इस लोकचित्रकला का प्रभाव दिखाई देता है। कुछ धार्मिक चित्रों में, जिनमें स्वतंत्र रूप से एक ही मुख्य आकृति का अंकन है (जैसे दुर्गा, काली, सूर्य, सरस्वती आदि) उनमें सम्पूर्ण रूप से चेहरा सम्मुख मुद्रा में चित्रित किया गया है। इन आकृतियों को दोनों आँखों सहित बनाया गया है। किन्तु ऐसे चित्रों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। कोहबर या विवाह जैसे विषय से सम्बद्ध होने के कारण ये सभी चित्र प्रायः सुखद भावों से पूर्ण हैं। राम कथात्मक इन सभी चित्रों में प्रेम, पराक्रम, समर्पण, उर्वरकता व समृद्धि के भावों को लोक प्रतीकों यथा-मछली, मोर, चिड़िया, तोता, हाथी, कछुआ, सूर्य, चन्द्र, कदली-वृक्ष आदि द्वारा सम्प्रेषणीय बनाया गया है।

व्यावसायिक कला का रूप ले रही मधुबनी की यह चित्रशैली दीवारों के अतिरिक्त कागज, कैनवास, कपड़े व सिल्क जैसे अनेक माध्यमों पर आकार ले रही है। सरकारी सुविधाएँ व प्रोत्साहन पाकर अनेक कलाकार पीढ़ी-दर-पीढ़ी इस विरासत का हस्तान्तरण कर रहे हैं। मिथिला नगरी में राम-जानकी विवाहोत्सव से आरम्भ लोक-चित्रों की यह कला-यात्रा अनवरत अपनी अमिट पदचाप छोड़ती रहेगी; क्योंकि इस लोक-कला का प्रारम्भ उन कालजयी पात्रों की प्रेरणा से उद्‌भूत हुआ है जो स्वयं हर भारतवासी की आत्मा में निवास करते हैं।

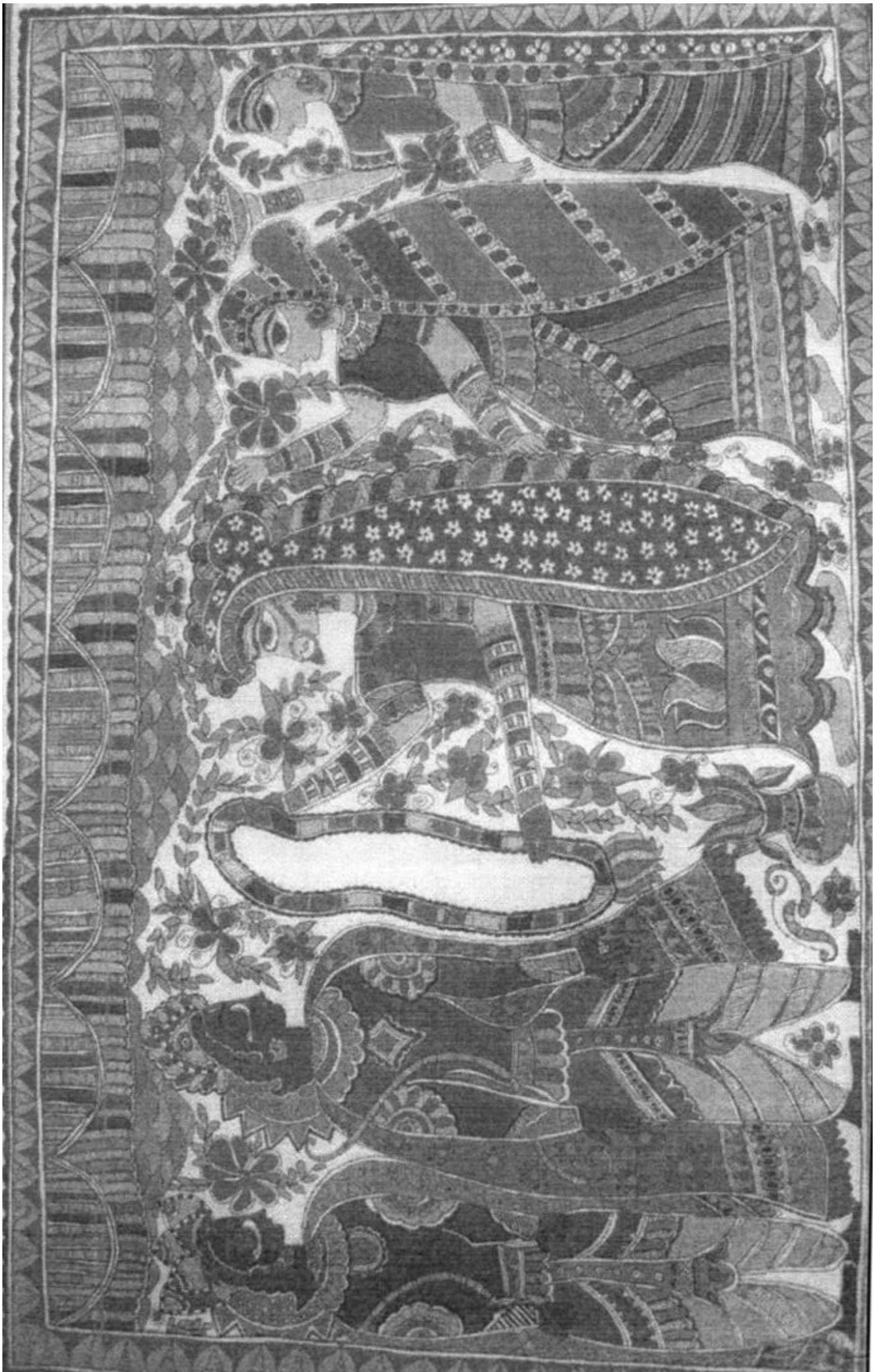

समन्वय के प्रतीक राम

आर. डी. सोनकर

कबीर की रचनाओं में राम का नाम बहुत पाया जाता है; किन्तु कबीर के राम वह नहीं हैं, जिन्हें हम अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र रामचन्द्र कहते हैं और भगवान विष्णु का उन्हें अवतार मानते हैं। कबीर के राम निर्गुन हैं, सगुन नहीं। निराकार हैं, साकार नहीं। इसे उन्होंने कहकर स्पष्ट भी किया है–

''एक राम दशरथ का प्यारा, एक राम ने सकल पसारा।''

अर्थात् राम वह है जिन्हें राजा दशरथ के प्रिय पुत्र के रूप में सभी जानते हैं और दूसरे निराकार हैं, जिसने सारा संसार रचा रखा है–दोनों एक नहीं हैं; बल्कि भिन्न हैं। इसी क्रम में कबीर आगे कहते हैं–

''दशरथ का सुत राम बखाना। राम नाम का मरम न जाना।।''

अर्थात् निर्गुन राम के मर्म को न जानकर लोग दशरथ के पुत्र राम को ही निर्गुन राम समझ बैठे हैं।

राम का शाब्दिक अर्थ है जो सारे विश्व में रमा हो–व्याप्त हो–मन में रमा हो किन्तु वह निर्गुन होगा, सगुन नहीं। साकार होकर वह सारे विश्व को नहीं देख सकता और न ही उसका संचालन कर सकता है, न उसपर नियंत्रण रख सकता है। कबीर ने निराकार के स्वरूप के बारे में कहा है–

**''जाके मुख-माथा नहीं, नहीं रूप-कुरूप।
पुहुप वास से पातरा, ऐसा तन्त अनूप।।''**

अर्थात् निराकार राम के मुख–माथा कुछ नहीं है। न वह रूपवान है और न ही कुरूप है। वह फूलों की गंध से अधिक सूक्ष्म है–इस प्रकार उसका तल अनुपम है–अनूठा है।

कबीर का राम वह है, जिसे वेदों और उपनिषदों में ब्रह्म कहा गया है। ब्रह्म अनादि, अखिल ब्रह्माण्ड की रचना करता है। कबीर के राम भी वही करते हैं। कबीर के राम (उपनिषदों के ब्रह्म) में सारा जगत् समाविष्ट है। ब्रह्म एक से अनेक हो जाता है–**''एकोऽहम् बहुस्याम् प्रजायेय।''** कबीर ने इसे कहा है–**''एक ते अनन्त, अनन्त एक हो आया। परिचय नहीं भए जब एक ते, तो अनन्तो एकै माँहि समाया।।''**

वेदों में कहा गया है–**'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'** (केवल ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है। कबीर का भी कहना है कि यह संसार माया है–झूठ है, जिसमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश सभी का अभाव हो जाता है–

**''झूठ-झूठा कर डारहु मिथ्या यह संसार।
एकै नारी जाल पसारा, जग में भया अंदेसा।
खोजत-खोजत काहू अन्त न पाया; ब्रह्मा, विष्णु, महेशा।।''**

ब्रह्म बहुत प्रकार के चित्रों को बनाकर रास रचाता है; परन्तु कबीर कहते हैं कि ये पुण्य–पाप करने वाले प्राणि वर्ग, सुर–साधक जगत–प्रपंच ही नहीं, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, सूर्य, चन्द्र, नाग–लोक से लेकर विष्णुलोक तक सब क्षण मात्र में गल–पच कर विनष्ट हो जाते हैं–**''विष्णु लोक विनसे दिन माँही,**

हौं देखा प्रलय की छाहीं।'' किन्तु कबीर का यह परमतत्व अन्य ईश्वर या ब्रह्म से भिन्न है। वह न तो अयोध्या का राम है और न गोकुल का कृष्ण है और न अन्य कोई देवी-देवता ही है। यह न ही विष्णु है, न महेश है। यह 24 अवतारों में से भी कोई नहीं है। अर्थात् सभी अवतारों को वह मायावी मानते हैं और उन्हें अस्वीकार कर देते हैं। ये सब उनके राम, जो ब्रह्म हैं, वे अलग व भिन्न हैं–

''दस अवतारु ईश्वरी माया, कर्ता कै जिन पूजा।
दशरथ कुल औतारि नहिं आया, नहिं लंका के राव सताया।
नहिं देवकी के गर्भहि आया, नहीं जसोदा गोद खेलाया।
पृथ्वी रमन-धमन नहिं करिया, पैठि पताल नहीं बलि छलिया।
ई सब काम साहब कै नाहिं, झूठ कहै संसारा।''

कबीर की दृष्टि में इस जगत् का कर्ता-धर्ता गुण-रहित निर्गुण-निरंजन है। अर्थात् चेतन के बिना कुछ करने में असमर्थ है और अवतार सगुण है। ऐसी दशा में सगुण और निर्गुण एक नहीं हो सकते। क्योंकि कबीर कहते हैं–''**वे निर्गुणिया ते-गुणवन्ता, मति एकै में सान।**'' अर्थात् निर्गुण और सगुण को एक करके मत देख, क्योंकि एक मायातीत है और दूसरा मायिक है। इसलिए दोनों में तालमेल नहीं हो सकता। वेदों और उपनिषदों में कहा गया है–''**एकोऽहम् द्वितीयोनास्ति**''। कबीर इस विचारधारा के उपासक थे। उनका कहना है कि जिसकी उपासना होती है, जिसका चिन्तन होता है, वह एक ही तत्व है। उसी एक तत्व के साधने में सभी की सिद्धि हो जाती है तो फिर अनेक की साधना की क्या आवश्यकता है–''**एक साधे सब साधिया; सब साधे एक जाय।**'' इस्लाम में भी एक ही ख़ुदा (अल्लाह) को मानते हैं।

कबीर के समय देश में हिन्दू और मुस्लिम दो ही जातियाँ मुख्य रूप से पाई जाती थीं। हिन्दू राम को मानते थे तो दूसरे अल्लाह को। दोनों जातियों में धार्मिक और साम्प्रदायिक तनाव भी हो जाया करता था; जैसा कि अब भी यदा-कदा होता रहता है। कबीर इन दोनों के मध्य समन्वय स्थापित करना चाहते थे और अपनी सशक्त वाणी से दोनों जातियों के धर्मगुरुओं को स्पष्ट एवं कठोर शब्दों में सदा लताड़ते भी थे। वह जो भी कहते निर्भय होकर कहते थे, जैसे–

''वे ही महादेव, वे ही मुहम्मद; ब्रह्मा-आदिम कहिए।
कोई हिन्दू कोई तुरुक कहावैं; एक ज़मीं पर रहिए।''

उनके मत में राम या ख़ुदा की एक ही शक्ति है जो समस्त जगत को धारण करती है-सारे ब्रह्माण्ड का नियंत्रण करती है–'**राम खुदाय सक्ति शिव एकै।**' वेदान्त के इसी महापुरुष को महादेव भी कहा गया है। दोनों जातियों के बीच वह समन्वयवादी की भूमिका निभाते थे।

वेदान्त में एक पुरुष कहा गया है और उस पुरुष का सम्बन्ध माया से नहीं, प्रत्युत प्रकृति से है। प्रकृति को त्रिगुणी (सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण) कहा गया है। इस प्रकृति को गायत्री भी कहा गया है जो तीनों गुणों की साम्यावस्था से उत्पन्न होती है। अर्थात् वह भी सगुण है। इन तीनों गुणों से ब्रह्मा, विष्णु और महेश का उत्पन्न होना कहा गया है, जिनको सद्गुरु साहब कहते हैं। कबीर कहते हैं–

''रजोगुण ब्रह्मा, तमोगुण संकर; सतोगुणी हरि होई।
कहहिं कबीर, राम रमि रहिए; हिन्दू तुरुक न कोई।''

आगे कहा है–

''हिन्दू कहै मोहि राम पियारा; तुरुक कहै रहमाना।
लड़ते लड़ते दोऊ मरिगै; मरम न केऊ जाना।।''

कबीर सभी प्राणियों को समान मानते थे। जीव-जीव में भेद नहीं करते थे। जात-पाँत में, ऊँच-नीच में विश्वास नहीं करते थे; अपितु वह जाति-प्रथा के विरोधी थे। सभी जीवों को राम के जीव मानते थे। उनका मत कहीं-कहीं जीववाद की भी स्थापना करता है जैसा कि उन्होंने कहा है–

''जो जानहु जीव अपना; करहु जीव से साथ।''

वह सभी माने में जीव-प्रेमी थे, मानव-प्रेमी थे और प्रेम का पाठ सभी को बताते थे। उन्होंने कहा भी है–

''पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, भया न पण्डित कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पण्डित होय।''

हिन्दू और मुसलमान जब धर्म के नाम पर विवाद करते थे–राम और अल्लाह के नाम पर लड़ते थे तो उनको बड़ा दुःख होता था। वे दोनों को समझाते थे और मिलजुलकर प्रेम के साथ रहने को कहते थे–

''हिन्दू अन्धा, तुर्की काना; दोऊ से है ज्ञानी सयाना।
कहत कबीर राम-गुन गाओ; हिन्दू-तुरुक दोऊ समझाओ।''

वे अपने को राम बनाम रहीम के विवादों से अलग रखते थे और दोनों धर्म के गुरुओं को सत्य का मार्ग बताते रहते थे। वह कहते थे–

''सुर, नर, मुनि अरु औलिया; ये सब बसते तीर।
अल्लाह-राम की गति नहीं; तँह घर किया कबीर।''

वह मन्दिर-मस्जिद के अन्दर पूजा करने में विश्वास नहीं करते थे और न ही तीर्थ-यात्रा व हज जाने में विश्वास करते थे। उनका कहना था कि जब ईश्वर या अल्लाह सर्वत्र व्याप्त है, घट-घटवासी है तो फिर एक स्थान पर बैठकर पूजा करने का क्या तुक है–

''जो खुदाय मस्जिद बसत है; और मुलक केहि केरा।
तीरथ-मूरत राम निवासी; दुइ कहाँ, कतहुँ न हेरा।''

कबीर राम (निर्गुण) के परम उपासक थे और 'राम' के अलावा किसी अन्य की उपासना की आवश्यकता नहीं समझते थे। वे कहते थे–

''राम नाम अति दुर्लभ; अउरे ते नहिं काम।
आदि अन्त अऊ जुग-जुग; मोहि रामहिं ते संग्राम।''

कबीर कहते हैं कि राम की महिमा अपरम्पार है, उसकी कृपा से असम्भव सम्भव हो जाता है और मनुष्य दुर्लभ की प्राप्ति कर सकता है। वह सूर्य व शेषनाग आदि दैवी शक्तियों का नियंत्रण करता है और उन्हें संचालित करता है। वे कहते हैं–

''पंगा मेर सुमेरु लंघै, त्रिभुवन मुक्ता डोलै।
गूँगा ज्ञान विग्यान प्रगासै, अनहद बानी बोले।
अकासहिं बांधि पतालहि पठवै, सेस सरग पर राजै।
कहैं कबीर राम है राजा, जो कछु करै सो राजै।।''

अर्थात् राजा राम चाहें तो लँगड़ा सुमेरु पर्वत लांघ सकता है और तीनों लोक में मुक्त होकर घूम सकता है। गूँगा ज्ञान-विज्ञान विषयों पर निरन्तर बोल सकता है। सूर्य को आकाश से पाताल भेज सकता है और शेषनाग को आकाश में विराजमान कर सकता है। राजा राम सर्वसमर्थ हैं–वह जो भी करें उन्हें शोभा देता है।

सूरदास भी अपने हरि की वन्दना में वही बात कहते हैं–

''जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै; अंधे को सब कुछ दरसाई।
बहिरौ सुनै, गूँग पुनि बोलै; रंक चलै सिर छत्र धराई।।''

सन्त कबीर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह अनपढ़ थे। उनका जन्म जुलाहा के घर में हुआ था; अतः उन्हें शिक्षा प्राप्त करने का प्रश्न ही नहीं था। बचपन से ही वह कर्घे पर कपड़ा बुनते थे और परिवार का पालन करते थे। अतः उन्हें सन्तों और गुरुओं के संग रहकर ज्ञान प्राप्त करने का अवसर भी नहीं मिला था। उन्हें जो भी ज्ञान मिला आत्मज्ञान से मिला। राम-भक्ति से मिला। कर्मयोग से मिला। ऐसी परिस्थितियों में उनका तत्वज्ञान अद्भुत व अद्वितीय कहा जाएगा, जिसे संसार में बहुत से विद्वान्, ज्ञानी, दार्शनिक और विचारक भी प्राप्त नहीं कर सके। कबीर के राम अनादि हैं, जो अखिल ब्रह्माण्ड का रचयिता है–उसी की शक्ति से ब्रह्म सृष्टि की रचना करता है और एक से अनेक हो जाता है। ब्रिटिश दार्शनिक ब्रैडले भी इस निरपेक्ष तत्त्व को स्वीकार करता है। जर्मन दार्शनिक काण्ट भी ईश्वर को आदिकारण से समीकृत नहीं मानते–उनका सर्वोच्चकर्ता भिन्न है। बौद्धधर्म में भी 'निर्वाण' को इसी उच्चतम तत्व अथवा निरपेक्ष परमतत्त्व के समकक्ष मानते हैं–नागार्जुन ने इसी प्रकार के सोच-निर्वाण की व्यवस्था की है।

आदि शंकराचार्य ने अद्वैत ब्रह्म को मानते हुए केवल ब्रह्म को सत्य कहा है और जगत् को माया (मिथ्या)। कबीर भी एक राम (ब्रह्म) को सत्य और संसार को मायाजाल कहते हैं–

''माया-मोह सकल संसारा; इहै विचार न काहु विचारा।
माया-मोह कठिन है फन्दा; करै विवेक सोई जन बन्दा।
राम नाम ले बेड़ा पारा; सो तों लै संसारहि पारा।।''

परमतत्व का ज्ञान कबीर ने जिस सरल भाषा में दिया है और बोलचाल के शब्दों में सहज भाव से दिया है–वह दुर्लभ है। ऐसे सन्त कबीर को कोटिशः साधुवाद और शत्-शत् नमस्कार।

रामचरितमानस : राम का अर्थ और जनलोक

विद्यासागर डॉ. रमेश सोबती

पिछले ग्यारह शताब्दियों के सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य के साथ-साथ समग्र भारतीय वाङ्मय के परिप्रेक्ष्य में गोस्वामी तुलसीदास सच्चे अर्थों में विश्वकवि हैं। उनके 'रामचरितमानस' में व्याप्त उदात्त जीवन-दर्शन आज देशकाल की सीमाओं को लांघकर सम्पूर्ण मानव जाति को सत्य के प्रशस्त मार्ग पर अग्रसर कर रहा है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम सम्पूर्ण विश्व में मानवता के आदर्श हैं। वे एक ऐसे व्यक्तित्व हैं जो अपनी वचनपरायणता, कर्तव्यनिष्ठा, शौर्य, विनम्रता, धैर्य, त्याग और विश्व का कल्याण भाव रखनेवाले हैं। इन्हीं गुणों ने श्रीराम को भगवान बना दिया। भगवान राम अर्थात् पूर्ण ईश्वर–

शशब्दो विश्ववचनो महाश्चापीश्वरवाचकः।
विश्वानामीश्वरो यो हि तेन रामः प्रकीर्तितः।।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण 111/18 **)**

अर्थात्–'रा' शब्द परिपूर्णता का बोधक है और 'म' शब्द परमेश्वर का वाचक है। अतः श्रीराम पूर्ण परमेश्वर हैं, यही इसका तात्पर्य है। इसलिए श्रीराम शब्द का अर्थ पूर्ण परमात्मा ही लिया जाता है। श्रीराम धर्म के मूर्तिमान स्वरूप हैं, सत्यनिष्ठ और पराक्रमी हैं। राजा दशरथ ने पुरोहित वसिष्ठ जी के द्वारा बालक का नाम बड़ा सुन्दर रखवाया। महर्षि वसिष्ठ जी बोले–

श्रियः कमलवासिन्या रमणोंज्यं महाप्रभुः।
तस्माच्छीराम इत्यस्य नाम सिद्ध पुरातनम्।।
सहस्रनाम्नां श्रीशस्य तुल्य मुकिप्रंदनृणोम्।
विष्णुमासि समुत्यन्नों विष्णुरित्यमिछीयते।।

(पद्मपुराण)

अर्थात् ये महाप्रभु कमल में निवास करने वाली श्रीदेवी के साथ रमण करने वाले हैं, इसलिए इनका परम प्राचीन स्वतः सिद्ध नाम 'राम' होगा। यह नाम श्रीविष्णु के सहस्र नामों के समान है तथा मनुष्य को मुक्ति प्रदान करने वाला है। चैत्र मास श्रीविष्णु मास है। इसमें प्रकट होने के कारण विष्णु ही कहलाएँगे। श्रीराम पुराण-पुरुष हैं। सृष्टि की स्थिति और गति के मूल में व्यापक रूप से निहित परमसत्ता के अवतार के रूप में धरती पर मानवीय लीला करने वाले 'राम' के व्यक्तित्व में निष्ठा रखने वालों को इस बात से बहुत क्षोभ होता है कि वैज्ञानिक तर्कनिष्ठ वाले विद्वानों को रामायण-वर्णित 'राम' और उनके जीवन-वृत्त के सम्पूर्णतः ऐतिहासिक होने के सम्बन्ध में अनेक संदेह है। श्री विश्वनाथ लिमये ने 'वाल्मीकि के ऐतिहासिक 'राम' नामक ग्रंथ में लिखा है, ये राम कौन थे? थे भी या नहीं? आज का बुद्धिजीवी दुहाई देता विज्ञान-युग की और प्रयोगशाला के प्रमाण माँगता है। श्री लिमये सबसे बड़ा आधार यह बताते हैं कि भारतीय जीवन और भारतीय वाङ्मय पर राम का गहरा प्रभाव इस बात का

ठोस सबूत है। भारत के पत्थर, पेड़, नद-नदियाँ, पर्वत, यहाँ तक कि समुद्र की लहरें भी राम के होने का अर्थ बताते हैं। उनकी गौरवगाथा कहती हुई प्रतीत होती हैं। मनुष्य झुठलाया जा सकता है, भूगोल नहीं। चित्रकूट, पंचवटी, शृंगवेरपुर, रामेश्वरम् तथा अयोध्या से स्थान हजारों वर्ष पहले बड़े प्रसिद्ध हुए।

'राम' के होने के अर्थ में जिस निरंतरता की आवश्यकता है, जिसकी पठनीय संवेदना की अपेक्षा है, वह शायद अब तक हिन्दी-पाठक नहीं जुटा पाया, क्योंकि लोक-हृदय में विराजमान राम की काव्यमय अनुभूति और संस्कारों को समझ पाना, उतना सरल और सहज नहीं है। जब तक अपनी आत्मीयता को राम की आत्मीयता से जोड़कर मनुष्य नहीं हुआ जाता, तबतक राम की मर्यादा से नहीं जुड़ा जा सकता। राम तो वाल्मीकि से लेकर तुलसी जैसे लोककवि तक एक ही हैं। लोकपाल श्रीराम के सन्दर्भ में वाल्मीकि, भास, कालिदास, प्रवरसेन, भवभूति जैसे कवियों की परम्पराधारा तथा कथास्त्रोतों तथा घटनाक्रम के साथ ही परस्पर सम्बन्धों की रचना में नई-नई दीप्ति का अनुभव हुआ है। तुलसीदास को जिस लोकनायक की तलाश थी, वह देवताओं से भी श्रेष्ठ लोकनायक मानस की तलाश थी। वहाँ भवभूति को जिस राम की तलाश थी, वह लोकेषणा के आवरण को चीरकर खड़ी हुई मानवीय करुणा के साकार विग्रह की तलाश थी। तुलसी ने मानस में ऐसे ही राम को स्थापित किया, जो साधारण से साधारण व्यक्ति के घाव की पीड़ा को अपने ऊपर लेने वाले जीवन्त करुणशील सिन्धु की थी। इसलिए तुलसीमानस में राम की ऐसी उपस्थिति बोध को अपने काव्य में आद्यंत बनाये रख सके। मानस कवि तुलसी जैसे भावबोध में अनात्मीय भी, अपने आत्मीय भावबोध का विस्तार करता है। राम किसी के लिए सगुण साकार हैं, तो किसी के लिए शून्य, किसी के लिए मनुष्य, किसी के लिए देवता, किसी के लिए इतिहास, किसी के लिए शब्द। यही है राम के होने का अर्थ।

तुलसी की रामकथा में कलियुग से पीड़ित जीवों के कष्टनिवारण का सुन्दर विधान है। लोगों के कष्ट-निवारण के लिए जब उन्होंने गम्भीर चिन्तन किया तो उनकी दृष्टि राम तथा रामकथा पर गई। रामकथा का स्वरूप कैसा होना चाहिए, इसपर चिन्तन-मनन करने के पश्चात् उन्होंने शिव से समन्वित, रामभक्ति रूपी सुरसरि-धारा का अवतरण किया। वह सुरसरि धारा सर्वसुलभ और सर्वत्र विद्यमान थी-**''सबहि सुलभ सब दिन सब देखा''**। तुलसी के पूर्व की कथा में देवतत्व की प्रधानता थी। उसमें लोक का ध्यान नहीं रखा गया था। तुलसी का मानस दो तटलोक और वेद के रूप में समाहित है-**''लोक वेद मत मंजुल कूला''**। मानस का सबसे बड़ा गुण है, भावों का उदात्तीकरण; यानी उदात्त भावों की अभिव्यक्ति, जो बड़े ही प्रभावी रूप में हुई है। मानस त्यागपूर्ण जीवन-पद्धति का जयघोष है-क्योंकि त्यागपूर्ण योग ही हमारी संस्कृति है। संस्कृति, प्रकृति और विकृति शब्दों का मानस के परिप्रेक्ष्य में गवेषणात्मक विवेचन यही है कि भूखे के सामने से थाली हटा कर फेंकना विकृति है। अपना पेट भरना प्रकृति है; जब कि स्वयं भूखे रह कर दूसरों को अपना भोजन प्रदान करना संस्कृति है। मानस विकृति को प्रकृति में तथा प्रकृति को संस्कृति में परिवर्तित कर देता है। वामन से विराट करना यही मानस में है। प्रकारान्तर से तुलसी और मानस अन्योन्याश्रित हैं। मानस को तुलसी ने विश्वजनीन बना दिया है। डॉ. सारस्वत लिखते हैं-तुलसी ने राम के माध्यम से जो आदर्श प्रस्तुत किया है, यदि उसको आचरण का विषय बनाया जाए तो यह संसार बहुत खूबसूरत हो जाएगा। डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह कहते हैं कि तुलसी जी मानस में लिखते हैं-**''करव लोकमत वेदमत, नृप नय निगम निचोरि।''** अर्थात् लोकमत के अनुसार वैदिक परम्परा का निर्वहन करते हुए राजनितिक परिप्रेक्ष्य में शुचिता तथा पारदर्शिता सम्भव है। इसीलिए उन्होंने यह भी कहा कि अद्वैत वेदान्त का सारतत्व तुलसी की रामकथा

में समाहित है। तुलसी सुरसरि को नहीं मानते। मानस और गंगा दोनों पुण्यप्रदा तथा पापहारिणी हैं। डॉ. शम्भुनाथ द्विवेदी ने तुलसी के चरित-नायक को लोकोन्मुखी चरित्र की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए लिखा है, "कि लोकजीवन में आदर्श व्यक्ति की आवश्यकता होती है। भगवान् श्रीराम ने चरित्र तथा व्यवहार से अपनी अलौकिकता का परिचय दिया है। यह ध्यातव्य है कि सारे अवतार लोक के प्रति समर्पित रहे हैं। इस दृष्टि से राम का लोकनायकत्व भारतीय संस्कृति में सबसे ऊपर है।"

तुलसी ने समाज में सबका समन्वय किया है। विभिन्न संस्कृतियों–देव-संस्कृति, दानव-संस्कृति, मानव-संस्कृति, तिर्यक-संस्कृति, अरण्य-संस्कृति आदि का समन्वय अपने चरित्र-नायक के माध्यम से वे कराते हैं। लोक जीवन कैसे समृद्ध बने, कैसे सुखी बने, तुलसी की सबसे बड़ी यही चिन्ता थी। इसीलिए उन्होंने लोक-चेतना को जाग्रत करने का कार्य किया। समाज में दबे-कुचले-शोषित-पीड़ित-उपेक्षित-तिरस्कृत और समाज से बहिष्कृतजनों को समाज की मुख्य धारा में जोड़ने का स्पृहणीय कार्य मानस के द्वारा किया। राम का लौकिक आचरण ही तुलसी साहित्य का लोकजीवन है। लोक-जीवन के चार पक्ष हैं–वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनितिक। लोकजीवन राजनीति से भी जुड़ा है। वर्तमान समय में राजनैतिक मापदण्ड पतनोन्मुख है। तुलसी ने जिन राजनैतिक मापदण्डों की स्थापना की थी, आज उसका क्षरण हो रहा है।

'रामचरितमानस' की सार्वभौमिकता को ध्यान में रखते हुए महामना पंडित मदनमोहन मालवीय ने कहा था कि–'यह ग्रन्थ समस्त मानवजाति को अनिर्वचनीय सुख एवं शान्ति पहुँचाने का साधन है।' राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने 'मानस' को जीवन पर्यन्त अपने मार्गदर्शक के रूप में स्वीकार किया था। स्वतन्त्र भारत में रामराज्य की कल्पना गाँधी जी ने इसी मानस से अपनाई, जिसमें राजा भरत त्यागी भरत बन गए थे–

"राम मातु गुर पद सिरु नाई। प्रभु पद पीठ जायसु पाई।।
नन्दिगाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा।।
जटा जूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुस साँथरी सँवारी।
भूषण बसन भोग सुख भूरी। मनतन बचन तजे तिन तूरी।
अवध राजु सुर राजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई।।
तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा।।"

जीवन की इस पद्धति में भला उपभोक्ता संस्कृति का क्या वश चलेगा। जहाँ–'**रामलखन सिय कानन बसहीं। भरत भवन बसि तप तब कसहीं।**' तुलसी का आज के विश्व को, जड़ता पर चेतना के विजय का यही संदेश है। भारत का 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का नारा भी एक प्रकार का भूमण्डलीकरण ही था, पर इसके मूल में मानवीय संवेदना थी, रिश्तों की पवित्रता थी, आदमीयत का जयनाद था। उपभोक्तावादी अपसंस्कृति से यही मानववाद निज़ात दिला सकता है। व्यावसायिकता के शोषण-तन्त्र को तोड़ सकता है, पदार्थवाद को तिलांजलि देकर प्रत्ययवाद, विचार को स्थापित करना होगा। मानस का यही पैगाम है।

तुलसी का विश्वास है कि लोक कल्याण का मूल भाव साहित्य का प्राणाधार है। इसीलिए समाज उनकी मानस-कृति को समादृत करता है, क्योंकि उसमें लोक कल्याण की भावना निहित है, नहीं तो उनका प्रयास व्यर्थ होता, "**जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं, सो श्रमवादि बाल कवि करहीं।**" मानस रामायण विश्व में अपनी शैली की अद्‌भुत कृति है। वेद, स्मृति, पुराण के उपदेशों का सारभूत

यह धर्मग्रन्थ है। इसमें ज्ञान, भक्ति, वैराग्य की विमल त्रिवेणी का प्रवाह बहता है। इस चेतनामय ग्रन्थ के अभाव में जनजीवन जड़वत और शुष्क बन जाता। तुलसी जी की भाषा में जो प्राणप्रद शक्ति है वह किसी और की भाषा में नहीं। संसार के प्रत्येक मानव ने उसका रसास्वादन कानों द्वारा किया। गीत और अर्थ–शैली की सरलता और विचार तथा भावना की गहराई के मिश्रण में गोस्वामी तुलसीदास का मानस हिन्दी का अत्यन्त प्रसिद्ध यह ग्रंथ और शिक्षा का बोध माना जाता है। तुलसी एक ऐसे कवि हैं जो देश और काल की परिधि के ऊपर हैं और उनकी वाणी समूची सभ्यता और मानवीय कुटुम्ब के लिए है। मानस का मूलमंत्र सत्य की विजय और कर्तव्य की ऊँची प्रतिष्ठा है।

उक्त कथनों से स्पष्ट है कि गोस्वामीजी के पास रामकथा की सुदीर्घ परम्परा का मिथ था, जिसका उन्होंने यथावसर सदुपयोग किया। वे समकालीन तथा भविष्य के समाज के लिए राम जैसा ही आदर्श पुरुष नायक के रूप में देखना चाहते थे। सामाजिक व्यवस्था तभी सुसंगत एवं मर्यादित रह सकती है, जब सत्य को डंके की चोट पर सत्य कहा जाय और असत्य की सार्वजनिक रूप से भर्त्सना की जाए।

''हम चाकर रघुवीर के, पढ़ौ लिखो दरबार।
तुलसी अब का होहुँगे, नर के मनसबदार।।''

लावनी में रामकथा के प्रसंग

डॉ. कवीन्द्र कुमार केसरी

रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत् तीन उपजीव्य महाकाव्य हैं। रामायण इनमें आदिकाव्य है जिसकी रचना आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने की थी। रामकथा का आदि स्रोत भी अनेक विद्वान् वाल्मीकीय रामायण को ही मानते हैं। इसी से प्रभावित होकर आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व भक्तशिरोमणि तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' की रचना की जो भाव-भाषा, ज्ञान-विज्ञान, भक्ति, नीति, समन्वयशीलता के कारण कोटि-कोटि जनता के गले का हार बन गयी है। इससे जन-जन का लोक-परलोक दोनों सुधरता नज़र आया और वह निरन्तर लोकप्रिय होती चली गयी। इसका सुपरिणाम यह हुआ कि उस समय या उसके बाद से अद्यावधि जितने भक्ति, ज्ञान के ग्रंथ लिखे गये, उनमें प्रायः सभी पर उसका असर दिखलाई पड़ा। 'रामचरितमानस' को सोलहवीं सदी के अन्त की रचना मान लिया जाय तो उसके बाद जो भी काव्य-विधाएँ आयीं, वे येन-केन प्रकारेण उससे प्रभावित अवश्य मिलती हैं। उसी समय यानि 17वीं सदी के आरम्भिक काल में लावनी-गायन की एक नयी विधा की शुरुआत हुई। इसका जन्म तो महाराष्ट्र में अवश्य हुआ, किन्तु उसे ख्याति मिली उत्तर-प्रदेश, मध्यप्रदेश में, क्योंकि यह भगवान श्रीराम की जन्म तथा कर्मभूमि भी है। कालान्तर में व्यवसाय का मुख्य केन्द्र होने के कारण यह परम्परा गंगा-शोण के सहारे कोलकाता तक पहुँच गयी। वहीं पहला 'नागरी प्रेस' खुला जिसके कारण अनेक कृतियों का प्रकाशन सम्भव हो सका। इस तरह बम्बई से कोलकाता तक साहित्य का माहौल जो सृजित हुआ, वह आज तक अनवरत चल भी रहा है।

बम्बई (मुंबई) से सं.1971 (सन् 1867 ई.) में 'अनेक संग्रह' नाम का एक ग्रंथ 432 पृष्ठों का, जिसे श्री महापाच-वंशावतंस अंजोरी महापात्र जिला रायपुर रईसी खैरागढ़ के निवासी के पुत्र पं. रामलाल द्वारा संगृहीत-विविध भांति की राग-रागिणियों एवं उत्तमोत्तम पदों का अपूर्व संग्रह लिखा गया है, मुरादाबाद-निवासी ब्रजरत्न भट्टाचार्य द्वारा संशोधित, सम्पादित और परिवर्द्धित होकर गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास के 'लक्ष्मी वेंकटेश्वर' छापेखाने में छपा था। रामचन्द्र राघो ने मालिक के लिए छापकर प्रसिद्ध किया था, में अद्भुत सामग्रियों का संग्रह है। यह ग्रंथ पैतृक सम्पत्ति के रूप में मेरे पास सुरक्षित है। इसमें लावनियों का प्रभूत (आधा के लगभग) दुर्लभ संग्रह है। संयोग और सौभाग्य से जब इसका मैंने वाचन अवलोकन किया तो लगा कि यह तो रामकथा का एक महाकोश ही है।

मैं कहना यह चाहता हूँ कि रामकथा के ऐसे अनेक ग्रंथ गाँवों में पड़े हुए हैं, जो अत्यन्त जीर्णशीर्ण अवस्था में हैं। रामकथा से जुड़े या रामकथा पर काम कर रहे 'अयोध्या शोध संस्थान' जैसी संस्थाओं को इनके संग्रह, सम्पादन, पुनः प्रकाशन और शोध का कार्य करना चाहिए।

'रामचरितमानस' के समानान्तर अथवा थोड़ा-बहुत आगे-पीछे लावनी-गायकों के भी अनेक अखाड़े खड़े हुए थे, जिनके माध्यम से रामकथाएँ खूब लिखी गयीं। इस ग्रन्थ को केंद्र बनाकर मैं यहाँ

'लावनी गीतों में रामकथा' की विशेष चर्चा करते हुए अन्य प्राप्त लावनियों के साथ समन्वय बैठाते हुए अत्यन्त हर्ष और प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ।

बाबा तुलसीदास ने 'नानापुराण निगमागम' से लेकर जिस सुन्दर काव्य की रचना की, उसमें 'क्वचिदन्यतोऽपि' भी लिखा। सम्भवतः उनका यही भाव था कि नाना पुराण निगमागम के अलावा जो अन्यत्र से ग्रहण किया, वह कुछ और नहीं, व्यापक लोक ही था। उस समय का उनका वह लोक मौखिक परम्परा का था। लोक से लिया और अपने ग्रंथ को लोकोपयोगी बनाने में महारथ भी हासिल कर लिया, जिसके लिए उन्हें हमेशा नमन किया जाता रहेगा।

तो आइये, हम लावनी गीतों में रामकथा की चर्चा करें। रामकथा की महिमा अनन्त है। संशय रूपी पक्षी को उड़ाने के लिए हाथ की ताली बजाकर रामकथा का श्रवण कीर्तन मोक्ष देने वाला है–

''रामकथा सुन्दर करतारी। संसय विहंग उड़ावन हारी।''

–तुलसी

लावनी में राम–प्रताप का वर्णन इस प्रकार किया गया है–

''हे रामचंद्र सुखधाम तुम्हारे नाम बड़े अभिराम वेदगायी है।
हैं जन के प्रान-अधार सुयश छाई है।।
भव अरन्य को नाश करन को खास अग्निप्रकाश नाम आला है।
है गरुड़ ग्रसन, करने संशय व्याला है;
चारों फल देवनहार, कल्पतरु चार नाम उदार अमी प्याला है
दुखकरि नाशन को केहरि मतवाला है।
नहिं नाश होत है शंकर, तुव नाम प्रताप हे रघुवर।
है गनप पूज प्रथम पर, भये बालमीक मुनियों वर।
नाम बलफन्न हजारधरे, महि भार बोझ अपारन दुखहराई है
है जन के प्रान अधार, सुयश छाई है।

–अनेक संग्रह, पृ. 418

इस लावनी में कहा गया है कि रामनाम जप कर योगी, मुनि, शुकदेव अविनासी हो गये। नाम–विश्वासी सनकादि अमर हो गये। नारद ब्रह्मा सुखी हो गये। प्रह्लाद भक्त हो गये। ध्रुव नाम पाकर स्थिर हो गये। पवनकुमार नाम जपकर जगत्–प्रसिद्ध हो गये। अजामिल, गणिका, खग, नाम का आधार पाकर मुक्ति पा गये। हे प्रभु! तुम्हारा नाम जपने से सारे पापों का नाश हो जाता है। निष्काम हो जाता है। सारी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं और किसी के हजार बार नाम जपना, राम के एक बार जपने के बराबर है। इसे तो महेश भी हमेशा जपते हैं, शेष रटते रहते हैं। सब कुछ करके भी बिना नाम जपे भवसागर से पार नहीं उतरा जा सकता, नाम जपने वाले का ही कार्य सफल होता है। इसलिए हे प्रभु! –

'मैं जपता नाम तुम्हारी, निसवासार अवध विहारी।
दीजै दुख मेरी टारी, है अरजी यही हमारी।
जन रामलाल निहोर कहत, कर जोर बसो उर मारे ये रघुराई हैं।''

लावनियों में विरहिणी सीता विलाप जितना मार्मिक कारुणिक है, उतना अन्यत्र कहीं कोई प्रसंग नहीं है। हर तरफ से निराश सीता अश्रुजल को ही अपना साथी मानती हुई अपनी सारी संवेदनाएँ उसी के समक्ष उड़ेल देती हैं–

"अश्रुजल! साथी तुम्हीं हो, आज मेरे शोक में।
हाय रे मुझसी अभागिनी, कौन होगी लोग में।।
नीचतनु! निश्चय अनल में, मैं जलाऊँगी तुझे।
दुःख जिसके हेतु, ये सहने पड़े ऐसे मुझे।।2।।"

–वही, पृ. 423

इस असह्य पीड़ा के बाद भी जानकी के चरित्र और पति-प्रेम की ऊँचाई तो देखिए, कितनी बेजोड़ हैं, जानकी कहती हैं–

"दुःखिनी चाहे रहूँ मैं, तुम उन्हें राखिए सुखी।"

–वही, पृ. 224

लावनियों में कारुणिक प्रसंग अधिक लिए गये हैं। लक्ष्मण-शक्ति का वर्णन बहुत बढ़िया किया गया है। लगभग चार पृष्ठों में सवासौ पंक्तियों की एक ही लावनी मिली, जिसमें मेघनाद के वाण-संधान से लेकर लक्ष्मण के लिए संजीवनी बूटी लाने तक का अद्भुत वर्णन किया गया है। पहले आरम्भ की कुछ पंक्तियाँ देखिए–

"जब मेघनाद ने बान हना लछमन को,
महराज लगत शर मुरछा खाया है।
देख हाल लछमन के बहुत सोचें रघुराया जी।
जिस वक्त लखन रावन-सुत जोधा भारी।
महराज परस्पर लगे जुद्ध करने।
नहिं मानत कोऊ हार दुष्ट लगे छलबल कर लरने।
तब मेघनाद के सारथि रण को भेजे
महराज कोप के धरनीधर ने।"

यह प्रसंग कथात्मक है। राम ने जब बाण-संधान किया तो मेघनाद डरा, सोचा तब तक घातक बाण चलाया जो लक्ष्मण के उर में जा लगा, लक्ष्मण मूर्च्छित हो गये, तब तमाम योद्धा मिलकर उन्हें उठाने लगे, परन्तु तिल भी नहीं उठे, वीर हार मान बैठे, तब हनुमान को मालूम हुआ, दुःखी हुए। तब जामवंत ने सुखेन वैद्य को बुलाने का सुझाव दिया। तब हनुमान जी स्वयं लघुरूप धारण कर वहाँ गये, उन्हें ले आये। वे आये, रघुनाथ को प्रणाम किया, देखा, कहा–कोई वीर तुरंत जाय पर्वत से रातोरात बूटी ले आये, तभी प्राण बचेंगे। तब राम ने हनुमान को जाने का आदेश दिया, हनुमान जी चले तो, पर खल ने मार्ग रोक लिया, उसे मार गिराया, हर्षित हो आगे बढ़े, पहाड़ पर गये तो संजीवनी को पहचानने में उन्हें दिक्कत हुई, वह पहाड़ ही उखाड़ कर लेकर चल पड़े। जब अयोध्या गये तो भरत ने सोचा कोई शत्रु है और हनुमान को मार गिराया। हनुमान ने 'राम-राम' कहा तो समझ गये कोई रामभक्त है, निकट पहुँचे, देखा तो हृदय से लगा लिया, विलाप करने लगे, भगवान का स्मरण किया, हनुमान को चेतना आयी, आपबीती सुनाया तो भरत और दुःखी हो गये, विलाप किया, तब तक इधर आधी रात हो गयी, राम को प्रातः हो जाने की चिन्ता हुई, और दुःख बढ़ा, लक्ष्मण से ही कहा–

"ज्यों पंख बिना खगपती दीन होता है,
महराज बिना मनि के पन्नग जानो।

ज्यों रजनी बिनु चंद भानु बिन दिवस को पहिचानो।
येहि भांति बंधुबिन मम जीवन नहिं होगा।।''

–वही, पृ. 334

राम विलाप कर ही रहे थे, मूर्च्छित लक्ष्मण को सम्बोधित करके, तभी हनुमान जी आ गये, राम ने उन्हें गले लगाया। तब हनुमान जी ने जड़ी पिलाई, लक्ष्मण को चेतना आयी, राम को लक्ष्मण ने भी गले लगा लिया, देव–नारियाँ मंगलगीत गाने लगीं, आकाश से देवों ने पुष्प बरसाये। तब हनुमान जी ने वैद्यजी को उनके आवास तक पहुँचाया, पर्वत को जहाँ के तहाँ छोड़ा। सब मंगलमय हो गया। गीतकार का कहना है कि जो इस कथामृत का पान–गायन करेगा, उसका राम–पद–अनुराग बढ़ेगा, पापों का नाश हो जायगा और वह राम के साथ–साथ सदा रहेगा–

''जो चरित गावे सुने यह, राम पद करुणा बढ़े।
नाश होवे पाप सब अरु, अन्त बसे रहे प्रभु जहाँ।।''

–वही, पृ. 335

लावनी रामचरित में श्रीराम के जीवन की घटनाओं का तिथिवार वर्णन किया गया है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। इसे यथावत् दे देना मैं उचित समझ रहा हूँ। इसकी भाषा सरल, बोधगम्य है–

''श्रीरामचन्द्र महराज संत सुरकाज जन्म जग लिये।
राजा दशरथ के धाम बड़े अभिराम सकल सुख दिये।
भये पन्द्रह वर्ष के राम व्याह गये जान संत श्रुति कहे।
रहे अवध बारहें वर्ष सताईस वर्ष गमन वन कहें।
माधवसित पंचमी जान तेड़ी दिनमान राम तजदिये धाम नहिं रहे।
श्रीरामचन्द्र भगवान बरख बिताय बारहां चित्रकूट में रहे।।(झेला)
मास नव पंचवती मोक्काम किये सुखदायक सीताराम।।
असित अष्टमी फागुन की जाना भये सीता के हरन सुजान।।
नौमी दिन माघ के मास, शुक्लपच्छ खास मास दस कपि खगते सुधि लिए।
दिन द्वादशी के वीर हनुमान, सियाते बात परस्पर भये।।
लगते ही एक दिन पूस, लंक गढ़ फूँक हर्ष मन भये।।
सतमी तिथि हनुमान वीर बलवान, खबर सब रामचंद्र को दिये।।1।।
अष्टमी उहा मध्यान श्री भगवान कूँच कर दिये।। झेला।।
सित परिवार को दधिपास, राम ले पहुँचे सैन हुलास।।
विभीषन मिली चौथ को खास। भये अति मंगल करक प्रकाश।।
दशमी से सेत आरम्भ किया, दृगबंध त्रयोदशमीते बंद कर दिये।।।2।।
द्वितीया दिन माघ के मास कृष्णपच्छ खास राम लंका गढ़ पर चल चढ़े।।
पहिले ते द्वैज सित माघ कृष्ण वैशाख चतुर्दश भले।।
सत्तासी दिन लौ जुद्ध भये। अति कुद्ध मही आकाश लोक सब हले।
मध्यम पन्द्रह दिन सैन किये, दुहूं चैन श्रमित सब टले।।झेला।।
कियो युद्ध बहत्तर बार, नेक नहिं मानत कोई हार।।
अमावस के रावन भैं संहार, देवगन बरषैं फूल अपार।।

दोज शुक्ल पच्छ बैसाख, श्री रघुराज राज रावन-भ्राता कह दिये।।3।।
जानकी तीज को मिली, अधिक सुख बढ़ी, यान चढ़ करके राम सिय चले।।
पंचमी रोज महराज, मुनि भरद्वाज के आश्रम अड़े।
जब बीते चौदह मास करत सब आस समय ताही में राम आ पड़े।।
छठ को भरतादिक मिले, खुशी हो खिले राज सतमी पाये सुख बढ़े।
नौदिन अरु चौदह मास रहे वियोग सिया ते खास, बरष हजार रहे इक पास।।झेला।।
किये बहु विधि के भोग विलास, जो इस चरित्र को पढ़े,
अधिक सुख बढ़े, कहे 'रामलाल' वोही जग जिये।।4।।88।।

–वही, पृ. 336–337

एक लावनी में लावनीकार ने राम को विश्वरूप मानकर उनके प्रत्येक अंग का रूपक बाँधा है। इतना ही नहीं, उनके बल, बुद्धि, विद्या आदि को भी रूपकों में बाँधा है जो अप्रतिम है। इसे भी यथावत् ही प्रस्तुत करना उचित होगा–

''राम तुम सब उर थाना है। विश्व रूप महराज तुम्हें वेदों ने बखाना है।
पांव पाताल शीश अजधाम, और लोक जितने हैं तिसमें अंग रहा सरनाम।
नैन रवि कान दिशा अभिराम, घ्राण तेरे अश्विनी कुमार हैं।
सुन्दर सुख के धाम। केश घन तुव सब जाना है।।1।।
पयोनिधि जीह तुम्हारे हैं, दिवस रात जो होत सोई प्रभु पलक तुम्हारे हैं।।
अगनि आननसु तुम्हारे हैं। बाहू हैं दिगपाल पवन स्वासा जो तुम्हारे हैं।।
रोम तरु तृन के खाना है।।2।।
नारि अजा हांस नदी भाई।
अधर लोभ हैं दशन तुम्हारे यम पदबी पायी।।
अस्थि अद्री रस शब्द गाई, और भोग है चरित, तुम्हारे बिरले लख पाई।।
विष्णु परजापति जाना है।।3।।
तुम्हारे बीरज हैं सो तोय। है भवके विलास तुम्हारे सोई काल सच होय।
तुम्हारे उदर सिंधु हैं सोय। अंग तुम्हारे हैं जो इतना सो अस्थूला।।
अहंकार शिव भगवाना है।।4।।
तुम्हारे बुद्धि सोई अज जान, मन प्रभु के दिन राजा है।
वह सत्य सत्य कर मान। प्रभु तुम व्यापक व्योम समान।
भजन बिना नहिं देख परत हो, जिमि बिन मथे कृसान।
'रामलाल' जन के ये गाना है।।5।।''

–वही, पृ. 339–340

रामलला की बाल लीलाओं का भी मनोमुग्धकारी वर्णन लावनियों में किया गया है। उन्हें ग्राम्य–परिवेश से जोड़ कर बताया गया है कि वह नित्य व्यायाम भी करते हैं और माता–पिता की नित्य सेवा भी करते हैं–

''कुस्ती कबहूँ लड़ें अरु कसरत पेले राम लला।।
कबहूँ मुदगर लेके अपने कर से झेलें राम लला।

कबहूँ सरजू मध्य में नावरि खेवें रामलला।।
कभूँ उड़ावें पतंग सखा संग कबहूँ लरत हैं रामलला।।
कबहूँ मातु पिता गुरु के चरनन को सेवें रामलला।।''

–वही, पृ. 341

कहा–रामकथा अकथ कथा है, वाल्मीकि तुलसी से लेकर जितने भक्त कहते थक गये, कह न सके।

राम–रावन युद्ध वर्णन भी बहुत अनोखा है। दास रामलाल का कहना है कि–

'' रावण-राम युद्ध जो गावै, सो नर विजय जगत में पावैं।।''

–वही, पृ 380

इसी प्रकार 'लावनी विनय' 'नई विनय पत्रिका' के पदों की याद दिला देती है। सीता–स्तवन कवित्त की पंक्तियाँ नारी के प्रति कवि के कर्त्तव्य की याद दिलाती हैं। मात्र दो पंक्ति पर ही ध्यान दें–

''कल्प अन्तकारी, साधु संत शोक हारी।
मुनि देवन उबारी, गिरिराज की कुमारी तैं।''

× × ×

''हाहाकार भारी, परे लोक लोक-न्यारी।
जब चलत प्रचारी सिया मात की सवारी है।।''

–पृ. 388/5/112

वन–गमन–प्रसंग में अनेक कवियों की कल्पना रमी है। ग्राम बालाएँ उन्हें देखकर कहती हैं–

''कोटि काम की छबी है, इनकी शोभा में है बड़े सखी।
देव असुर नर नाग मुनी में सुना न अस छबि कहीं सखी।।''

–पृ. 392

राम–लक्ष्मण में प्रश्नोत्तर का वर्णन बहुत कम मिलता है, इस संग्रह में। इसे ज्ञानकाण्ड कहा जा सकता है। लक्ष्मण ने आरम्भ में ही कह दिया कि–

''नाथ बात सब विधि तुम जानौ।। मैं पूछतैं संक्षेप बखानौ।।''

× × ×

''रंक कौन ज्यहि तृष्ना चोषी। धनी सो को सब विधि संतोषी।
महा अंध को जो मदनातुर। जिन भल करै सोई बड़ चातुर।।
छमावंत को त्यहि श्रुति कहई। परुष बचन सुनि जो नहिं दहई।।
मृतक कौन ज्यहि कीरति नाहीं। जीवत जासु सुयश जग माहीं।।
दीरध रुज किं यह संसारा। और वधि तासु अनूप विचारा।।''

उसमें प्रश्न के साथ–साथ उत्तर है। जब लक्ष्मण ने प्रश्न किया कि–

''को हौं आये कहाँ ते, कित जैहों का सार।
को मैं जननी को पिता, याको कहिए विचार।
प्रश्न-किं अनीति? उत्तर-जहं वेद विरुद्धा।
प्रश्न-परम तीर्थ किं? उत्तर-निज मनशुद्धा।

प्रश्न-बिन प्रतीत को? उत्तर-कंचन कांता।
प्रश्न-सेवा करन योग को? उत्तर-शांता।
प्रश्न-तप किं? उत्तर-विषय भोग परिहरई।।''

यह बड़ा लम्बा प्रकरण है, परन्तु एक दोहा उद्धृत कर मैं विराम चाहता हूँ, वह यह है कि–

''हौं नहिं तन मन वचन बुधि, जाति वरन कुल एक।
थावर जंगम सबन में, याको कहत विवेक।।''

अब इसके बाद क्या रह गया। कवि ने एक ही दोहे में राम-लक्ष्मण के शब्दों में सृष्टि-समरसता की बात कह दी।

इस ग्रंथ के बारे में भी कवि ने स्वयं सबकुछ कह दिया कि–

''कल्पवृक्ष सम ग्रंथ यह, सर्वोफल दातार।
रामलाल गुन आगम है, कहाँ तक कहूँ विस्तार।।
विविध सगुन बहु विधि सुमन, मय मति मारखी जानि
है 'अनेक संग्रह' मधू, कीन इकट्ठे आनि।''

अन्त में रामलाल कवि ने यह भी कह दिया कि हे प्रभु! इस ग्रंथ को मैं आप को ही अर्पित करना इसलिए चाहता हूँ कि–

''दीजै यह वरदान, ग्रंथ संत को होय प्रिय।
जहं जहं जन्मो जान, तहं तहं भक्ती मिले मोहिं।''

अन्त में लिखा है कि–

''इति श्री अनेक संग्रह दूसरा खण्ड सागर सब गुण आगर ग्रंथ उजागर श्रीरामलालदास कृत सम्पूर्ण।''

इसका मतलब यह है कि इस ग्रंथ का पहला भाग भी प्रकाशित है, जो मेरी पहुँच के बाहर है। इति श्रीरामचन्द्रायते नमः।।

संस्थान को चाहिए कि उसकी खोज कर दोनों का प्रकाशन करे, यह बड़ा काम होगा।

रामायण में करुण रस का विवेचन

डॉ. अशोक कुमार

संस्कृत साहित्य में रस शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में अति प्राचीन काल से किया जाता रहा है। काव्य साहित्य में रस शब्द से शृङ्गार आदि रसों का बोध होता है। विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के संयोग से अभिव्यक्त स्थायी भाव ही रस कहलाता है। अतः स्थायी भावों की जो संख्या होगी, वही रसों की संख्या होगी। भरत मुनि के मतानुसार रसों की संख्या आठ है–शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स और अद्‌भुत। आचार्य मम्मट ने निर्वेद को स्थायी भाव मानकर शान्त रस को नवम रस कहा था। विश्वनाथ ने वात्सल्य की गणना भी रसों में की है।[1] इस प्रकार रसों की संख्या (11) (ग्यारह) हो जाती है। परन्तु अधिकांश विद्वान रसों की संख्या 9 ही मानते हैं।

इष्ट का विनाश तथा अनिष्ट की प्राप्ति करुण रस के आलम्बन विभाव हैं। प्रिय के गुणों का कथन उद्दीपन विभाव है। निःश्वास उच्छ्‌वास, रुदन, स्तम्भ, प्रलाप, विवर्णता आदि अनुभाव हैं। स्वप्न, अपस्मार, दैन्य आदि व्यभिचारी भाव हैं। इनसे निष्पन्न शोक रूप स्थायी भाव करुण रस दशा को प्राप्त करता है। भवभूति ने उत्तररामचरित (3/47) में करुण रस के विषय में कहा है–

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्भिन्नः पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद्‌बुदतरङ्गमयान्विकारान्भो यथा सलिलमेव तु तत्समग्रम्।।[2]

अर्थात् जिस प्रकार जल अलग-अलग निमित्त कारणों से आवर्त, बुद्‌बुद, तरङ्ग और फेन आदि का रूप लेता है तथा अलग-अलग संज्ञाओं से पुकारा जाता है, परन्तु रहता अन्ततः जल ही है, क्योंकि अन्ततः इन सभी का पर्यवसान जल में ही होता है और शेष जल ही बचता है, इसी प्रकार साहित्य में भी एक ही रस करुण है और वही निमित्त-भेद से श्रृंगार, वीर, रौद्र, अद्‌भुत आदि रूप धारण कर विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। अर्थात् नाटककार भवभूति के मतानुसार एकमात्र करुण रस ही होता है। उसी के आश्रय से विभिन्न रसों की अभिव्यक्ति होती है।

रामायण महाकाव्य में आदि कवि वाल्मीकि ने सभी रसों का प्रतिपादन बड़े ही मार्मिक रूप में किया है। आनन्दवर्धन ने रामायण का अंगीरस 'करुण' को (ध्वन्यालोक, चतुर्थ, उद्योत, पृष्ठ 237) ही माना है। अन्य रस जैसे श्रृंगार और वीर आदि अंग रस हैं। आनन्दवर्धन का मत है कि महर्षि वाल्मीकि ने स्वयं ही करुण रस की सूचना दी है और सीता के आत्यन्तिक वियोग तक अपने प्रबन्ध का निर्माण कर उन्होंने करुण रस का पूर्ण निर्वाह किया है।

अनादिकाल से मानव दुःख की अनुभूति में भी एक प्रकार के सुख एवं आनन्द का अनुभव करता आया है। करुणा मानव के मोलतम हृदय को स्पर्श कर उसमें अनेक भावों को उद्‌बुद्ध कर उसकी चेतना को झकझोर देती है। काव्य की रचना करुणा की मर्मानुभूति के पश्चात् होती है। रामायण की रचना करुण रस के प्रस्फुटित होने के कारण हुई तथा अन्यथा नहीं हो सकता था। ऋषि वाल्मीकि एक

दिन स्नान करने के लिए तमसा नदी के तीर पर जाते हैं। तमसा नदी के तट पर पहुँचने के पश्चात् वहाँ ऋषि वाल्मीकि देखते हैं कि एक व्याघ ने काम से मोहित क्रौञ्च पक्षी को बाण से मारता है। बाण के प्रहार से क्रौञ्च पक्षी रुधिर से आप्लावित होकर भूमि पर गिर जाता है। क्रौञ्च की प्रेयसी क्रौञ्ची उसके लिए विलाप करती है।

तं शोणितपरीताङ्ग चेष्टमानं महीतले।
भार्षा तु निहतं दृष्टा रुराव करुणां गिरम्।।

(**बाल-**2/11)

तथाविधं द्विजं दृष्टा निषादेन निपातितम्।
ऋषेधर्मात्मनस्तस्य कारुण्यं समपद्यत।।

(**बाल-**2/23)

अर्थात् निषाद (व्याघ) ने जिसे मार गिराया था, उस नर पक्षी की वह दुर्दशा देख कर उन धर्मात्मा ऋषि अर्थात् वाल्मीकि को बड़ी दया आयी। रामायण के बालकाण्ड (2/14-15) में करुण रस का उल्लेख मिलता है। यथा–

ततः करुणवेदित्वाद्धर्मोऽयमिति द्विजः।
निशाम्य रुदतीं क्रौञ्चीमिदं वचनमब्रवीत्।।

अर्थात् स्वभावतः करुणा का अनुभव करने वाले ब्रह्मर्षि ने 'यह अधर्म हुआ है' ऐसा निश्चय करके रोती हुई क्रौञ्ची की ओर देखते हुए निषाद (व्याध) से इस प्रकार कहा–

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।

अर्थात् हे निषाद तुमने काम से मोहित इस क्रौञ्च पक्षी को मारा है। अतः तुम सदा के लिए प्रतिष्ठा प्राप्त न करो।[3] महर्षि वाल्मीकि की कल्याणमयी वाणी सुनकर स्वयं ब्रह्मा उपस्थित हुए और उन्होंने रामचरित लिखने के लिए उनसे कहा। रामायण की रचना इसी प्रेरणा का फल है। रसाविष्ट हृदय होने पर ही कविता का उद्‌गम होता है। जब तक कवि के हृदय को तीव्र भावना आक्रान्त नहीं करती, तबतक वह विशुद्ध कविता का निर्माण नहीं कर सकता। काव्य अन्तश्चेतना की बाह्य अभिव्यक्ति है अतएव रसात्मक कविता के उन्मेष के लिए हृदय को रस दशा में पहुँचना ही पड़ता है। तीव्र भाव के अन्तः जागरण के साथ ही साथ उसकी शाब्दिक अभिव्यक्ति बाहर अवश्यमेव होती है।

रामायण के अयोध्याकाण्ड में महर्षि वाल्मीकि जी ने करुण रस का प्रतिपादन मार्मिक रूप में किया है। इस काण्ड में राजा दशरथ का विलाप का वर्णन महर्षि वाल्मीकि ने किया है। यथा–

न जीवितं मेऽस्ति कुतः पुनः सुखं निवात्मजेनात्मवतां कुतो रतिः।
ममाहितं देवि न कतुमर्हसि स्मृशामि पादावपि ते प्रसीद मे।।

(**अयो.-**12/11)

अर्थात् देवि! (कैकेयी) अपने बेटे श्रीराम के बिना मेरा जीवन नहीं रह सकता, फिर कहाँ से सुख हो सकता है? आत्मज्ञ पुरुषों को भी अपने पुत्र से विछोह हो जाने पर कैसे चैन मिल सकता है? अतः तू मेरा अहित न कर। मैं तेरे पैर छूता हूँ, तू मुझ पर प्रसन्न हो जा।[4] इस प्रकार महाराज दशरथ अनाथ की भाँति विलाप कर रहे थे। राजा दशरथ कह रहे हैं कि 'हाय! स्वर्ग में भी जब देवता मुझसे श्रीराम का कुशल समाचार पूछेंगे, उस समय मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा? यदि कहूँ, उन्हें वन में भेज दिया तो उसके बाद वे लोग जो मेरे प्रति धिक्कारपूर्ण बात कहेंगे, उसे कैसे सह सकूँगा? फिर महान् परिश्रम

करके मैंने जिस महातेजस्वी महापुरुष श्रीराम को पुत्र रूप में प्राप्त किया है, उनका मेरे द्वारा त्याग कैसे किया जा सकता है?' इस प्रकार विलाप करते-करते राजा दशरथ का चित्त अत्यन्त व्याकुल हो उठा। बूढ़े राजा दशरथ निरन्तर गरम उच्छ्वास लेते हुए आकाश की ओर दृष्टि लगाये आर्त की भाँति दुःखपूर्ण विलाप करने लगे–

सदैवोष्णं विनिःश्वस्य वृद्धो दशरथो नृपः।
विललापार्तवद् दुःखं गमनासक्तलोचनः।।

(अयो.-13/16 **)**

श्रीरामचन्द्र जी ने अपनी माता कौसल्या को वनवास की बात बताई। यह अप्रिय बात सुनकर वन में फरसे से काटी हुई शालवृक्ष की शाखा के समान कौशल्या देवी सहसा पृथ्वी पर गिर पड़ीं, मानो स्वर्ग से कोई देवाङ्गना भूतल पर आ गिरी हो–

सा निकृत्तेव सालस्य यष्टिः परशुना वने।
पपात सहसा देवी देवतेव दिवश्च्युता।।

(अयो.-20/32 **)**

माता कौशल्या बारम्बार रो रही हैं। उन्होंने श्रीराम से इस प्रकार कहा–

यदि पुत्र न जायेथा मम शोकाय राघव।
न स्म दुःखमतो भूयः पश्येयमहमप्रजाः।।

(अयो.-20/36 **)**

अर्थात् बेटा रघुनन्दन। यदि तुम्हारा जन्म न हुआ होता तो मुझे इस एक ही बात का शोक रहता। आज जो मुझ पर इतना भारी दुःख आ पड़ा है, उसे वन्ध्या होने पर मुझे नहीं देखना पड़ता। इस प्रकार माता कौशल्या श्रीराम से कह रही हैं कि "अवश्य ही मेरा कठोर हृदय लोहे का बना हुआ है, जो पृथिवी पर पड़ने पर भी तो फटता है और इसी दुःख से व्याप्त हुए इस शरीर के भी टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। महर्षि वाल्मीकि ने रामायण के अरण्यकाण्ड में भी करुण रस का बड़े ही मार्मिक रूप से प्रतिपादन किया है। राम एवं लक्ष्मण को सम्बोधित करते हुए सीता कह रही हैं–

त्राहि मामद्य काकुत्स्थ लक्ष्मणेति वराङ्गना।
सुसंत्रस्ता समाक्रन्दच्छृण्वतां तु यथान्तिके।।

(अरण्य.-25/5 **)**

अर्थात् हे राम! हे लक्ष्मण! अब आप ही दोनों मेरी रक्षा करें। 'यों कहकर अत्यन्त डरी हुई सुन्दरी सीता इस प्रकार क्रन्दन करने लगीं, जिससे निकटवर्ती देवता और मनुष्य सुन सकें।'[5] महाकवि भवभूति का उत्तररामचरित करुण रस प्रधान नाटक है। इस नाटक के तृतीय अङ्क (श्लोक-38) में रामचन्द्र जी सीता से कह रहे हैं–

हा हा देवि स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः
शून्यं मन्य जगदवि रतज्वालमन्तर्ज्वलामि।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि।।

अर्थात् हा! देवी सीते! तुम्हारे वियोग से पीड़ित यह मेरा हृदय फटा जा रहा है। शरीर के जोड़-जोड़ शिथिल हो रहे हैं, जिससे शरीर का सन्तुलन ठीक नहीं बन पा रहा है। यह संसार निर्जन-सा प्रतीत हो रहा है। मैं निरन्तर जलती हुई शोक की लपटों में अन्दर ही अन्दर जल रहा हूँ। विरह वेदनाव्यथित अन्तरात्मा

अवसन्न-सी गहन अन्धकार में निमग्न हो रही है। मूर्च्छा चारों ओर से मुझे घेर कर अपने आगोश में लपेटे जा रही है। ऐसी स्थिति में तुम्हीं बतलाओ कि मैं मन्द भागी क्या करूँ?[6] महर्षि वाल्मीकि जी रामायण के अरण्यकाण्ड (श्लोक -35-36) में लिखे हैं-

हा लक्ष्मण महाबाहो पश्यसे त्वं प्रियाँ क्वचित्।
हा प्रिये क्व गता भद्रे हा सीतेति पुनः पुनः।।३५।।
इत्येवं विलपन् रामः परिधावन् वनाद् वनम्।
क्वचिदुद्भ्रमते वेगात् क्वचिद् विभ्रमते बलात्।।३६।।

अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी श्रीलक्ष्मणजी एवं सीताजी से कह रहे हैं-हा महाबाहु लक्ष्मण! क्या तुम कहीं मेरी प्रियतमा को देखते हो। हा भद्रे! हा सीता! तुम कहाँ चली गयी? इस तरह बारंबार विलाप करते हुए। श्रीरामचन्द्रजी एक वन से दूसरे वन में दौड़ने लगे। वे कहीं सीता की समानता पाकर उद्भ्रान्त हो उठते (उछल पड़ते थे) और कहीं शोक की प्रबलता के कारण विभ्रान्त हो जाते थे।[7]

महर्षि वाल्मीकि जी ने बड़ी मार्मिक विलक्षणता से रामायण में करुण रस का उल्लेख किया है। अशोक वाटिका के एकान्त में बैठी हुई दयनीय सीता शोक के भार से न्यस्त धूमजाल से संसक्त अग्नि की शिखा के समान हैं। संदिग्ध स्मृति, विहत श्रद्धा, प्रतिहत आशा, विघ्नबाधा से युक्त सिद्धि, कलुषित बुद्धि, नवीन अपवाद के कारण विनष्ट कीर्ति के साथ शोकमग्न सीता की तुलना करने वाले कवि हमारे हृदय में दैन्य की भावना को तीव्र बना रहा है तथा सीता के दशावैषम्य के उत्कर्ष की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कर रहा है। सीता जी को देखकर हनुमान जी की बुद्धि सन्देह में पड़ जाती है, जिस प्रकार शास्त्र के अभ्यास के बिना विद्या नितान्त शिथिल बन जाती है और पद-पद पर सन्देह पैदा करती है।

रामायण में यह शोक (करुण रस) न केवल श्रीरामचन्द्रजी के ही मर्मस्थल में काँटे चुभो रहा है; बल्कि महाराज जनक, देवी कौशल्या और लक्ष्मण एवं सीता के मर्म को भी उतनी ही तीव्रता से व्यथित करता है। जनक का शोक उनके हृदय को चीर रहा है, राजरानी कौशल्या को देखकर उनका हृदय घाव पर नमक के लेप की भाँति तड़प उठता है। कौशल्या की पीड़ा भी कम नहीं है। वह अपने को जनक के सम्मुख स्थिर करने में असमर्थ पाती हैं। परम प्रेयसी सीता के वियोग में श्रीरामचन्द्र की दशा अत्यधिक शोचनीय हो जाती है, उनका हृदय फट पड़ना चाहता है, फिर भी उसके दो टुकड़े नहीं हो पाते। व्याकुल शरीर मूर्च्छित हो रहा है, फिर भी संज्ञाहीन नहीं हो पाता है। हृदय में सीता-वियोग की जो अग्नि जल रही है, वह शरीर को जलाकर भी भस्म नहीं कर पाता है और इस तरह क्रूर विधाता श्रीरामचन्द्रजी के मर्मस्थल पर प्रहार करता है, परन्तु उनके जीवन का अन्त नहीं कर डालता। सीता के वियोग जनित वेदना का दहन राम के लिए मृत्यु से भी अधिक दुःखदायी है।

अतः करुणा मानव के कोमलतम हृदय को स्पर्श कर उसमें अनेक भावों को उद्बुद्ध कर उसकी चेतना को झकझोर देती है, काव्य अर्थात् रामायण की रचना करुणा की मर्मानुभूति के पश्चात् ही हुई थी। करुण के चित्रण में महर्षि वाल्मीकिजी ने अपनी करुणा की पराकाष्ठा कर दी है। सीता के वियोग में श्रीरामचन्द्रजी की दशा देखकर सचमुच मानव, पशु, पक्षी, वृक्ष एवं पत्थर भी रो देता है। रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने सभी रसों का प्रतिपादन किया है। आनन्दवर्धन ने रामायण का अंगीरस 'करुण' को ही माना है। अन्य रस जैसे श्रृंगार और वीर यदि आदि अंग रस हैं। अतः अन्य रसों में एक प्रमुख करुण रस ही है।

सन्दर्भ

1. अलंकारशास्त्र का इतिहास, डॉ. कृष्णकुमार, पृ. 245
2. उत्तररामचरित, जनार्दनशास्त्री पाण्डेय, पृ. 314
3. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (प्रथम खण्ड), गीता प्रेस, पृ. 33
4. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (प्रथम खण्ड), गीता प्रेस, पृ. 239
5. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (प्रथम खण्ड), गीता प्रेस, पृ. 584
6. उत्तररामचरित, आनन्दस्वरूप, पृ. 293
7. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (प्रथम खण्ड), गीता प्रेस, पृ. 604

उत्तररामचरित में राम का लोकानुरंजन

सुषमा

संस्कृत साहित्य में भवभूति एक महाकवि के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत हुए हैं। कालिदास के बाद भवभूति का ही नाम उत्कृष्ट नाटककार के रूप में लिया जाता है। भवभूति के उत्तररामचरित, महावीरचरित तथा मालतीमाधव इन तीन नाटकों में उत्तररामचरित सर्वश्रेष्ठ नाटक है। इसमें भवभूति अपने आपको परिणतप्रज्ञ कहते हैं, शब्दब्रह्म के वेत्ता (अर्थात् ब्र्हम-साक्षात्कार करने वाले) विद्वान कवि भवभूति के द्वारा रूपान्तरित अर्थात् इस नाटक के रूप में प्रस्तुत तथा अभिनयों के द्वारा नाटकीय रूप को प्राप्त कराई गयी इस वाणी पर विद्वान चर्चा करें–

तमेत्तां परिभावयन्त्वभिनयैर्विन्यस्तरूपां बुधाः।
शब्दब्रह्मविदः कवेः परिणतां प्राज्ञस्य वाणीमिमाम्।।[1]

उत्तररामचरित के नायक राम हैं, उनको मुख्यतया राम या रामभद्र नाम से सम्बोधित किया गया है। प्रस्तुत नाटक में राम को एक लोकप्रिय महाराज के रूप में चित्रित किया गया है। वह मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, जिन्होंने लोकानुरंजन के लिए सीता का परित्याग किया। स्वयं राम का कथन है–प्रजानुरंजन हेतु सर्वस्व अर्पण कर सकता हूँ–

स्नेहं दयाँ च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।।[2]

उनका कुल की परम्परा रही है कि वे प्रजापालक रहे हैं, जिसको महाराज दशरथ ने भी लोकाराधना के लिए राम को और अपने प्राणों को छोड़ा था–

सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं व्रतम्।
यत्पूरितं हि तातेन मां च प्राणांश्च मुञ्चता।।[3]

राम ने इस नाटक में एक आदर्श उपस्थित किया है कि राजा के लिए जन-हित और प्रजानुरंजन सर्वोत्तम कार्य है। प्रजानुरंजन के लिए उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता की ओर भी ध्यान नहीं जाता है। क्योंकि स्वयं न चाहते हुए भी उन्होंने जनता के सन्तोष के लिए सीता का परित्याग किया और उसके कारण बारह वर्ष असह्य वियोग-दुःख सहा। अन्त में प्रजा और ऋषि-मुनियों की स्वीकृति से ही सीता को स्वीकार करते हैं। एक आदर्श पति के रूप में उनका जीवन अनुकरणीय रहा है। उन्होंने सोने की सीता की मूर्ति बनाकर अश्वमेध यज्ञ किया–"हिरण्मयी सीताप्रकृतिर्गृहिणीकृता।"[4] इसलिए वासन्ती का कथन है कि महापुरुषों के हृदय में व्रज से भी अधिक कठोर होते हैं और फूल से भी अधिक कोमल–

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति।।[5]

यद्यपि राम सर्वथा यह मानते रहे कि सीता निरपराध हैं, और उनका पतिव्रत धर्म सर्वथा निर्मल है,

किन्तु सीता के विषय में फैला हुआ लोकापवाद उनको विवश करता है कि सीता परित्याग करें। इसके लिए उन्होंने दु:खों के अवसरों पर जनता को दोषी बताया है–

देव्या शून्यस्य जगतो द्वादशः परिवत्सरः।
प्रनष्टमिव नामापि न च रामो न जीवति।।[6]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि राम सीता–परित्याग का निर्णय करके बारह वर्ष तक अत्यन्त दयनीय अवस्था में शोकाकुल रहे।

उत्तररामचरित नाटक में भवभूति ने अपनी योग्यता और विद्वत्ता का चरम रूप प्रकट किया है। यह नाटक भवभूति की नाटकीय प्रतिभा का सर्वोत्तम निदर्शन है। क्योंकि भवभूति के जो पात्र हैं उनके जो चरित्र हैं वे सर्वथा असाधारण ही हैं। उनके पात्र सजीव एवं सक्रिय हैं एवं उनमें भावप्रकाशन की क्षमता है तथा उनमें संघर्ष करने की शक्ति भी है। जैसे परिस्थितियों में कोमल होना आदि। यह मानव–पात्रों को मानवीय स्तर पर ही रखता है और देवों को दैवी स्तर पर। मानव को अमानवीय स्तर पर ले जाना भवभूति को पसन्द नहीं। राम और सीता में भी मानवीय दुर्बलताएँ हैं। राम कर्तव्यनिष्ठ हैं, वे कर्तव्यनिष्ठा के कारण सीता का परित्याग करते हैं, परन्तु एक आदर्श पति के रूप में उन्हें सीता–वियोग से उतना ही दु:ख होता है, जितना एक सामान्य व्यक्ति को होता है। वे बार–बार रोते हैं, विलाप करते हैं और मूर्च्छित हो जाते हैं। उनका रोदन मनुष्य मात्र को ही नहीं, अपितु पर्वतों और वज्र के हृदय को द्रवित कर देता है। परित्यक्ता सीता में भी राम के प्रति सहानुभूति और सद्भाव है।[7] वह राम के जीवन की रक्षा के लिए सदा उद्यत हैं। राम जैसे धीरोदात्त गम्भीर नायक को भवभूति ने अपने नाटक में फूट–फूट कर रोने पर विवश कर दिया है। अनुकार्य राम के प्रति जनमानस में इतना अधिक लगाव है कि उनके शोक को देखकर मानवमात्र दु:ख का अनुभव करने लगता है, क्योंकि समुद्र के समान गम्भीर तथा हिमाचल के समान अचल राम को शोकाभिभूत देखकर जनमासन उद्वेलित हो उठता है तथा अपनी निजात को छोड़ उसी में खो जाता है। अर्थात् करुण रस की चर्वणा करने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो सम्पूर्ण वनभूमि ही उसके साथ ही साथ आँसू बहा रही है। इस विषय से सम्बन्धित भवभूति ने उत्तररामचरित के प्रथम अंक में उक्ति प्रस्तुत की है–'**अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।**'[8]

प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से राम की करुणा अभिव्यक्त हो रही है। प्रथम अंक में चित्र का दर्शन करते हुए राम जब दण्डकारण्य के दृश्यों को देखते हैं तो कहते हैं कि वह मुझे वर्तमान सा प्रतीत हो रहा है। इस उक्ति में लक्ष्मण कह रहे हैं खिन्न–चित्त आपके चरितों से पत्थर भी रो पड़ा था और वज्र का भी हृदय फट गया था। पत्थर का रोना और वज्र के हृदय का फटना यह असम्बन्ध के सम्बन्ध के वर्णन से अतिशयोक्ति अलंकार है। भवभूति ने करुण रस के क्षेत्र में जो प्रसिद्धि प्राप्त की है उसमें इस श्लोक की उक्ति का विशेष महत्त्व है। भवभूति के करुण रस के वर्णन को सुनकर पत्थर भी रो पड़ते हैं और वज्र का भी हृदय फट जाता है। इससे और बड़ी बात क्या हो सकती है। इससे यह बात सबके सम्मुख स्पष्ट हो जाती है कि भवभूति ने चेतन को तो रुलाया ही है, साथ ही साथ अचेतन पदार्थों में भी करुणा की अभिव्यक्ति करायी है। यही कारण रहा है कि इस पंक्ति से प्रभावित होकर 'गोवर्धनाचार्य' ने आर्यासप्तशती में भवभूति के विषय में कहा है–

भवभुते: सम्बन्धाद् भूधरभूरेव भारती भाति।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा।।[9]

भवभूति की सबसे बड़ी विशेषता है कि गम्भीर मनोभावों का सम्यक् वर्णन और पाठक के मन में उनकी उद्बुद्धि कर देते हैं। भावनाओं का वर्णन वे इतनी सच्चाई और ईमानदारी से करते हैं कि वे

उन्हीं के साथ अपना तादात्म्य कर लेते हैं। भावनाओं के वर्णन में जितनी सघनता भवभूति में दिखाई पड़ती है उतनी अन्य किसी संस्कृत कवि में नहीं।

सन्दर्भ

1. उत्तररामचरित, 7/21
2. उत्तररामचरित, 1/12
3. उत्तररामचरित, 1/41
4. उत्तररामचरित, 2/वाक्य सं. 46
5. उत्तररामचरित, 2/7
6. उत्तररामचरित, 3/33
7. उत्तररामचरित, भूमिका भाग, पृ. 128
8. उत्तररामचरित, 1/28
9. आर्यासप्तशती, 1/36

❐❐

रचनाकारों के पते

1.	**डॉ. महेन्द्र भानावत**	: 1–352, श्रीकृष्णपुरा, सेंटपॉल स्कूल के पास, उदयपुर, मो. : 09351609040
2.	**डॉ.पूरन सहगल**	: निदेशक, मालव संस्कृति अनुष्ठान, मनासा, जि. नीमच, म.प्र., मो. : 09424041310
3.	**डॉ. लखन राम 'जंगली'**	: ग्राम व पोस्ट–लिलासी वाया अमवार, सोनभद्र–231212 (उ.प्र.), मो. : 09559658016
4.	**डॉ.(श्रीमती) अनसूया अग्रवाल**	: क्लब वार्ड, पो. व जिला–महासुंद–493445 (छ.ग.), 'प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष', मो.: 09425515019
5.	**डॉ.यशोधर मठपाल**	: गीताधाम, भीमताल, नैनीताल
6.	**डॉ.जयप्रकाश मिश्र**	: बी 1/148 पी8ए, अस्सी, वाराणसी
7.	**दीपका कुमार केसरवानी**	: दीपनगर, नई बस्ती रोड, राबर्ट्सगंज, जनपद–सोनभद्र–231216 मो. : 09936002341
8.	**डॉ.अर्जुनदास केसरी**	: सम्पादक–लोकवार्ता शोध पत्रिका, राबर्ट्सगंज, सोनभद्र–231216 (उ.प्र.), मो. : 09450778597
9.	**डॉ.सानेन्द्र प्रताप निराला**	: वरिष्ठ कार्यक्रम अधिकारी, आकाशवाणी केन्द्र, ओबरा–सोनभद्र (उ.प्र.)
10.	**शिवप्रसाद 'कमल'**	: कल्पना मन्दिर, चुनार (मिर्जापुर)
11.	**शेख जैनुल आब्दीन**	: मियांपुर, गाजीपुर (उ.प्र.)
12.	**रामनाथ शिवेन्द्र**	: अक्षर घर, हर्ष नगर, पूरब मोहाल, राबर्ट्सगंज, सोनभद्र–231216, मो.: 07376900866
13.	**ओमप्रकाश त्रिपाठी**	: ऊँचडीह, राबर्ट्सगंज, सोनभद्र
14.	**उदयशंकर दुबे**	: ग्राम–करेरुआ, पो.–खमरिया, जिला–मिर्जापुर–221306 (उ.प्र.)
15.	**डॉ.अनुज प्रताप सिंह**	: एसोसिएट प्रो. हिन्दी विभाग, आर.आर.पी.जी. कालेज–अमेठी–227405 (उ.प्र.)

16. डॉ. मालती शर्मा	:	1034/1 मॉडल कॉलोनी, कैनाल रोड, पुणे-411016, मो.: 09423247033
17. डॉ. आद्याप्रसाद द्विवेदी	:	मालती कुंज, सिद्धार्थ इन्क्लेव विस्तार, पी.एच.आई. जी.-II32, तारामण्डल, गोरखपुर-273017 (उ.प्र.)
18. डॉ.हरिपसाद दुबे	:	गयादेवीनगर, रामपुर भगन, फैजाबाद-224203 (उ.प्र.)
19. डॉ. भगवान सिंह 'भास्कर'	:	प्रधान संपादक : 'साहित्य प्रहरी' एवं 'उड़न', प्रखण्ड कार्यालय के सामने, लखराँव, सीवान-841226 (बिहार)
20. डॉ.हरिसिंह पाल	:	684, इन्द्रा पार्क, नयी दिल्ली-15, फोन : 25039559
21. डॉ.नन्दिता शर्मा	:	बी-201, मेदिनव टॉवर, प्लॉट नं. 50, सेक्टर-56, गुड़गाँव
22. विद्यासागर डॉ. रमेश सोबती	:	एन.आर.आई. एवेन्यू, सुखचैन रोड, फगवाड़ा (पंजाब), मो. : 09815985535, 09878006736
23. डॉ. अशोक कुमार	:	एम.फिल. /पीएच.डी. (संस्कृत), विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू, विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली
24. सुषमा	:	पीएच.डी. (संस्कृत, रुम नं. 228, साबरमती हास्टल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली, मो.: 9013898206